स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता

में

चेतना के नये आयाम

(१९४७ - १९६७)

(प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिये प्रस्तुत)

●

शोध - प्रबन्ध

●

लेखिका—

श्रीमती गीता सक्सेना

एम० ए०

●

निर्देशिका—

डा० मीरा श्रीवास्तव, एम०ए०, डी०फिल्०, डी०लिट्०

प्रवक्ता, हिन्दी विभाग

प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

●

हिन्दी विभाग

प्रयाग विश्वविद्यालय

प्रयाग

●

दिसम्बर, १९७१ ई०

विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
प्रथम परिच्छेद : नयी कविता की पृष्ठभूमि में पूर्ववर्ती काव्यधारायें और नयी कविता का जन्म ।	1-34
छायावादी काव्य -- पलायन, रहस्यवाद, प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्ति, खण्डित सौन्दर्य-दृष्टि, अभिव्यंजना शैली, सामाजिकता । (3-7)	
प्रगतिवादी काव्य -- सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियां, व्यक्ति के स्थान पर समाज का महत्व; नीरसता, वस्तुपक्ष की प्रधानता, उपलब्धियां । (7-12)	
प्रयोगवादी काव्य -- सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियां, प्रयोग की घोषणा, फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव, वैयक्तिक स्वतन्त्रता, बाह्य-सत्य के स्थान पर आत्मसत्य का अन्वेषण : उद्घाटन, अहंवाद और व्यक्तिवाद, व्यक्तित्व का अभाव । (12-20)	
संक्रमणकाल : नयी कविता का प्रवेश, पूर्व परम्पराओं से असन्तोष : वैज्ञानिक युग-बोध, संकुचित दृष्टि के स्थान पर व्यापक दृष्टि-विस्तार, कृत्रिमता एवं काल्पनिकता से खीझ, अचेतन की ही नहीं चेतन की स्वीकारोक्ति भी, नयी कविता का संघर्ष, नये मार्ग की व्याख्या । (20-34)	
द्वितीय परिच्छेद : नयी कविता की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि —	35-67
सामाजिक विषमता के प्रति कवि-मन की पीड़ा और आक्रोश, हताश मनःस्थितियां, संक्रान्तिकाल, यथार्थबोध: संघर्षशीलता, परिवेश का दबाव, क्रान्ति का आवाहन, संश्लिष्ट जटिल मनोविज्ञान : मनोविश्लेषणवाद से आगे की दिशा ।	

विषय	पृष्ठसंख्या

तृतीय परिच्छेद : नयी कविता की नयी आत्मचेतना-- 68-85

मानवतावादी दृष्टिकोण, व्यक्ति और समाज की सापेक्षता में नयी आत्मचेतना का विकास, मानवता के सन्दर्भ में आत्मतत्व का विकास, युगीन परिस्थितियां : सम्बद्धता, स्वतन्त्र अभिव्यक्ति; सत्य - साक्षात्कार, अतिलौकिकता, प्रयोगवाद से पृथक अहं का रूप, आत्मानुभूति का वैज्ञानिक मनोविज्ञान, सपाटबयानी, आस्था का स्वर, भविष्य के प्रति गहरी आशा ।

चतुर्थ परिच्छेद : नयी कविता की नयी समाज-चेतना --

द्विवेदी युगीन उपदेशात्मकता का बहिष्कार, पौराणिक कल्पना से मुक्ति, प्रगतिवादी नारेबाजी का तिरस्कार, कल्पनारहितता, छायावादी पलायन से हटकर युग-जीवन का सामना, प्रयोगवादी आत्मकेन्द्रितता का तिरस्कार, नयी कविता की सामाजिकता, प्रगतिवाद-प्रयोगवाद से हटकर नयी सामाजिकता, नयी समाज-चेतना, व्यक्ति-चेतना का विस्तार समाज-चेतना में, सामाजिक-असामाजिकता, सामाजिक अव्यवस्था के प्रति जागरूकता, व्यक्तिगत मनःस्थितियां और समाज, नगरीय अनुभव और तीक्ष्ण प्रतिक्रिया, व्यक्तिवादिता की परिणति सामाजिकता में ।

पंचम परिच्छेद : आत्मचेतना के नये आयाम-- 86-113

(अ) नयी कविता में समाज-चेतना के नये पार्श्वों या आयामों का जन्म, (115-118)

(ब) युग-चेतना की यथार्थ अभिव्यक्ति: संघर्ष की अनिवार्यता। (118-128)

(स) वैयक्तिक स्वतन्त्रता:-- नयी कविता की मांग : व्यक्तिस्वातन्त्र्य, व्यक्ति इकाई की महत्ता, व्यक्ति स्वातन्त्र्य : सामाजिक परिवेश, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य में समष्टिस्वातन्त्र्य, व्यक्ति स्वतन्त्रता : संकुचित दृष्टि (129-140)

विषय | पृष्ठसंख्या

(ग) परम्परा से विनिर्मुक्तता :- आधुनिकता के सन्दर्भ--
अस्वाद, नयी कविता के भावपक्ष का नई परम्परा :
सत्य का परिवर्तित रूप, शिव का परिवर्तित रूप,
सुन्दर का परिवर्तित अर्थ, आदर्श और यथार्थ का नया
अर्थ, परम्परित मूल्यों का तिरस्कार ।
नयी कविता का नया शिल्पपक्ष : कवि-प्रतिभा को
परम्परा से विनिर्मुक्तता, रूपविधान में कमनीयता या
रसपूर्णता की परम्परा से विनिर्मुक्तता, नये शब्दरूप,
नये उपमान, छंदराहित्य, अर्थ की लय इत्यादि का नया
परम्परा, नये उपमानों की सर्जना, छंदराहित्य, शब्द
की लय की परम्परा से विनिर्मुक्तता : अर्थ की लय ।(141-174)

(घ) यथार्थवादी चेतना :- यथार्थ चेतना : बौद्धिक संतुलन,
यथार्थ चेतना : व्यक्ति और समाज की सापेक्षता । (175-191)

(ङ) मानव विशिष्टता एवं उसकी प्रतिष्ठा :- स्वातन्त्र्योत्तर
परिस्थितियां : मानव समस्यायें, नये मानव की कल्पना। (192-211)

(च) क्षणानुभूतियों की पकड़ :- क्षणानुभूतियों का महत्त्व,
चेतना का परिष्कार, साधारण क्षणों से लगाव,
क्षण में शाश्वतता का आभास । (212-226)

(छ) बौद्धिकता :- बौद्धिक निष्क्रियता और नवचिन्तन,
बुद्धि और हृदय का समन्वय, अतिबौद्धिकता; रसहीनता । (226-238)

(ज) सौन्दर्यबोधमूलक नवीन चेतना :- नवीन सौन्दर्य-बोध :
दोषपूर्ण व्याख्या, सौन्दर्य-बोध : प्रकृतिचित्रण के
सन्दर्भ में । (239-254)

षष्ठ परिच्छेद : समकालीन चेतना के नये आयाम -- 255-296.

(क) विश्वयुद्ध के सन्दर्भ में सार्वदेशिकता का आयाम : अखण्ड
मानवतावाद;- सार्वदेशिकता, भारतीय स्वातन्त्र्य :
सार्वदेशिकता, प्रयोगवाद से भिन्न नयी कविता में
सार्वदेशिकता एवं मानवतावाद, अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में

विषय | पृष्ठसंख्या

मानवतावाद ,औद्योगिक समाज-व्यवस्था :मानव-
व्यक्तित्व का क्षरण, दोहरे सन्दर्भ में मानव-व्यक्तित्व
का विघटन, युद्धजनित मनोविकृतियां: भारतीय परिवेश,
विश्वयुद्ध: भारतीय चेतना में प्रेरणा एवं प्रकाश, ठोस
मानवीयता की उपलब्धि आज के युग की समस्या । (256-273)

(ख) स्वातन्त्र्योत्तर भारत के सम्पन्न मनस की पीड़ा,
स्वतन्त्रता के बाद मूल्यभ्रष्टता, व्यक्ति की नगण्यता,
संस्कारहीनता,असन्तुलन,चारित्रिक असंगतियां,बेरोजगारी,
भीड़ मनोवृत्तियों पर पार्टियों का शासन, युवा असंतोष,
पलायन,अजनबीपन । (274-287)

(ग) आधुनिकता का आग्रह :-मानवतावाद,[illegible] युद्धों का
प्रभाव,संक्रमणकालीन विघटन में व्यक्ति की पीड़ा,
असम्पृक्तता और अर्थहीनता, असन्तुलन और व्यर्थता ।(288-296)

सप्तम परिच्छेद : मूल्यान्वेषण :-मूल्यसंकट की स्थिति,नवीन मूल्यों की 297-311
खोज या मूल्यहीनता की स्वीकृति; औद्योगिक युग में
प्राचीन मूल्यों की अनुपादेयता, नये मूल्यों की समस्या :
मानव-विशिष्टता, दिशाहीनता : असंगतियां,अभिव्यंजना
के नये मान, सम्पूर्ण सृष्टि में नया आत्म-बोध,पलायन ।

अष्टम परिच्छेद : भविष्य में इन नये आयामों की दिशा एवं उनकी 312-349
परिणति क्या ? :-नयी कविता उपलब्धि और सीमायें,
चेतना का विस्तार,युग-चेतना की दिशा,व्यक्तिस्वातन्त्र्य
और उसकी दिशा, व्यक्तिस्वातन्त्र्य : संकुचित दृष्टि,
परम्परा मुक्ति और दायित्व, पुनः परम्परा की ओर
झुकाव; यथार्थपरकता: कितनी गहरी? ठोस मानवीयता:
महत् उत्तरदायित्व, सर्वानुभूति: शाश्वत सन्दर्भ में चेतना
की नयी उपलब्धि या संकुल; लौकिकता या अलौकिकता?
नई सौन्दर्य-दृष्टि: उसकी दिशा, समाजगत चेतना के नये

विषय | पृष्ठसंख्या

पाश्चर्य की दिशा: सार्वदेशिकता एवं मानवतावाद- कितना समाधान ? ,पराजय की स्वीकृति: निराला का चरमबिन्दु, आधुनिकता कितनी? ,नयी कविता का भविष्य ।

परिशिष्ट	अ - औ

ग्रन्थ सूची	क - ब

आमुख

आमुख

नयी कविता को अपना शोध का विषय चुनते समय मैंने जो २० वर्षों की अवधि निर्धारित की है, उसमें नयी कविता से सम्बन्धित बहुत सी स्वतन्त्र काव्य-रचनायें, बहुत-सी संगृहीत काव्य-रचनायें तथा कई शोध एवं समालोचना-ग्रन्थ प्रकाश में आ चुके थे। समालोचना तथा शोध-ग्रन्थों में नयी कविता को भिन्न-भिन्न रूप से देखने का प्रयास किया गया है, समर्थन एवं विरोध दोनों का ही मिला-जुला रूप सामने आया है। मैंने, नयी कविता के विषय में अब तक जो कुछ भी लिखा जा चुका है, उससे हटकर कुछ नये तथा महत्वपूर्ण तथ्यों को देखने का प्रयास किया है। मैं नयी कविता को विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया मानता हूं। जिन परिस्थितियों में नयी कविता का जन्म हुआ है, वे संक्रमणकालीन परिस्थितियां थीं। अतः युगीन परिस्थितियों की टकराहट से आज की युग-चेतना अनेक प्रच्छन्न दिशाओं में भटकी है, वहां उसने कुछ खोया है तो कुछ पाया भी है। इसी खोने और पाने की प्रक्रिया ने नयी कविता में चेतना के नये आयामों को जन्म दिया है। ये चेतना के आयाम नव मनोविज्ञान से सम्बद्ध हैं। ये चेतना के आयाम आत्मगत भी हैं और समाजगत भी। मेरे शोध का मुख्य विषय यही है।

मेरे शोध की अवधि सन् १९४७ से १९६७ तक है। इस अवधि में प्रयोगवादी कवि भी आ जाते हैं, लेकिन जैसा कि 'तारसप्तक' की भूमिका में अज्ञेय ने घोषणा की है कि 'प्रयोग' का कोई वाद नहीं। हम वादी नहीं रहे हैं (पृ०७५), इसके बाद 'दूसरा सप्तक' में तो उन्होंने यहां तक कह दिया कि हम वादी नहीं रहे हैं। प्रयोग अपने-आप में इष्ट या साध्य नहीं है। ठीक इसी तरह कविता का कोई वाद नहीं ... (भूमिका

पृ०५) इस दृष्टि से देखें तो प्रयोगवाद का सन् १९४३ (तार सप्तक का प्रकाशन-वर्ष) से सन् १९५९ (तीसरा सप्तक) तक को १६ वर्षों की छोटी अवधिमें जो काव्य-धारा प्रवाहित हुई है, वह मेरे मत से नयी कविता का पिछला कड़ी ही माना जा सकता है । इसके अतिरिक्त अज्ञेय ने तार सप्तक(भूमिका पृ०५) में कवियों के चुनाव में नयी दृष्टि रखी कि "सभी कवि ऐसे होंगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं, केवल अन्वेषी ही मानते हैं... ।" इस तरह कई अन्य कवियों ने भी अपने को अन्वेषी ही माना है । इस दृष्टि से मैंने अपने शोध में नयी कविता को विवेच्य काल की प्रमुख धारा माना है और उसे ही अपने शोध का मुख्यरूप से विषय बनाया है ।वैसे भी 'तीसरा सप्तक' प्रयोगवाद के कवि 'तीसरा सप्तक' में नयी कविता के ही कवि माने जायेंगे । भारत-भूषण अग्रवाल,गिरिजा कुमार माथुर, अज्ञेय, भवानी प्रसाद मिश्र,शमशेरबहादुर सिंह, नरेश मेहता, केदारनाथ सिंह, रघुवीर सहाय, कीर्ति चौधरी,विजयदेव-नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और कुंवर नारायण आदि पिछले खेमे के कवि नयी कविता के क्षेत्र में प्रवेश कर चुके हैं और इन्हें अब नया कवि ही माना जाता है ।

प्रथम परिच्छेद में मैंने नयी कविता की पृष्ठभूमि में पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं की चर्चा करते हुए क्रमश: छायावाद,प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद की मुख्य प्रवृत्तियों की चर्चा की है तथा यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि नयी कविता की प्रकृति इन विधाओं से भिन्न है, यद्यपि पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं के कुछ गुण (अवगुण भी) नयी कविता में भी स्वीकार किये गये हैं । इसके पश्चात् मैंने नयी कविता का प्रवेश, संघर्ष एवं नये मार्ग की व्याख्या की है ।

द्वितीय परिच्छेद में नयी कविता और उसकी नव-मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि की चर्चा की है । अन्त में फ्रायड के मनोविश्लेषण-वाद की चर्चा करते हुए नयी कविता की मनोविश्लेषणवाद से आगे की दिशा

के विषय में चर्चा का है ।

तृतीय परिच्छेद में नयी कविता की नयी आत्म-चेतना की चर्चा की है । प्रयोगवाद से पृथक् नयी कविता की आत्म-चेतना मानवतावादी दृष्टिकोण को लेकर चली है, इसलिए मैंने इसे नयी आत्म-चेतना कहा है ।

चतुर्थ परिच्छेद में नयी कविता की नयी समाज-चेतना की चर्चा की है, नयी समाज-चेतना इस अर्थ में है, क्योंकि समाज-चेतना पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं में भी थी, चाहे वह काफी हल्के रूप में रही हो । नयी कविता की समाज-चेतना पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं की कमियों को भुला कर नये समाज का निर्माण करती है । नया कवि व्यक्ति और समाज को प्रायः साथ-साथ ही लेकर चला है । समाज से पृथक् वह व्यक्ति का कोई महत्व नहीं समझता ।

पंचम परिच्छेद में मैंने आत्मगत चेतना के नये आयामों की चर्चा करते हुए उन नवीन आयामों की चर्चा की है, जो नयी कविता की उपलब्धि ही कहे जा सकते हैं । इनमें मानव-विशिष्टता एवं ठोस मानवीयता की उपलब्धि, क्षणानुभूतियों की पकड़, सौन्दर्य-बोध-मूलक नवीन चेतनादि मुख्य हैं ।

षष्ठम परिच्छेद में मैंने समाजगत चेतना के नये आयामों के अन्तर्गत विश्व-युद्ध के सन्दर्भ में सार्वदेशिकता एवं अखण्ड मानवतावाद की चर्चा की है । इस परिच्छेद के (क) वर्ग में मैंने सार्वदेशिकता एवं व्यापकता की दृष्टि से मानवतावाद की चर्चा की है, (ख) वर्ग में स्वातन्त्र्योत्तर समाज मानस की पीड़ा की व्याख्या की है और (ग) वर्ग में उपरोक्त दोनों वर्गों के विषयों में आधुनिकता का रूप निर्धारित करने का प्रयास किया है ।

सप्तम परिच्छेद में मैंने मूल्यान्वेषण के प्रश्न को उठाया है । नयी कविता जिन संक्रमणशील परिस्थितियों में लिखी जा रही है

इन परिस्थितियों के कारण नयी कविता में मूल्यसंकट की स्थिति आ गयी है । अत: यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि नयी कविता में नवीन मूल्यों की खोज का प्रयास है या मूल्यहीनता की स्वीकृति है, इस दृष्टि से यहां मूल्यान्वेषण के प्रश्न को उठाया गया है ।

अष्टम परिच्छेद अन्तिम परिच्छेद है । इसमें मैंने आत्मगत चेतना और समाजगत चेतना के नये आयामों की परिणति कहां हो रही है, यह देखने का प्रयास किया है ।

परिशिष्ट में नयी कविता की रचना-प्रक्रिया में अभिव्यक्त चेतना में भाषिक संरचना पर विचार किया गया है । क्योंकि नयी कविता की भाषा के विषय में भी जब- तब विवाद उठते रहते हैं ।

शोध की अवधि सन् १९४७ से १९६७ तक निर्धारित होने के कारण इस बीच जो काव्य-रचनायें समक्ष आई हैं,उनही को मैंने शोध-प्रबन्ध का माध्यम बनाया है । कुछ रचनायें, जैसे -`अतुकान्त`: लक्ष्मीकान्त वर्मा, `खुले हुए आसमान के नीचे` : कीर्ति चौधरी,`अंधेरी कवितायें`तथा`चकित है दुख` भवानी प्रसाद मिश्र आदि का प्रकाशन-वर्ष सन् १९६८ है, परन्तु इन रचनाओं
मे ही लिखा गया होगा अत: इन्हे मैं सन् १९६७
को मैं सन् १९६७ की काव्य-चेतना के अन्तर्गत ही मानती हूं । मुक्तिबोध का `अंधविराम` अवश्य सन् १९६९ की प्रकाशित रचना है, परन्तु इसे छोड़ने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पायी हूं और इस असमर्थतावश मैंने अपने शोध-प्रबन्ध में आवश्यकतानुसार इसका उपयोग भी किया है ।

अन्त में मैं उन सभी गुरुजनों और सहायक व्यक्तियों के प्रति आभार प्रदर्शन करना चाहूंगी ,जिन्होंने मेरे शोध-कार्य को आसान बनाया है । सर्वप्रथम मैं माननीय अध्यक्ष डा०लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय को हृदय से धन्यवाद देना चाहूंगी,जिन्होंने मेरे शोधकार्य से सम्बन्धित पुस्तकों को विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में मंगवाया । पूजनीय गुरुओं, डा० जगदीश गुप्त, डा०रामस्वरूप चतुर्वेदी तथा श्री दूधनाथ सिंह जी को भी मैं धन्यवाद देना नहीं भूलूंगी जिन्होंने

निस्संकोच पुस्तकें देकर जब-तब मेरी सहायता की है ।

श्रद्धेया निर्देशिका डा० मीरा श्रीवास्तव के विषय में तो मैं अपना हार्दिक कृतज्ञता भी प्रकट करने में असमर्थ हूं, बस इतना ही कहूंगी कि उनकी सतत् प्रेरणा, सद्भावना एवं सुयोग्य निर्देशन से मैं अपना शोध-कार्य पूरा कर पायी हूं । समय-समय पर उत्पन्न मेरी असमर्थता एवं उलझनों को इन्होंने अपने सशक्त एवं प्रेरणाप्रद विचारों से सुलझा कर मुझे मार्ग दिखाया है ।

सबसे अन्त में मैं पं० रामहित जी त्रिपाठी को अवश्य धन्यवाद देना अपना परम कर्तव्य समझती हूं जिन्होंने अत्यल्प समय में ही पूरी सतर्कता से मेरा शोध-प्रबन्ध टाइप किया है ।

-0-

गीता सक्सेना

२२ दिसम्बर, १९७१ई० (श्रीमती गीता सक्सेना)

प्रथम परिच्छेद

नयी कविता की पृष्ठभूमि में पूर्ववर्ती काव्यधारायें

और

नयी कविता का जन्म

छायावादी काव्य

पलायन, रहस्यवाद, प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्ति,
खण्डित सौन्दर्य दृष्टि, अभिव्यंजना शैली, सामाजिकता ।

प्रगतिवादी काव्य : सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियां

व्यक्ति के स्थान पर समाज का महत्त्व : एकांगिता,
नीरसता, वस्तुपक्ष की प्रधानता, उपलब्धियां ।

प्रयोगवादी काव्य : सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियां

प्रयोग की घोषणा, फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव,
वैयक्तिक स्वतन्त्रता, बाह्य सत्य के स्थान पर आत्म सत्य का
अन्वेषण ; उद्घाटन, अहंवाद और व्यक्तिवाद,
व्यक्तित्व का अभाव ।

संक्रमण काल : नयी कविता का प्रवेश

पूर्व परम्पराओं से असन्तोष : वैज्ञानिक युग-बोध
संकुचित दृष्टि के स्थान पर व्यापक दृष्टिविस्तार
कृत्रिमता एवं काल्पनिकता से हटकर
अवचेतन की ही नहीं, चेतन की स्वीकारोक्ति भी
नयी कविता का संघर्ष
नये मार्ग की व्याख्या ।

-0-

प्रथम परिच्छेद

नयी कविता की पृष्ठभूमि में पूर्ववर्ती काव्यधारायें
और
नयी कविता का जन्म

नयी कविता की पृष्ठभूमि : पूर्ववर्ती काव्यधारायें

सन् १९४७ में भारत का स्वतन्त्रता विश्व के इतिहास में एक महत्वपूर्ण एवं चमत्कारिक घटना थी । इसके पूर्व इस शताब्दी में साम्राज्यवाद ने दो विनाशकारी युद्ध छेड़े, भीषण रक्तपात से करोड़ों मनुष्यों ने होली खेली, जन और धन दोनों की महान् क्षति हुई, सर्वत्र अराजकता, हाहाकार एवं अव्यवस्था परिव्याप्त हो गई । अत: इस अवधि का साहित्य विशाल बौद्धिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक उथल-पुथल एवं विसंगति का साहित्य रहा है । गुलामी की जंजीरों में जकड़े साहित्यकारों की विवशता ही नये-नये रूपों में सामने आती रही । इस युग का अधिकांश साहित्य मौलिक प्रतिभा का साहित्य न होकर युग के दबाव का साहित्य ही अधिक समझा जा सकता है । परन्तु भारत की स्वतन्त्रता से विश्व के अन्य पराधीन देशों में स्वतन्त्रता के प्रति जागरूकता आई ।

द्वितीय विश्वयुद्ध तो विश्व के इतिहास में एक अनोखा घटना मानी जायगी । यह क्रान्ति एक युगान्त की सूचक तथा नये युगारम्भ की घोषणा थी । इस युद्ध के दौरान सम्बन्धित-असम्बन्धित सभी राष्ट्रों को दबाव में रहना पड़ा, दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं की कमी महसूस की गई । सामान्य जीवन में तीव्रता से परिवर्तन एवं हलचल उत्पन्न हो गई । विज्ञान के इस युग में हमारे सम्बन्धों का स्तर अपने देश तक ही सीमित नहीं रहा, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हमारे सम्बन्धों का सिलसिला बढ़ा और बहुत सम्भव था कि अब हमारे सम्बन्धों का स्तर देश की सीमा

का अतिक्रमण कर गया तो हम समस्त विश्व में हो रही घटनाओं से प्रभावित होते हों, अर्थात् सम-सामयिक विषयों, समस्याओं की ओर साहित्यकारों का ध्यान जाना आवश्यक हो नहीं, युग की मांग थी । लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व छायावादी काव्य परम्परा का अन्त हो जाता है, इसलिए छायावादी कविता में प्रथम विश्वयुद्ध तक का प्रभाव किस सीमा तक पड़ा है, यह देखना होगा ।

छायावादी काव्य

नयी कविता की पृष्ठभूमि पर विचार करते समय सर्वप्रथम मेरा ध्यान छायावादी काव्य की ओर जाता है । सन् १९२० के आस-पास 'सरस्वती' और 'मतवाला' में 'पन्त' और 'निराला' की जो रचनायें निकल रही थीं, उनसे काव्य के क्षेत्र में नवीनता के दर्शन होना प्रारम्भ हो गया था । छायावादी काव्य रीतिकालीन स्थूलवादिता के विरुद्ध सूक्ष्म अभिव्यंजना शैली का काव्य कहा गया । १९२० से १९३५ई० तक की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियां उथल-पुथलकीथीं । प्रथम महासमर समाप्त हो चुका था, लेकिन युद्धकालीन संकट में दैनिक उपयोग की वस्तुओं की कमी तथा मंहगाई के कारण समाज त्रस्त था । अंग्रेजों की शासन-व्यवस्था के कारण भेद-भाव का भी बोलबाला था । समाज में तरह- तरह की अंधास्था एवं कुरीतियां फैली हुई थीं । कृषकों और श्रमिकों की स्थिति दिन-प्रति-दिन दयनीय होती जा रही थी । कुटीर उद्योगधन्धे बन्द किये जा रहे थे । मालगुजारी, टैक्स एवं करों से जनता त्रस्त थी । एक ओर ये परिस्थितियां व्यापक रूप में बढ़ती ही जा रही थीं, दूसरी ओर दूसरे महासमर का भय भी समाज के मानस में समाया हुआ था । देश की सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थितियां शोचनीय होने के कारण छायावादी कवि इन परिस्थितियों से साक्षात्कार नहीं कर सके, दूसरी बात यह भी स्वीकार की जा सकती है कि इस युग के प्रमुख कवियों की अभि-व्यंजना-प्रणाली भी नितान्त सूक्ष्म एवं नये प्रकार की थी, फलत: कुछ नवीनता के आग्रही होने के कारण तथा कुछ परिस्थितियों के प्रति प्रतिबद्धता न स्वीकार कर सकने के कारण ये कवि समाज विमुख होते गये। विश्व की, समाज की एवं देश की

परिस्थितियां इन्हें आन्दोलित तो करती थीं, लेकिन उससे त्राण पाने का कोई उपाय नहीं निकल सका, फलत: ये कवि अपने ही दु:ख को सर्वोपरि दु:ख, अपनी ही पीड़ा को सर्वोपरि पीड़ा मान बैठे । भावनाओं की अतिशयता में बहते हुए ये कवि क्रमश: पलायनवादी, कोरे काल्पनिक, रहस्यवादी एवं अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के होते गये । कोरी कल्पना की भूमि पर विचरते हुए जब सत्य की कठोर भूमि से ये छायावादी कवि टकराते हैं और सारे स्वप्न, सारी आशायें जब बिखरने लगती हैं तो उस क्षण ये कवि घोर निराशा में डूब जाते हैं, फलत: उनके काव्य में ये ही भावनायें अभिव्यक्त होती हैं । ऐसे उथल-पुथलमय वातावरण में काव्यक्षेत्र में जो नयी धारा दिखाई दी, वह छायावाद के नाम से जानी गयी । मूलत: छायावादी काव्य रोमैण्टिक काव्य था, यद्यपि इस युग में राष्ट्रीयता की भावना का प्रचुर प्रभाव भी देखा जा सकता है ।

पलायन

जहां एक ओर द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता से छायावाद सूक्ष्म अभिव्यंजना की ओर मुड़ा, वहीं उसने समाज से भी मुख मोड़ लिया । मूलत: छायावाद समाज से पलायन का काव्य माना जा सकता है । समाज से कट कर ये कवि अपने में इस सीमा तक सिमट जाये कि कला का दायरा इन तक ही सीमित रह गया । समाज की समस्यायें इन्हें किंचित्मात्र भी उद्वेलित नहीं करतीं, व्यक्तिगत काल्पनिक दु:ख ही इन्हें सर्वोपरि दिखाई देता है । `आंसू` और उच्छ्वास इनके चिर सहचर हैं[1] । इस प्रकार सम-सामयिक युग-बोध के स्थान पर समाज से पलायन एवं वैयक्तिकता का आग्रह छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति थी ।

---

१ ... जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छायी
दुर्दिन में आंसू बनकर
वह आज बरसने आई ...।
`आंसू`-- जयशंकर प्रसाद
पृ०-१४

रहस्यवाद

पलायन की एक दिशा रहस्य-भावना तक गई। छायावाद का रहस्य भावनात्मक रहस्य है। ये कवि सन्त कवियों के रहस्यवाद को अपना कर नहीं चले हैं, इनका रहस्य जीवन-जगत् के मध्य छाया रहता है। अपने चारों ओर ये कवि गहन कुहासा देखते हैं और उस कुहासे में ये एक-से-एक चमत्कारिक भावनाओं को अभिव्यक्ति करते हैं। छायावादियों का रहस्य जहां एक ओर काल्पनिकता की सीमा पार कर जाता है, वहीं अपूर्ण भी रह जाता है। क्योंकि छायावादी जिस रहस्य की सृष्टि करना चाहते हैं, वह न तो इस लोक का रहस्य बन पाता है और न परलोक का। अर्थात् रहस्यवाद के नाम पर छायावादियों ने दिन में भी स्वप्न देखने का प्रयास किया है।

प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्ति

इस पलायन और रहस्य के लिये उपयुक्त क्रीड़ा-भूमि मिली प्रकृति। जहां छायावादी समाज से कटकर अपने में सीमित होते गये, वहां उन्होंने अपने अभिव्यक्ति का माध्यम भी निराला ढूंढ लिया। अपने ही हर्ष को हर्ष और अपने विषाद को विषाद मानने वाले ये कवि प्रकृति और अपने बीच ऐसे रहस्यमय सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं कि उसके माध्यम से ये अपने उच्छ्वास, अपना प्रणय और अपनी जिज्ञासा को सामने रखते हैं। प्रकृति और व्यक्ति के बीच इस तरह की सम्बद्धता छायावाद की प्रमुखता ही मानी जायगी।

खण्डित सौन्दर्य दृष्टि

छायावादियों की दृष्टि आकाश की ओर ही रहती है, जिस धरती पर खड़े हैं, उसकी ओर उनकी दृष्टि नहीं है। तारे ही उन्हें मौन संकेत देने लगते हैं। प्रकृति का अपरिमित सौन्दर्य उसे कभी चकित करता है, कभी विमुग्ध या कभी-कभी उसके सौन्दर्य से आक्रान्त भी। सौन्दर्य के प्रति छायावादियों की खण्डित दृष्टि है। जीवन की अखण्डता में सौन्दर्य को लेकर ये कवि नहीं चले हैं। इनका सौन्दर्य, इनकी पीड़ा, इनकी निराशा और इनके आंसुओं तक ही

सीमित है । इसलिए छायावादियों का सौन्दर्य-दृष्टि अद्भुत प्रकार की कहा जायगा।

अभिव्यंजना शैली

छायावाद की अभिव्यंजना इतनी परिवर्तित एवं सूक्ष्म थी कि उसे 'अभिव्यंजनावाद' भी कहा गया है । सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए छायावाद में सूक्ष्म अप्रस्तुत विधान को अपनाया गया । सूक्ष्म प्रतीक,नये बिम्ब और नये उपमानों का प्रयोग छायावाद की विशेषता है । काल्पनिकता एवं रहस्यमयता पैदा करने के लिए भाषा को भी परिवर्तित किया गया ।

सामाजिकता

ऐसा नहीं स्वीकार किया जा सकता है कि छायावाद में समाज-चेतना का कुछ भी अंश नहीं मिलता । राष्ट्रीय जागरण की लहर उस समय तक सभी देशों में आ चुकी था,इसलिए छायावाद में राष्ट्रीयता एवं सामाजिकता के भी दर्शन होते हैं,परन्तु छायावाद में वैयक्तिकता के तीव्र आग्रह में सामाजिकता का पक्ष नगण्य ही रहा है । राष्ट्र-भावना से ओत-प्रोत प्रसाद का 'अरुण यह मधुमय देश हमारा', 'निराला' का 'भारति जय विजय करे' आदि गीत छायावादी युग के अनुपम राष्ट्र-गीत कहे जा सकते हैं । इसके अतिरिक्त माखनलाल, महादेवी, सुभद्राकुमारी चौहान आदि के गीतों में भी पर्याप्त राष्ट्रीय चेतना के दर्शन होते हैं ।

इन सब के बावजूद छायावाद आधुनिक हिन्दी साहित्य का नवीन प्रयोग माना गया । यद्यपि इसका रूप यों बना-- सन् १९२० से सन् १९३५ तक छायावाद की जो धारा बही, उसमें अस्पष्टता,अलौकिकता,अहारोपण, अव्यवहारिकता, अविश्वसनीयता, गोपनीयता तथा वैयक्तिकता का अतिवादी रूप ही सामने आया[१] ।

---

१ नयी कविता और उसका मूल्यांकन -- सुरेशचन्द्र सहल(भूमिका),पृ०१

अज्ञात प्रेम में खोये इन प्रबुद्धों की गणना वादी परम्परा के अन्तर्गत हुई । सन् १६३६ से छायावाद का अन्त मान लिया जाता है । क्योंकि 'प्रसाद' का 'कामायनी' सन् १६३६ में ही लिखी गई, इसके बाद छायावाद का ह्रास होने लगा । यद्यपि इसी युग की 'प्रसाद' की 'कामायनी', 'पन्त' का 'युगान्त' नये परिवर्तनशील युग का प्रतिनिधित्व करते हैं, साथ-ही-साथ छायावादी शैली के स्थान पर नयी शैली का प्रतिपादन भी करते हैं ।

प्रगतिवादी काव्य : सामाजिक,राजनैतिक,आर्थिक परिस्थितियां

सन् १६२० से सन् १६३६ तक की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियां ज्यों-का-त्यों बनी हुई थीं, अनेकानेक और समस्याओं ने भारत को आ घेरा । एक ओर अंग्रेजों के दमन चक्र से ग्रामों में खेतिहर एवं कृषकों की दशा तो शोचनीय थी ही, साथ-ही-साथ छोटे-मोटे कुटीर उद्योगधंधे भी विदेशी माल खपाने के लिए बन्द करवा दिये गये ।आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियां इतनी बिगड़ चुकी थीं कि एक ओर विशाल भारतीय जन-समूह रोजी-रोटी के लिए तरस रहा था, तो दूसरी ओर पूंजीपति अपना स्थान मजबूत करते जा रहे थे ।

एक ओर सामाजिक,राजनीतिक और आर्थिक दशा शोचनीय थी ही, दूसरी ओर प्रथम विश्वयुद्ध के समाप्त होते-होते यूरोप में मार्क्सवाद के अनुसार एक शासनसत्ता स्थापित हुई,जिसने समस्त विश्व में नयी चेतना दी । भारत भी इस विचारधारा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका । परिणाम-स्वरूप भारत में समाजवाद की नींव पड़ी । इसी समय 'ट्रेड यूनियन' भी बनी । बेकारी की समस्या से समाज त्रसित होता जा रहा था । साम्प्रदायिकता की आग भड़क उठी । पूंजीवाद और साम्राज्यवाद से सामना करने के लिए श्रमिकों का आंदोलन शुरू हो गया । हड़तालों और सभाओं ने श्रमिकों में नया उत्साह एवं क्रान्ति जगा दी ।

साहित्यिक क्षेत्र में इसी वर्ष 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई और प्रेमचन्द के सभापतित्व में उसका अधिवेशन हुआ । नवाब पक-

पत्रिकाओं का जन्म भी इसी दौरान हुआ । `हंस` और `जागरण` विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । `प्रसाद` की `कामायनी` तथा पन्त का `युगान्त` भी एक परिवर्तनशील युग का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

प्रगतिवादी काव्य की पृष्ठभूमि में उपरोक्त तथ्य थे, जिन्होंने छायावाद की अयथार्थ, काल्पनिकता, सुकुमारता, अशरीरीपन, व्यक्तिवादिता और पलायनवादिता से मुख मोड़ यथार्थ की कंकरीली भूमि पर सम-सामयिक युग-बोध को स्वीकार किया । ~~एक ओर~~ समाजवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण प्रगतिवादियों ने समाज-व्यवस्था पर कठोर व्यंग्य किये हैं, ~~दूसरी ओर~~ मार्क्स से प्रभावित होने के कारण `निराला` ने `कुकुरमुत्ता` में कठोर उपहास किया है । आर्थिक वैषम्य का परिणाम भिक्षुक है -- `निराला` ने प्रगतिवाद से पूर्व ही भिक्षुक की करुण तस्वीर उतारी थी --

`दो टूक कलेजे के करता
पछताता पथ पर आता .... ।`

निष्कर्षत: प्रगतिवाद की मुख्य प्रवृत्तियां निम्न मानी जा सकती हैं--

व्यक्ति के स्थान पर समाज का महत्त्व : एकांगिता

छायावाद में सम-सामयिक बोध राष्ट्रीय गीत अथवा प्रयाण गीत तक ही सीमित रहा है, यदा-कदा समाज-चेतना के भी दर्शन होते हैं । लेकिन मुख्यत: रोमैण्टिक भाव-धारा होने के कारण व्यक्ति को बड़ा महत्त्व मिला था । प्रगतिवाद ने छायावाद के व्यक्ति के स्थान पर समाज को महत्त्व दिया । तात्कालिक परिस्थितियों ने प्रगतिवादी कवियों को शोषण और आर्थिक वैषम्य के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करने के लिए बाध्य किया । इसलिए छायावाद के व्यक्ति का स्थान प्रगतिवाद में समाज ने ले लिया । यद्यपि प्रगतिवाद में समाज के एक वर्ग का ही चित्रण हुआ है ।

प्रगतिवाद में समाज के सुधार की तो बात उठाई गई, लेकिन उन वर्गों के समाज की बात उठाई गई जो दलितों-पीड़ितों का समाज था। पूंजीवाद के विरुद्ध श्रमिकों एवं कृषकों की दयनीय स्थिति का दुखड़ा रोया गया, उनके सुधार की बात की गई। जहां एक ओर प्रगतिवादी काव्य समाज के एक पक्ष को लेकर चला है, वहीं उसकी प्रकृति सुधारवादी आन्दोलन से प्रभावित भी लगती है, क्योंकि सुधारवाद के मोह में पड़कर सारा काव्य प्रतिक्रियावादी लगने लगा। व्यक्ति-विशेष को तो महत्व मिलने का प्रश्न ही प्रगतिवाद में नहीं उठता, वहां तो समाजवादी यथार्थ का स्वर गूंजा है। प्रेमचन्द ने तो यहां तक माना है -- `समाजवादी यथार्थवाद, यथार्थ सम्बन्धी वह दृष्टिकोण है, जो समाज तथा जीवन को परख कर नये तत्वों को समर्थन देता है। वह केवल अंधेरा और मायूसियत ही प्रदर्शित नहीं करता, बल्कि उन तमाम कारणों को भी स्पष्ट करता है, जिन्होंने जीवन में विषमताओं को जन्म दिया है[1]।`

नीरसता

प्रगतिवादी काव्य का एक बड़ा दोष नीरसता भी माना जायगा। अतिशय भावुकता एवं उत्साहवश जिस शौर्य एवं वीरता के दर्शन प्रगतिवाद में होते हैं, उससे सारा काव्य बोझिल हो उठता है। सुधारवाद का ऐसा डंका पीटा गया है कि मौलिकता के साथ-साथ कलापक्ष भी शिथिल पड़ गया है। सारा काव्य कोरा प्रलाप या प्रतिक्रियावादी लगता है। नागार्जुन, शिवमंगल सिंह `सुमन`, रांगेयराघव एवं केदारनाथ अग्रवाल आदि की रचनाओं में श्रमिकों एवं कृषकों की समस्याओं तथा उनके दुःखमय जीवन के चित्र देखे जा सकते हैं।

वस्तुपक्ष की प्रधानता

प्रगतिवादी काव्य में इस दृष्टि को कम महत्व मिला है, कारण प्रगतिवादी विषयवस्तु के चयन पर विशेष ध्यान रखते हैं,

---

१ `प्रगतिवादी काव्य` -- रमेशचन्द्र मिश्र, पृ० ७४ ।

अतएव उसी के अनुसार उनके काव्य में भावों को उत्तेजित करने की क्षमता अधिक है, शिल्पविधान प्राय: उनका विषय नहीं रहा है । इस दृष्टि से काव्य का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष शिल्प-पक्ष प्रगतिवाद में अवहेलना का शिकार हुआ है । वस्तुपक्ष के प्रति अत्यधिक लगाव के कारण प्रगतिवादी काव्य यथार्थवादी होने पर भी कभी-कभी अयथार्थ लगने लगता है । प्रगतिवाद की ऐतिहासिक चेतना विदेशी साम्यवाद से प्रभावित थी । अनेक बार उसके साहित्यिक होने में भी सन्देह होता है । युगीन परिस्थितियों में चाहे उसने जो लाभ दिखाया हो, एवं हित-सम्पादन किया हो, किन्तु शुद्ध साहित्य के क्षेत्र में उसे संकुचित मनोवृत्ति ही कहा जायगा । 'किसी दृष्टिकोण को लेकर साहित्य-सृजन करना और उसका चमत्कार पाटना दोनों अलग-अलग बातें हैं । 'लाल सेना' और लाल सवेरे के विषय को छोड़ कर अन्य सभी विषयों की उपेक्षा करना साहित्यिक-प्रगति के लक्षण नहीं हैं । इसके अतिरिक्त प्रगतिवादियों ने जो शैली अपनाई, वह अपने स्वभाव में इतनी शुष्क थी कि उसका प्रभाव इने-गिने सम्प्रदाय विशेष के लोगों पर ही पड़ता है । यही कारण है कि कुछ प्रगतिवादी शीघ्र ही अपने एकांगी दृष्टिकोण को पहचान कर दूसरी ओर मुड़ गये । उन्हें अपने खोखलेपन का आभास समय रहते ही हो गया । कुछ पुन: छायावादी युग की ओर लौट आये । साथ ही बाह्य कारणों ने भी कवियों को आकर्षित किया और इस प्रकार छायावाद और प्रगतिवाद की विरासत लेकर हिन्दी-कवियों में एक नयी धारा चल पड़ी, जिसे पहले प्रयोगवाद और बाद में नयी कविता की संज्ञा से अभिहित किया गया[1] ।' लेकिन बाद में प्रगतिवादियों ने समाज-सापेक्ष व्यक्ति को भी स्वीकार किया[2] ।

---

१. 'हिन्दी काव्य में शैलियों का विकास'--डा० हरदेव बाहरी, पृ० २३७ ।

२ 'अत: व्यक्तिविशेष के हर्ष-विषाद, सुख-दु:ख आदि मनोभावों के चित्र भी मिलते हैं जिन्होंने एक बार इस स्थापना को पुन: प्रमाणित किया कि साहित्य अथवा काव्य में व्यक्ति और समाज की अभिव्यक्ति यदि सन्तुलन से की जावे तो उसकी स्वाभाविक गरिमा को स्थिर रखने के साथ-साथ उसे व्यापक समाज-पीठिका पर भी दृढ़ता से टिकाये रख सकती है..।'

-- 'नया हिन्दी काव्य'-- डा० शिवकुमार मिश्र : 'प्रगतिवादी काव्य' पृ० १६२।

उपलब्धियां

प्रगतिवाद चाहे विदेशी मार्क्सवाद से प्रभावित हो या साम्यवाद से अथवा राजनैतिक या समाजवादी आन्दोलन हो पर उसकी उपलब्धियों को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है । प्रगतिवाद से पूर्व जो छायावादी परम्परा रही है, वह युग की मांग में सामने नहीं आ सकी थी । राष्ट्रीय चेतना की कुछ लहर तो परवर्ती छायावाद में दिखाई दी, लेकिन उसको पूर्ण प्रश्रय प्रगतिवाद में मिला । आस्था, विश्वास, उत्साह और दृढ़ता के स्वर प्रगतिवादी में तेजी से उठे हैं । समाज में बलात क्रान्ति का आह्वान भी प्रगतिवादियों की प्रकृति रही है ।

सामयिकता प्रगतिवादियों का मुख्य विषय रहा है । समाज में फैली विषमता, जातिगत वर्ग-भेद, अस्पृश्यता, नारी परतन्त्रता आदि के चित्र प्रगतिवादी काव्य में बहुलता से दिखाई देते हैं । ग्रामों की दलित, शोषित जनता के भी एक-से-एक मार्मिक चित्रण दिखाई देते हैं । सन् १९३६ के आस-पास घटने वाली सभी महत्वपूर्ण घटनाओं का चित्रण प्रगतिवाद में हुआ है । साम्प्रदायिक दंगे, बंगाल का अकाल, नौसैनिकों के विद्रोह, द्वितीय महायुद्ध, सन् १९४२ की क्रान्ति, देश का विभाजन, गांधी जी की हत्या, तृतीय महायुद्ध का सम्भावित संकट आदि पर प्रगतिवादी कवियों ने अपने भावों को अभिव्यक्त किया है[१] ।

राजनीति, साम्प्रदायिक भावना, समाजवाद, मार्क्सवाद एवं साम्यवाद आदि के प्रभाव से प्रगतिवादी काव्य में जो कुछ लिखा गया वह उस युग की आधुनिकता एवं जागृति का प्रमाण कहा जा सकता है । क्योंकि छायावादियों की तरह ये कवि आकाश की ओर निहारते अज्ञात पथ में ही भटकते नहीं रहे, इन्होंने धरती पर रहते हुए धरती और जन-जीवन के कल्याण-पथ को ही प्रशस्त करने का प्रयत्न किया है । चाहे अपने प्रयत्न में इन्हें अतिवादी कहा जाये अथवा प्रतिक्रियावादी, मार्क्सवादी अथवा साम्यवादी । एक बात और प्रगतिवाद में

---

१ 'नया हिन्दी काव्य' -- डा० शिवकुमार मिश्र, पृ० १७३ ।

खटकने वाला यह है कि प्रगतिवादियों ने परम्परा का निर्वाह अनिवार्यरूप से किया है । इसलिए प्राय: सभी प्रगतिवादी कवियों की रचनाओं में साम्य के दर्शन होते हैं ।

फिर भी प्रगतिवाद को उस युग का प्रयोग ही माना जायेगा, क्योंकि अपनी पूर्ववर्ती काव्य-परम्परा के विरोध में प्रगतिवाद सामयिक एवं आधुनिक ज्वलन्त समस्याओं एवं परिस्थितियों के क्षेत्र में नया प्रयोग ही था ।

प्रयोगवादी काव्य : सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियां

अतिशय भावुकता, एकालाप, यथार्थ होते हुए भी अयथार्थ लगने वाली अभिव्यक्तियों, व्यक्ति के स्थान पर समाज(वह भी वर्ग-विशेष का समाज), काव्य के एक पक्ष (वस्तु पक्ष) का निर्वाह होने के कारण सन् १९४३ में अज्ञेय के सम्पादकत्व में सात कवियों का जो संग्रह `तार सप्तक` के नाम से प्रकाशित हुआ, उसने अपनी नयी अभिव्यंजना शैली एवं विषय-वस्तु के कारण यकायक साहित्यकारों को विस्मित कर दिया । `प्रगतिशील लेखक संघ` की स्थापना सन् १९३६ में हो चुकी थी, जिससे नये साहित्यिक आन्दोलन का सूत्रपात प्रगतिवाद के रूप में हो चुका था । इसके अतिरिक्त सन् १९३६ के बाद की सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियां और भी उलझती जा रही थीं । सन् १९४२ की क्रान्ति, गांधी जी की हत्या, बंगाल का अकाल, द्वितीय विश्वयुद्ध, साम्प्रदायिक दंगे, देश-विभाजन आदि ऐसे जटिल तथ्य थे, जिन्होंने युग को उथल-पुथल से भर दिया था । द्वितीय विश्वयुद्ध ने समस्त मानवता के नाम पर जो बर्बर, आतंकवादी प्रभाव छोड़े, उससे समस्त विश्व की शान्तिप्रिय जनता कांप उठी । `नागासाकी` और `हिरोशिमा` पर घातक अणुबम छोड़े गये, जिससे जापान की सभ्यता, संस्कृति एवं पूरा-का-पूरा नगर ध्वस्त हो गया । मानवीय प्राकृतिक शक्तियों पर इतनी बड़ी विजय ने जो परिणाम दिखाये? उसने समस्त मानवता के विषय में सोचने के लिए बाध्य किया । विश्वयुद्धों की इतनी तीव्र प्रतिक्रिया हुई कि धीरे-धीरे समस्त विश्व में विश्वयुद्धों के घातक परिणाम एवं तत्पश्चात् उत्पन्न होने वाली मनोविकृतियों को संवेदनशीलता के आधार पर आत्मसात् कर लिया गया ।

द्वितीय विश्व-युद्ध के समय सम्बद्ध राष्ट्रों को भीषण दबाव एवं कठिनाई में जीवनयापन करना पड़ा, मंहगाई एवं दैनिक उपयोग की वस्तुओं में भारी कमी महसूस की गई, समाज में पूंजीपतियों को पूंजी बढ़ाने का अच्छा अवसर हाथ लगा । भ्रष्टाचार,चोरी,अकर्मण्यता, बेईमानी को प्रश्रय मिला, समाज में वैषम्य फैलने लगा, मानव-मन समाज-व्यापी कुंठा का शिकार तो हुआ ही, दूसरी ओर विश्वव्यापी संकट से भी भयभीत हुए बिना भी नहीं रह सका । जीवन में तीव्रता आई । उद्योग और प्रविधि की सेवा से विकास हुआ, विज्ञान की गति बढ़ी । जिससे समस्त विश्व की सीमाएं संकुचित हुई। विश्वव्यापी संकट से मानवता के प्रति समस्त विश्व में उत्तरदायित्व एवं सुरक्षा की भावना जगी । संस्कृतियां, पद्धतियां आपस में टकराई, युग-युग से संचित मानव-मूल्य में संक्रमण आया, संवेदना के स्तर पर समस्त मानव की चेतना का विस्तार हुआ । छायावादी द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता से ऊबकर अन्तर्जगत के उद्घाटन के लिए अभिव्यंजना की नयी शैली निकाल चुके थे, लेकिन उनकी यह शैली समाज-चेतना की अभिव्यक्ति के लिए नहीं थी, वह तो छायावादी कवियों के अन्तर्जगत को ही तरह-तरह से प्रस्तुत करती रही। फलस्वरूप इस व्यक्तिवादी,काल्पनिक,रहस्यमयी प्रवृत्ति से चिढ़ कर प्रगतिवादियों ने अपने युग को समझाने का प्रयास किया, चाहे उनका प्रयास बहुत ही सीमित या असंगत रहा हो, पर वह युग की मांग में सराहनीय अवश्य कहा जायगा । परन्तु सन् १९४३ में `तारसप्तक` ने प्रयोगवाद के नाम से जो नया आन्दोलन प्रारम्भ किया वह था सर्वसाधारण की मुक्ति का आन्दोलन । प्रयोगवादी कवियों ने युग की दिन-प्रतिदिन जटिल होती समस्याओं एवं परिस्थितियों को सुलझाने के लिए व्यक्ति इकाई की स्वतन्त्रता से समाज की स्वतन्त्रता की बात उठाई । यद्यपि फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित होने के कारण वे कवि व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का सही और व्यापक अर्थ नहीं ले सके । नितान्त वैयक्तिक व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की बात जिस महत् उद्देश्य से उठाई गई थी,वह उद्देश्य प्रायः अपूर्ण ही रहा ।

प्रयोग की घोषणा

ऐसी परिस्थितियों में प्रगतिवादी समाज की वर्गगत समस्याओं में ही लगे काव्य सृजन कर रहे थे, वहाँ व्यक्ति इकाई की भावनाओं एवं समस्याओं का स्थान नहीं था। इस एकांगिता से ऊब कर अज्ञेय सहित छः अन्य कवियों का 'तार सप्तक' नामक जो संग्रह निकला, उसने प्रगतिवाद के समाज के विरुद्ध व्यक्ति की समस्याओं को, भावनाओं को एवं अनुभूतियों को महत्ता प्रदान की। 'तार सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय ने स्वीकार किया है कि --"कवियों के चुनाव में दूसरा मूल सिद्धान्त यह था कि संगृहीत कवि सभी ऐसे होंगे, जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं-- जो यह दावा नहीं करते कि काव्य का सत्य उन्होंने पा लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को मानते हैं।"[1]

अन्वेषण की यह विचारणा 'तारसप्तक' में और भी स्पष्ट हो जाती है, जब प्रयागनारायण त्रिपाठी भी अपने को अन्वेषी मानते हैं।[2] अन्ततः सन् १९४३ई० में 'तारसप्तक' के प्रकाशन से प्रयोगवाद काव्य-धारा का प्रामाणिक रूप स्वीकार किया जा सकता है। बाद में सन् १९४७ई० में अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'प्रतीक' नामक एक मासिक पत्रिका भी साहित्य क्षेत्र में निकली, जिससे प्रयोगवाद के विषय में कुछ और स्पष्टता मिल सकी।

यद्यपि प्रयोगवाद शिल्प और कला के क्षेत्र में सर्वथा नवीन प्रयोग था, फिर भी अज्ञेय ने 'प्रयोग' शब्द को वादी परम्परा से जोड़ने का कड़ा विरोध किया और स्वीकार किया कि प्रयोग का कोई वाद नहीं है।[3]

---

१ 'तार सप्तक' -- सम्पा० अज्ञेय, (भूमिका), पृ०५

२--"कविता के क्षेत्र में एक अन्वेषी हूं। इस अन्वेषण की यात्रा का एक लम्बा इतिहास है... ।"--'तीसरा सप्तक'--सम्पा० अज्ञेय : 'आत्मनिवेदन', प्रयागनारायण त्रिपाठी, पृ० ३।

३--"हम वादी नहीं रहे हैं। प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य नहीं है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है, कविता भी अपने में इष्ट या साध्य नहीं है। अतः हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है, जितना हमें कविता वादी..।"--'दूसरा सप्तक'-सम्पा० अज्ञेय, (भूमिका), पृ०६।

इस प्रकार की घोषणाओं के पश्चात् प्रयोगवाद अपने को वादों का परम्परा से नहीं बचा पाया । प्रयोग प्रगति एवं मौलिक प्रतिभा को बढ़ाने वाला होता है, ऐसा स्वीकार करने के बाद भी प्रयोग शब्द का संकुचित अर्थ में प्रयोग किया गया । प्रगतिवाद के समाजवादी यथार्थवाद से ऊबकर व्यक्ति-विशेष की भावनाओं एवं समस्याओं का और प्रयोगवादी आकृष्ट हुए । इसप्रकार प्रयोगवाद की प्रकृति और प्रकृतिवाद का प्रकृति में सिद्धान्तों की हा विभिन्नता सर्वोपरि था । दोनों विधाओं का लक्ष्य कदई भिन्न था, अत: इसी विभिन्नता के आधार पर 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ ही प्रगतिवाद का साहित्यिक पतन मान लिया जाता है ।

फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव

प्रयोगवाद और प्रगतिवाद का प्रकृति में पर्याप्त अन्तर देखा जा सकता है । मूल रूप से प्रगतिवादी साम्यवाद, मार्क्सवाद से प्रभावित थे तो प्रयोगवादी फ्रायड की विचारधारा से प्रभावित थे । फ्रायड के अनुसार व्यक्ति अवचेतन की स्थिति में रहता है, उस अवचेतन की स्थिति में वह सारी परिस्थितियों, समाज और यहां तक कि यथार्थ से भी कटकर आत्मकेन्द्रित हो जाता है । अथवा डा० कृष्णलाल शर्मा के अनुसार -- 'फ्रायड मनुष्य की गहराई से समझने के लिए उसे समाज से विच्छिन्न करके देखता है । वह उसके समस्त व्यवहारों के मूल में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से यौन भावना को समझता है । उसके मत से साहित्य में भी व्यक्ति जितना महत्वपूर्ण है उतना समाज नहीं । समाज में यौन भाव से प्रभावित मनोविश्लेषण यहीं से प्रारम्भ होता है ।'[1] इसी भावना से आक्रान्त अज्ञेय ,भारती,सर्वेश्वरदयाल,लक्ष्मीकान्त वर्मा आदि कवियों ने सामाजिकता के साथ-साथ अपनी व्यक्तिगत भावनाओं, अनुभूतियों को भी काव्य-भूमि पर उतारा है । इनमें से अज्ञेय तो इतने स्वान्तप्रिय हो गये हैं, कि प्रणय उनके लिए साध्य बन गया ।

---

१ 'आधुनिक हिन्दी काव्य में ध्वनि' -- डा० कृष्णलाल शर्मा, पृ०३५३ ।

प्रेम का उपलब्धि में असफल ये प्रेमी अपने चारों ओर गहरा कोहरा देखते हैं,गहन कुहरे से उनका मन व्याकुल हो उठता है और उनकी यह आकुलता उद्दाम वासना-पूरित भावनाओं के में अभिव्यक्ति पाती है । निराशा छटपटाहट का अजाब निर्भ्राि उनके काव्य में होता है ।

वैयक्तिक स्वतन्त्रता

प्रगतिवाद को देखते हुए यह निस्संकोच स्वीकार किया जायगा कि प्रयोगवाद मानव-स्वातन्त्र्य की दृष्टि से व अधिक सूक्ष्म आंदोलन था,क्योंकि प्रगतिवाद में सुधारवादी भावनायें समाजवादी ढांचे पर आधारित थीं तो प्रयोगवाद की धारणा व्यक्ति-सत्य में निहित था । व्यक्ति स्वतन्त्रता से समाज के स्वातन्त्र्य का उद्देश्य अधिक कठिन माना जायगा । नयी अभिव्यंजना शैली में कामा,कोलन,छोटा-बड़ा लाइनों, विराम चिन्हों, स्वर को खींच-तान कर लम्बा करके (अर्थ-गाम्भीर्य के लिए) जो कुछ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया,उसका बहुत बड़ा कारण वैयक्तिक स्वातन्त्र्य ही माना जायेगा । अभिव्यंजना की इस शैली के कारण `भारती` ने स्वीकार किया है कि `प्रयोगशील कविता कई अर्थों में टेक्नीक और अभिव्यंजना का आन्दोलन है[१]।`

बाह्य सत्य के स्थान पर आत्म सत्य का अन्वेषण,उद्घाटन

प्रगतिवाद में जिस बाह्य सत्य का उद्घाटन हुआ वह सत्य सम्प्रदाय,जाति वर्ग-भेद,समाजवाद का यथार्थ था, उसका कवि की रागात्मकता से उतना सम्बन्ध नहीं था,जितना भावनाओं की प्रक्रिया से था । जिस राजनैतिक मतवाद के वशीभूत प्रगतिवाद का आन्दोलन चला है उसमें साहित्यिक तथ्यों का कम,राजनैतिकता के साथ यथार्थ का चित्रण अधिक हुआ है । इस तरह

---

१ `आलोचना` : भारती , सम्पादकीय,पृ०८

प्रगतिवाद साहित्य के क्षेत्र में स्वतन्त्र प्रतिभा का प्रदर्शन नहीं कर सका । प्रयोगवादी बाह्य सत्य के साथ आत्म सत्य एवं आत्मानुभूति के उद्घाटन में विश्वास करते हैं । आत्मसत्य के द्वारा ही प्रयोगवादी काव्य-सत्य को पाने का प्रयास करते हैं । `दूसरा सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय ने प्रयोग को अनिवार्य न मानते हुए काव्य सत्य को ही महत्वपूर्ण माना है[1] । इस प्रकार प्रगतिवाद के बाह्य यथार्थवादी सत्य के स्थान पर प्रयोगवादियों ने सूक्ष्म आत्म-सत्य की स्थापना की और इसी सत्य की खोज में प्रयोगवादी `नयी राहों के अन्वेषी' भी कहलाये । लेकिन जिस आत्मसत्य के सिद्धान्त से प्रेरित हो प्रयोगवादी काव्य-क्षेत्र में नया आन्दोलन लेकर अवतरित हुए थे, वह सिद्धान्त फ्रायडवादी यौन विषयक सिद्धांत पर आधारित होने के कारण चेतन जैसे तथ्य को अस्वीकार कर अचेतन की स्थिति में पड़े अपने अन्तर्मन की ही अनेकानेक भाव-स्थितियों एवं अनुभूतियों को तरह-तरह से अभिव्यक्त करने लगे । वैयक्तिक स्वतन्त्रता के पक्षपाती प्रयोगवादियों ने जिस तरह अदमित यौन भावना का चित्रण किया, उससे वैयक्तिक स्वातन्त्र्य का अर्थ व्यापक रूप में समष्टि-स्वातन्त्र्य न होकर आत्मानुभूतियों एवं मनोविकारों को नयी भाषा, नयी उपमाओं और नये प्रतीक के साथ सजा-संवार कर अहंवाद और व्यक्तिवाद की घोषणा की गई ।

अहंवाद और व्यक्तिवाद

प्रयोगवाद का अहंवाद व्यक्तिवाद से ही जुड़ा हुआ है । सामाजिक यथार्थ से कट कर में प्रयोगवादी व्यक्तिनिष्ठ हो गये और बड़ी-बड़ी घोषणायें अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों के आधार पर करने लगे । अहं के वशीभूत इन कवियों को अपने चारों ओर अपूर्णता एवं विषमता दिखाई देती है, अहं पर विशेष बल होने के कारण समस्त विषम लगने वाली परिस्थितियों से निपट भी लेना चाहते हैं । इस झूठे अहंवाद के फेर में प्रयोगवादी कवियों ने

---

१ `दूसरा सप्तक' -- सम्पा० अज्ञेय, (भूमिका), पृ० ८ ।

'मैं' की तरह-तरह से दुहाई दी है । छायावादी युग के व्यक्तिवादी कवियों ने सामाजिक अव्यवस्था और सामाजिक आतंक के विरुद्ध जिस भाषा और जिस अभिव्यक्ति की शरण ली थी, उसका चल सकना मुश्किल था, अत: प्रयोगवादियों ने अपने अहं को सब कुछ मान कर स्पष्टवादिता का सहारा लिया । इसी स्पष्टवादिता के प्रवाह में मर्यादा, अनुशासन की दीवार भी ढहढहा कर गिर गई । यौन विषयक कविताएं लिखी गईं, अन्तर्मन की गुत्थियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया । कुंठा, निराशा, पीड़ा, अवसाद को तरह-तरह से नये-नये रूप में सजाकर प्रस्तुत किया गया । समाज का महत्व इनके लिए नहीं के समान था। ये आत्मकेन्द्रित कवि व्यक्ति-इकाई को ही सब कुछ मानकर युग-बोध को नकार गये । मन के इस आयाम में वे छायावादी कवियों से कम नहीं रहे ।

दुर्बोध एवं उलझी हुई शैली के कारण प्रयोगवाद को सहर्ष स्वीकार नहीं किया गया । अपनी व्यक्तिनिष्ठ भावनाओं, काम-उद्दीप्त यौन भावनाओं तथा शुष्क एवं रुग्ण मनोविकारों के चित्रण के लिए प्रयोगवादियों ने वैयक्तिक शब्द गढ़े, शब्दों को तोड़-मरोड़ कर नया रूप दिया तथा शब्दों को खींच-तान करके अर्थ-गाम्भीर्य पैदा करने की कोशिश की, जिससे प्रयोगवाद को दुरूह और व्यक्तिगत सीमाओं का काव्य कहा गया ।

सामाजिकता का पक्ष प्रयोगवाद में प्राय: अवहेलना का ही शिकार हुआ है । वैसे शमशेरबहादुर, रामविलास शर्मा आदि कवि सामाजिक-दिशाओं की ओर मुड़े हैं और इसे समय की मांग अथवा दबाव का ही परिणाम कहा जायगा । क्योंकि प्रयोगवाद के काल में द्वितीय विश्व-युद्ध और बंगाल का अकाल जैसी झकझोर देने वाली महत्वपूर्ण घटनायें हो चुकी थीं । 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशित होने के पूर्व तो भारत की स्वतन्त्रता जैसी ऐतिहासिक महत्वपूर्ण घटना भी हो चुकी थी । स्वतन्त्रता के पश्चात् नयी शासन-व्यवस्था में गांधीवादी आदर्शों के महल धराशायी हो गये, भुखमरी, बेकारी की समस्यायें बढ़ने लगीं, समाज अनेकानेक समस्याओं से ग्रस्त हो गया । लेकिन प्रयोगवादी अन्तर्मुखी यथार्थ को ही सब कुछ मानकर प्रयोग की लीक परम्परा की पुष्टि

से पाटते रहे । युग-बोध प्रयोगवादियों की वैयक्तिक भावानुभूति को नहीं छू सका। शिल्पपक्ष के आग्रही होने के कारण भी वस्तुपक्ष अवहेलना का पात्र बना रहा। लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इस युग में समाज पक्ष को बिल्कुल अस्वीकार ही कर दिया गया है । किसी-किसी कविता में जैसे भवानी प्रसाद मिश्र की `गीत-फरोश', शकुन्तला माथुर की `दोपहरी', शमशेर की `बात बोलेगी', हरिव्यास का `शिशिरान्त', नरेश मेहता की `समय देवता', गिरिजा कुमार माथुर का `हव्श देश' रघुवीर सहाय की `पहला पानी' आदि रचनाओं में संघर्षरत टूटते-जुड़ते जीवन की झलक है, तो कहीं नये समाज के निर्माण की आशायें और तैयारियां भी दिखाई देती हैं । अपने आस-पास ही रही घटनाओं एवं परिवर्तनों की सत्यता को प्रयोगवादी अपने अन्तर्मन की चित्र-विचित्र भांकियां दिखाकर भुठला नहीं सके हैं[१]। एक ओर प्रयोगवाद में ये कमियां तो थीं हीं, दूसरी ओर अति बौद्धिकता के कारण यह वाद पाठक एवं आलोचक वर्ग को सहज मान्य नहीं हुआ । बौद्धिकता का अतिरेक किसी बात को जबरन मनवाने के लिए हुआ है, कोई नूतन दृष्टि ये कवि नहीं रख सके हैं ।

<u>व्यक्तित्व का अभाव</u>

वादों का कड़ा विरोध करते-करते ये प्रयोगवादी कवि वादों के चक्कर में अनायास ही फंस गये । एक-सा राग अलापने वाले इन

१-`मन की दुनियां में कृत्रिम मस्ती का लाख अनुभव करने पर भी जब हमारे पैर संसार की सख्त चट्टानों से टकराते हैं, तो उस समय ठेस लगती है । इस यथार्थ का कड़ुवा अनुभव युग के प्रत्येक मनुष्य को हो रहा है और इसी से ये कवि जब जीवन के किसी खास क्षण में इस मसले पर सोचते हैं, उस समय ये थोड़े बेचैन हो जाते हैं । और इनके मन की तमाम रंगीन दुनिया इस ठेस से बिखर जाती है और उस समय इनकी अनुभूतियां सच्ची मालूम होती हैं.... ।' -`आधुनिक परिवेश और नवलेखन'-- शिवप्रसाद सिंह : `नयी कविता की निकटवर्ती पृष्ठभूमि', पृ०२१७-२१८ ।

कवियों में व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव था । साम्प्रदायिक एकता और अपूर्ण अविकसित व्यक्तित्वों ने तार सप्तक के बाद कोई भी प्रगति की हो ऐसा स्पष्ट नहीं प्रतीत होता है । 'प्रयोग' शब्द की सार्थकता तो उनकी रचनाओं में ही हो जाती है । यद्यपि 'प्रयोग' शब्द का प्रयोग कवि-प्रतिभा की अभिव्यक्ति के लिए होना चाहिए था, लेकिन प्रयोगवादियों ने प्रयोग का अर्थ काव्य का मनमाना शृंगार करने से लिया । अतः प्रयोगवाद में कविताओं का खूब मनमाना शृंगार भी हुआ । गम्भीर साधना के स्थान पर हल्कापन और छिछलापन अधिक दिखाई देता है । यही कारण है कि प्रयोगवादी कवियों में स्वतन्त्र सुदृढ़ता नहीं दिखाई देती । अर्थात् जो अनुशासन किसी भी कविता को महत्ता प्रदान करता है, उसका पूर्णतया अभाव है । छंदबद्ध काव्य-रचना जितना अनुशासन, सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य मांगती है, उतना ही छंदमुक्त काव्य-रचना भी । बल्कि इतना ही नहीं, छंदमुक्त रचना तो और भी परिष्कृत एवं चुस्त प्रस्तुतीकरण मांगती है । अधिकांश प्रयोगवादी कवियों में इस बात का सर्वथा अभाव रहा है[१] ।

संक्रमण काल : नयी कविता का प्रवेश

यद्यपि प्रयोगवाद अपने युग का अनोखा प्रयोग माना जायगा, तथापि उसकी एकांगिता एवं शिल्पपक्ष की अतिशयता, अतिबौद्धिकता एवं अश्लीलता आदि ऐसे तथ्य थे, जिन्होंने युग-बोध की मांग पर इस प्रवृत्ति को अधिक समय तक पैर नहीं टिकाने दिये ।

---

१. 'अधिकांश प्रयोगवादी कवियों की रचना में अनुशासन की कमी दिखाई देती है जो विशिष्ट कविता अथवा कृति को चुस्त संगठन एवं विशद् बोध देता है । इस दृष्टि से नये कवि बच्चन के काव्य से जो जनभाषा के निकट है--बहुत प्रेरणा ले सकते हैं । स्पष्ट ही इसका अर्थ बच्चन के छंदों, मुहावरों एवं संवेदना का अनुकरण नहीं है ।'
'नयी कविता' अंक २, सम्पा० डा० जगदीश गुप्त, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी,
'प्रयोगवादी कवि : एक चेतावनी' -- डा० देवराज, पृ० ३ ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, समाज की एवं देश की राजनैतिक, आर्थिक, परिस्थितियां उथल-पुथल की थीं। भारत की स्वाधीनता, नयी राजनैतिक शासन-व्यवस्था, गांधी जी की मृत्यु, देश का विभाजन, साम्प्रदायिक दंगे, शरणार्थी समस्यायें इसके साथ-ही-साथ सन् १९४२ के बंगाल के अकाल के दुष्परिणाम सामने थे ही, विश्व-क्षितिज पर भी दूसरा विश्वयुद्ध समस्त विश्व को झकझोर गया था। तीसरे विश्वयुद्ध के सम्भावित संकट से भी समस्त विश्व में आतंक छाया हुआ था[१]। इसलिए प्रयोगवाद की संकुचित दृष्टि युग की सापेक्षता में टिक नहीं सकी। और नयी कविता के नाम से जो काव्य धारा साहित्य में प्रवाहित हुई उसने पूर्व परम्परा का तिरस्कार कर युग की सापेक्षता एवं मांग के अनुसार व्यक्ति और समाज को साथ-साथ प्रस्तुत किया।

नयी कविता का प्रवेश

यहाँ मैं अब नयी कविता का कुछ रूप स्पष्ट करना चाहूंगी। कुछ विद्वानों का मत है कि प्रयोगवाद को ही आगे चलकर नयी कविता का नाम मिला[२]। लेकिन मैं प्रयोगवाद को ही नयी कविता न मानकर यह मानूंगी कि पूर्ववर्ती काव्य-परम्पराओं की रिक्तता की पूर्ति के साथ-साथ नयेपन के साथ जो धारा सामने आई उसे नयी कविता कहा गया। सन् १९४० के बाद की कविताओं में अज्ञेय का व्यक्तित्व पूर्णरूपेण छाया हुआ-सा है, लेकिन और प्रयोगवादी प्रवृत्तियों से उनका रुख कुछ बदला हुआ-सा लगता है। इसी काल में 'नये पत्ते', 'कल्पना', 'ज्ञानोदय' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रयोगवादी कविता

१... 'मनुष्य के सामूहिक विनाश एवं निर्माण का प्रश्न आज जितना उग्र और स्पष्ट है पहले कभी नहीं था...।'

—'आधुनिक हिन्दी काव्य में ध्वनि' : डा० कृष्णलाल शर्मा, पृ०३५८।

२ 'हिन्दी काव्य में शैलियों का विकास' -- डा० हरदेव बाहरी, पृ०२३७।

के अतिरिक्त एक-दो ऐसी कविताएं भी निकलती थीं, जिन्हें वादमुक्त स्वतंत्र कविता के अन्तर्गत रखा जा सकता है। सन् १९४३ में `तार सप्तक` और सन् १९५१ में `दूसरा सप्तक` निकल चुके थे, लेकिन उसकी रचनायें सम-सामयिक युग-बोध से पूरी तरह प्रभावित नहीं लगती थीं। सन् १९५४ में डा० जगदीश गुप्त एवं डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी के सम्पादन में `नयी कविता` का अर्द्धवार्षिक संकलन प्रकाशित हुआ। इस प्रकार नयी कविता का सर्वमान्य रूप सन् १९५० से साहित्य क्षेत्र में माना जाता है। उसी के बाद से पत्र-पत्रिकाओं में प्रयोगवादी कविताओं की मात्रा कम होने लगी और नये कवियों की स्वतन्त्र रचनायें भी सामने आने लगीं।

पूर्व परम्पराओं से असन्तोष : वैज्ञानिक युग-बोध

नयी कविता से पूर्व साहित्य में वादों की लम्बी परम्परा देखी जा सकती है। छायावाद के पतन के साथ-साथ साहित्य में अनेकानेक काव्य-विधाओं का जन्म और पतन हुआ है। लेकिन एक धारा का पतन और नयी धारा का उदय किसी कारणवश ही होता है। जो कमियां किसी धारा में होती हैं, उसके विरोध में नयी धारा पूरक अधिक विरोधी कम जान पड़ती है। द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता एवं उपदेशात्मकता के स्थान पर छायावाद का आन्दोलन अधिक सूक्ष्म एवं वायवी था। नयी अभिव्यंजना शैली और विषयवस्तु के कारण इस धारा में `प्रसाद`, `पन्त`, `निराला` जैसे युग-कवियों ने साहित्य को बहुत कुछ दिया है। अन्तत: कालक्रम एवं युग की प्रगति के साथ इन कवियों की प्रतिभा का विकास अन्य धाराओं में हुआ है। लेकिन अपनी नूतनताओं के होते हुए भी युग की मांग में यह काव्य की धारा स्थिर नहीं रह सकी, क्योंकि युग के सामने जो समस्याएं थीं, उनको अधिक प्रश्रय इस धारा में नहीं मिल पा रहा था। इसके अतिरिक्त छायावादी काव्य के कवियों ने अपना अलग अभिव्यक्ति की परंपरा बना ली थी, उसी के अनुसार उनकी सृजन-प्रक्रिया का निर्वाह होता था। अत: वादों की परम्परा में इस काव्य-धारा की गणना हुई। इस प्रकार छायावाद

का द्विवेदी युग से, प्रगतिवाद का छायावाद से और प्रयोगवाद का प्रगतिवाद से असहमति का रूप देखा जा सकता है । कहना यह चाहिए कि हर युग में पूर्ववर्ती परम्परा से विद्रोह हुआ है ।

नयी कविता के साथ विद्रोह शब्द का प्रयोग न कर यदि यह कहें कि नयी कविता अपनी पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं की कमियों की पूर्ति के उदय से हमारे सामने आई, तो अत्युचित न होगा । नयी कविता परम्परा और इतिहास को झुठला कर नहीं चली है बल्कि उसका विरोध तो रुग्ण, जीर्ण-शीर्ण, दलित परम्पराओं से है, जिन्होंने साहित्य की जड़ें खोखला करके रख दी हैं । मान-मर्यादा और नैतिकता की जो लम्बी परम्परा साहित्य में युग-युग से चली आ रही थी, उसकी उपादेयता संक्रमणकालीन परिस्थिति में निरर्थक सिद्ध हुई । मानवतावादी विचारधारा समस्त विश्व में व्याप्त हो चुकी थी, इसलिए धर्म, नियतिवाद एवं आशावाद का अनुमोदन नहीं किया गया । वैज्ञानिक आविष्कार, प्रविधि विकास एवं औद्योगीकरण ने मानव समाज को अनेकानेक सुविधायें, सम्पन्नता एवं ऐश्वर्य की उपलब्धि तो कराई, लेकिन महानाश की भी स्थिति उत्पन्न कर दी, समस्त विश्व में युद्ध जैसी जघन्य घटना ने मानवता के विषय में सोचने के लिए विश्व भर के प्रबुद्ध, संवेदनशील व्यक्तियों को बाध्य किया । युग-युग से देवता अथवा राक्षस जैसी कल्पना के आगे सब साधारण-असाधारण गुणों से युक्त मनुष्य के विषय में, उसकी सम्भावनाओं के विषय में सोचने के लिए बाध्य किया । डा० जगदीश गुप्त ने स्वीकार किया कि यथार्थ दृष्टि ने ही नये मनुष्य के बारे में सोचने को बाध्य किया[1] ।

---

१. 'नये मनुष्य की बात करना यथार्थ से भागना नहीं है, क्योंकि भावी युग के मानव की विविध सम्भावनाओं की चिन्ता करना आज के विश्वव्यापी नैतिक संकट का स्वाभाविक परिणाम है .... ।'

— 'नयी कविता : स्वरूप और समस्यायें' — डा० जगदीश गुप्त,
'नयी कविता नये मनुष्य की प्रतिष्ठा', पृ०३४ ।

मानवतावादी विचारधारा की प्रमुखता के कारण नयी कविता ने प्रयोगवादी व्यक्तिवादिता को नया रूप दिया ।यद्यपि व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की बात तो नयी कविता में भी उठाई गई लेकिन व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का अर्थ व्यक्तिगत सीमा से उठता हुआ समष्टि की स्वतन्त्रता में परिणित हो जाता है । युग जिस तीव्रता से बदल रहा है, उसमें किसी एक विचार, एक सिद्धान्त से चिपक कर नहीं रहा जा सकता है । आज का व्यक्ति एक ओर घोर समाजव्यापी समस्याओं,अव्यवस्थाओं से दुखित है तो दूसरी ओर विश्व के कोने-कोने में होने वाले अमानवीय संकटों से भी त्रस्त है । दोहरे संदर्भों में आज का मानव जी रहा है । नयी कविता के प्रबुद्ध शिल्पियों ने युग की विषमताओं को देखा है, झेला है और अनुभूतियों के द्वारा भोगा भी है । इस भोगने, झेलने की सब प्रक्रिया में कवि-मन टूटा भी है और बिखरा भी है, कभी दु:ख से कातर हो गया है तो कभी उससे निकलने का प्रयास भी किया है । वादों की लम्बी परम्परा से निकल कर नयी कविता अन्तर्मुखी यथार्थ के स्थान पर अपने को भावात्मक स्तर पर वादमुक्त सिद्ध करती है । इसलिए उसमें वैयक्तिक अनुभूति भी है, सामाजिक यथार्थ भी है, आशा भी है तो निराशा भी है, दृढ़ संकल्प भी है तो अनिश्चयात्मकता भी है । यथार्थ को भाव-भूमि पर बौद्धिकता एवं वैज्ञानिक दृष्टि के सन्तुलन के साथ विचारों की अभिव्यक्ति मिली है । छायावादी की तरह न काल्पनिक यथार्थ है और न प्रगतिवादियों की तरह समाजवादी बहिर्मुखी यथार्थ और न ही प्रयोगवादियों की तरह व्यक्तिनिष्ठ यथार्थ ।

बनावट सजावट में नयी कविता उतना विश्वास नहीं करती जितना छायावादी या प्रयोगवादी, वह तो अनगढ़ता में ही संवरती है । सजावट-श्रृंगार में उसकी स्वाभाविकता नष्ट होती है[१] । सहजता के अनुसार ही

---

१ `नयी कविता स्वरूप और समस्यायें` -- डा०जगदीश गुप्त, `नयी कविता रस और बौद्धिकता`, पृ० १०५ ।

नयी कविता के विषय में यह माना जाता है कि 'नयी कविता किसी की प्रतिक्रिया से नहीं उपजी है बल्कि वह आधुनिक मानस की सहज परिणति है'[१]।

संकुचित दृष्टि के स्थान पर व्यापक दृष्टि-विषयक विस्तार

नयी कविता का अपनी परम्परित काव्य - धाराओं का इस दृष्टि से भी विरोध है, क्योंकि पूर्ववर्ती काव्यधाराओं का काव्य क्षेत्र सीमित था, उनकी दृष्टि अधिकतर देश जाति तक ही सीमित रही है । राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों को प्रायः अनछुआ ही रखा गया है । लेकिन नयी कविता की दृष्टि सार्वभौमिक है। संवेदनशीलता व एवं बौद्धिकता के आधार पर वह विश्व भर की जातियों,सभ्यताओं,भाषाओं एवं धर्मों को अपनी भावानुभूति में साकार कर देती है । आज उसे अपने ही देश की समस्यायें आंदोलित नहीं करतीं,बल्कि विश्व के किसी भी कोने में होते परिवर्तन एवं मानवीय खतरे उसे सोचने के लिए विवश कर देते हैं । सभ्यता-संस्कृति के टकराव का युग है । देश की सीमायें संकुचित हुई हैं, मानव, मानव के निकट आया है, इसलिए नये कवियों में दृष्टि-विस्तार हुआ है । भावात्मक सम्बद्धता आई है । संकीर्णता का परित्याग हुआ है ।

कृत्रिमता एवं काल्पनिकता से मोक्ष

नयी कविता से पूर्व छायावादी काव्य तो कोरी काल्पनिकता का काव्य माना ही गया है, प्रगतिवाद में भी जिस तरह के यथार्थ के वर्णन हुए,उसे बहुत कुछ कृत्रिम यथार्थ ही कहा जायेगा । क्योंकि अतिशय भावुकता, नारेबाजी एवं साम्प्रदायिक संकीर्णता से प्रगतिवादी काव्य कृत्रिम ही बनकर रह

---

१ 'नयी कविता स्वरूप और समस्यायें'--डा० जगदीश गुप्त,
'नयी कविता रस और बौद्धिकता',पृ० १०५ ।

गया । प्रयोगवाद में यह काल्पनिकता एवं कृत्रिमता व्यक्तिवादी था । नयी कविता में कृत्रिमता एवं काल्पनिकता को प्रश्रय नहीं मिला है । नया कवि सत्य की कसौटी पर खरा उतरता है, वह सत्य का आह्वान करता है । 'अनुभूति के क्षेत्र में उसका आग्रह सच्चाई और ईमानदारी पर विशेष है तथा अभिव्यक्ति के क्षेत्र में निर्जीव, रूढ़िगत शैली शिल्प का परित्याग कर के वह अनुभूत काव्य वस्तु तथा उसके अभिव्यक्त रूप के बीच आन्तरिक संवेदना-सूत्रों पर आधारित अधिकाधिक निकटता एवं सहजता लाने का प्रयास करता है ।'[1]

<u>अचेतन की ही नहीं, चेतन की स्वीकारोक्ति भी</u>

फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित होने के कारण प्रयोगवादी कवियों ने जिस माध्यम को काव्य-सृजन के लिए उपयुक्त समझा वह था अचेतन की स्थिति । ऐसा नहीं था कि युग की विषमताएं एवं उथल-पुथल सन् १९४३ से पूर्व नहीं थीं या विश्व-क्षितिज पर कोई भी ऐतिहासिक अनन्य घटना नहीं हुई थी, बल्कि प्रयोगवादियों का युग अत्यधिक संक्रमणकालीन युग था, नाना प्रकार की समस्यायें देश में खड़ी हो रही थीं, लेकिन प्रयोगवादी सब कुछ देखते हुए, समझते हुए व्यक्ति-निष्ठा के मोह से अपने को छुड़ा नहीं सके, परिणामस्वरूप उन्होंने प्राय: अचेतन की स्थिति में रहकर काव्य-सृजन किया है । नयी कविता ने प्रयोगवादियों की इस परम्परा का विरोध किया है, मनुष्य एक संवेदनशील, विचारशील, तर्क-वितर्क एवं आलोचना की क्षमता से युक्त, मानवीय सहज प्रवृत्तियों से युक्त जाता-जागता प्राणी है, अत: वह सब कुछ देखते-सुनते पूर्ण चेतना में होते हुए भी अचेतन की स्थिति क्यों स्वीकार करे, इस विचारणा से जो व्यापक दृष्टि-विस्तार हुआ है, उसने सर्व कुण्ठाओं से नयी कविता को मुक्त किया है मात्र [illegible], स्वयं यथार्थ के साथ निष्पक्ष दृष्टि रखता है, उसका भाव-बोध

---

१ 'नयी कविता : स्वरूप और समस्यायें' -- डा० जगदीश गुप्त
'नये कवि का व्यक्तित्व और [illegible] भी', पृ० १६२ ।

यथार्थ से ही विकसित होता है और यथार्थ से ही अभिव्यक्त होता है । पूर्वाग्रह से मुक्ति ले लेने के कारण ही अपने यथार्थ रूप में सुन्दर-असुन्दर का बराबर महत्व रहता है । श्लील-अश्लील, सत्य-असत्य, शिव-अशिव, सुन्दर-असुन्दर की विभाजन रेखा को नये कवि नहीं स्वीकार करते । इससे उनकी विस्तृत दृष्टि का बोध होता है ।

लेकिन ऐसा नहीं है कि नयी कविता ने पूर्ववर्ती काव्य-परम्पराओं की अच्छाई या नवीनताओं को किसी आग्रहवश ठुकरा दिया है, जो तत्व सराहनीय थे अथवा जिनका आज की काव्याभिव्यक्ति में महत्व है, उसे नये कवियों ने स्वीकार किया है । परम्परा जो दृढ़ है और जिसका महत्व हर युग की सापेक्षता में होता है, उसको नये कवि ठुकरा कर नहीं चले हैं, हां यह बात और है कि किसी वाद-विशेष की जो परम्परायें सामने आईं, उसको अल्पायु के विषय में नये कवि सजग हैं । डा० जगदीश गुप्त उस परम्परा के आग्रही[१] मालूम पड़ते हैं जिसकी दृढ़ता बरगद की भांति हो, जो हर युग को स्वीकार्य हो ।

छंद मुक्त, शब्द की लय से युक्त, जीवन-जगत् के छोटे-से-छोटे नगण्य लगने वाले विषयों पर नये कवियों से पहले भी कवितायें हो चुकी हैं । इस परम्परा को नये कवियों ने आगे बढ़ाया है । क्योंकि मानव जीवन को उसकी पूर्णता में अभिव्यक्ति देने के लिए विषयों का चुनाव नहीं सत्य का चुनाव करना होता है ।

---

१ छुई मुई की भी क्या परम्परा
   बाहरी प्रभाव की अंगुलियों ने
      छीर दे
 जहां छुआ, वहीं मुई
  परम्परा बरगद की
 शाखा से शाखा का अनुबंधन,
 झुकावों में भी जो बढ़ि रहे
 जिसकी बाटिलता भी वन्दनीय,
 धरती को छूते ही मूल हुई ।'
 --'शब्ददंश'-- डा० जगदीश गुप्त, 'परम्परा', पृ०७५ ।

अन्त में मैं यह कहूंगी कि नयी कविता ने जहां अपनी पूर्ववर्ती काव्य-परम्पराओं से विरोध भी किया, वहीं उसने उनकी रिक्तताओं की पूर्ति का भी ध्यान रखा है । इस दृष्टि से नयी कविता ने अपने काव्य के रूप तत्व एवं शिल्प तत्व दोनों में ही पूर्ववर्ती परम्पराओं की दृष्टि से पर्याप्त मुक्ति ले ली है । आगे के अध्यायों में इसकी विस्तार से चर्चा करूंगी ।

नयी कविता का संघर्ष

स्वतन्त्रता साहित्य के क्षेत्र में सबसे अधिक काव्य रूप में प्रतिफलित हुई है । कविता ने यद्यपि स्वतन्त्रता को प्रेरक रूप में कम ग्रहण किया, परन्तु वस्तु-ग्रहण की परम्पराओं से अपने को मुक्त कर लिया है । स्वतंत्रता के बाद जिस प्रकार की सुधारवादी कल्पनायें की गई थीं, वह कल्पनायें सच-की-सच सत्य के धरातल पर नहीं आ सकीं । गांधीवादी आदर्शों की पूर्ण पृष्ठभूमि में प्रजातांत्रिक विधि से वैज्ञानिक विधियों द्वारा देश के सुधार की जो वृहद् आशा की गयी थी, उसके फलस्वरूप वर्गों-जातियों में आर्थिक विषमता घटने के बजाय बढ़ती ही गई, अतः विषमताओं की वृद्धि से जीवन और साहित्य के व्यापक धरातल पर नये आरम्भ की सृष्टि होते-होते रह गई । जीवन स्थिति और भी दुर्वह होती गई, स्वतन्त्रता से देश की चेतना एकाएक जाग उठी । लेकिन आन्तरिक सांस्कृतिक क्षेत्र में रिक्तता-विघटन, विसंगति के स्वर ही उठते रहे । और वही स्वर नयी कविता में निराशा, आत्मसंयम, विद्रोह-व्यंग्य-विद्रूप, अनास्था और विडम्बना के रूप में प्रकट हुए हैं । लेकिन नयी कविता की निराशा छायावादी कवियों की तरह व्यक्तिगत, ओढ़ी हुई, वायवीय काल्पनिकता से उद्भूत नहीं है । समाज की, देश की समस्यायें ही नये कवियों को संघर्ष के लिए प्रेरित करती हैं, इस संघर्ष में वह टूटता है, बिखरता है, कभी निराश होता है कभी आशावादी[१] । उसकी आशा-

१ `.... बड़े नाविक नये, कुशल गुणों का
आयेगा भविष्य कभी
करेगी प्रतीक्षा अभी ।`

—`तीसरा सप्तक` — सम्पा० अज्ञेय, `प्रतीक्षा` - कीर्ति चौधरी, पृ०६३

निराशा सहज है, जिनका वह निराकरण भी करता चलता है । इसी प्रकार नयी कविता का आत्म-मंथन प्रयोगवादी आत्ममंथन से सर्वथा भिन्न है,क्योंकि प्रयोगवादी फ्रायड की विचारधारा से प्रभावित थे,अत: वे पूर्ण चेतनावस्था में होते हुए भी अवचेतन में रहना चाहते थे, इसलिए अवचेतन की स्थिति में रहते हुए उन्होंने जो मनोमंथन किया है, वह उनकी अन्तर्जगत की गुत्थियों का लेखा-जोखा ही कहा जा सकता है । कुंठा,पीड़ा,निराशा को नये-नये ढंग से प्रस्तुत किया गया । कहना न होगा कि न चाहते हुए भी प्रयोगवादी अन्तर्जगत की अभिव्यक्ति में छायावादी कवियों से कम कुशल नहीं रहे । परन्तु नये कवियों ने मनोमन्थन युग की समस्याओं को आलोचनात्मक एवं वैज्ञानिक ढंग से सुलझाने के लिए किया है । किसी सिद्धान्त, परम्परा अथवा मतवाद के वशीभूत नये कवियों ने अपने युग को समझने का प्रयास नहीं किया है, बल्कि व्यक्ति-स्वातन्त्र्य द्वारा समाज की, विश्व की पीड़ा की समस्या को आत्मसात् कर मनोमन्थन द्वारा अभिव्यक्ति दी है। हल्कापन और चलताऊपन का स्थान तर्क-वितर्क और गम्भीर चिन्तन ने ले लिया है । इस दृष्टि से भी नयी कविता का मनोमन्थन प्रयोगवादी मनोमंथन से सर्वथा भिन्न है ।

नयी कविता में भी व्यंग्य है, विद्रोह है,लेकिन प्रगतिवाद में इसका रूप भिन्न था । समाज के शोषित वर्ग के उत्थान एवं मुक्ति के लिए प्रगतिवादी विद्रोही बन पड़े हैं, भावावेश में आकर उन्होंने पूंजीपतियों पर करारे व्यंग्य किये हैं । उनके सुधार के लिए कृषकों,श्रमिकों,की दयनीय स्थिति का बढ़-चढ़ कर दु:खड़ा रोया है,लेकिन समाज के और वर्ग की उपेक्षा की है । व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की बात नहीं, समाज-स्वातन्त्र्य की बात उठाई है । ~~लेकिन~~ नयी कविता में भी व्यंग्य है, आक्रोश है, विद्रोह है, विद्रूप है लेकिन वह मानव प्रतिष्ठा एवं विशिष्टता के लिए है । उस व्यक्ति-इकाई के लिए कवि चिन्तित है,जो अकेला समाज में जगह बनाने के लिए लड़ता है, टूटता है और बिखरता है । असामाजिक तत्वों के प्रति आक्रोश है, सड़ी-गली परम्परा के प्रति विद्रोह है । सामाजिक अव्यवस्था के प्रति तीखा व्यंग्य भी है, करारी चोट भी है । इस

तरह नयी कविता में व्यंग्य, विद्रूप, रिक्तता एवं आक्रोश अधिक रहा है, क्योंकि नया कवि अपने युग से उसकी विषम, दिन-प्रति-दिन परिवर्तित होती परिस्थितियों से सामना करने के लिए अपने को प्रतिबद्ध समझता है । इसलिए वह साहस के साथ सत्य को उघाड़ कर प्रस्तुत करता है । आवश्यकतानुसार चोट भी करता है, व्यंग्य भी, आक्रोश भी दिखाता है और विक्षुब्ध भी होता है । इसीलिए कहा है — "नयी कविता परस्पर विरोधी जान पड़ने वाले गुणों और विषमताओं का अनोखा संगम है और द्वन्द्वात्मक प्रवृत्ति का परिचय देता है[1] ।" यहां पर आकर नयी कविता की यथार्थ चेतना प्रगतिवादी यथार्थ चेतना से अलग हो गई है । प्रगतिवादी यथार्थ चेतना समाज के, वर्ग-विशेष के प्रति अपना दाय समझती थी और मानव व्यक्तित्व के स्थान पर समाज और समाज सत्य की स्थापना उसका लक्ष्य था । इसलिए वे कवि यथार्थ की जिस भूमि पर विचरते हैं, वह उनकी बहिर्मुखी यथार्थ भूमि है, इस दृष्टि से सारा आक्रोश, सारा आन्दोलन प्रतिक्रियावादी लगता है । उसमें बौद्धिकता के स्थान पर समाजवादी, साम्यवादी या मार्क्सवादी विचारणा का ही प्रभाव दिखाई देता है । इसके स्थान पर नयी कविता की यथार्थ चेतना बौद्धिकता को आत्मसात् कर मानव-व्यक्तित्व को प्रतिष्ठापित करना चाहती है । नयी कविता की दृष्टि विस्तृत है, किसी मतवाद, सम्प्रदाय या सिद्धान्त विशेष से प्रभावित नहीं है । अन्ततः नयी कविता की यथार्थ चेतना प्रगतिवादी बहिर्मुखी यथार्थ चेतना से सर्वथा भिन्न है । अन्तश्चेतना का यह स्वर कल्पना की कोरी समतल भूमि को छोड़कर यथार्थ के ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर उतर आया है ।

छायावादी कवियों की मूल प्रवृत्ति पलायन की थी, अतः वे समाज से कटे अपने में ही सिमटे कल्पना की ऊंची उड़ान भरने में लगे रहे । उनके लिए युग-बोध गौण था और व्यक्तिगत समस्यायें एवं भावनायें

---

१ 'तीसरा सप्तक' — सम्पा० - अज्ञेय - 'वक्तव्य' -कीर्ति चौधरी
पृ० ३३ ।

मुख्य । अतः युग-बोध की दृष्टि से उनके पास कोई विशेष चेतना नहीं था । उनके पास अनुभूतियों का उन्मुक्त आकाश था, जिसमें उन्होंने स्वच्छन्द विहार किया, कल्पना और भाव-प्रवणता का आरोपण किया[1] । सत्य को जान बूझकर झुठलाने का प्रयत्न किया, क्योंकि वे छलावे में ही रहना चाहते थे । लेकिन नये कवियों की दृष्टि अधिक विस्तृत है, वे जीते-जागते सब कुछ देखते-समझते हुए भी छायावादियों को तरह न तो कुहासे में डूबे रहना चाहते हैं और न उनकी प्रकृति ही इतनी कोमल है कि समाज को, संसार को कठोर वास्तविकता से मुंह छुपा ले । इसलिए नया कवि अधिक संवेदनशील है, वह समाज में या विश्व में कहीं भी होने वाली समस्याओं एवं कठिनाइयों से चिन्तित होता है, उसे समझता है, झेलता है और दूर करना चाहता है । वह जीता-जागता, राग-विराग से युक्त प्राणी है, किसी प्रकार की असाधारण स्थिति को वह नहीं ओढ़ना चाहता है, वह स्वयं ही सब का साक्षात्कार करना चाहता है[2] । युग-बोध को वह यथार्थ एवं बौद्धिकता के सन्तुलन से अभिव्यक्ति देता है । और प्रलाप या भावुकता से वह काम नहीं लेता, चिन्तन एवं आलोचनात्मक दृष्टि से वह समस्याओं, विषमताओं का सामना करता है । इन्हीं कुलीन परिस्थितियों की टकराहट से आज की युग-

---

१... पीछे मय के हलचल पर
वह बैठी शारद हासिनी
मृदु करतल पर शशि-मुख धर
नीरव, अनिमिष, एकाकिनी...।
— 'गुंजन' : सुमित्रानन्दन पन्त, पृ० ८७ ।

२... मैंने कब कहा कि मेरा धर्म है
धर्म उछाल कर छुआ देना —
....
यदि दुर्बलता दर्प में बदल जाये,
व्यथा अन्तर्दृष्टि दे,
कुण्ठित आस्थाएं
संचित कर उठें शक्ति की शिखाएं
जो बढ़ कर अग्नि को भी
अन्धकार बना दें,
तो मैंने अपना कर्तव्य पूरा किया :
चाहे धर्म उछाला न हो, छुआ हो...।
काठ की घण्टियां — सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
मैंने कब कहा — पृ० १२५-१२६ ।

चेतना अनेक प्रच्छन्न दिशाओं में भटकी है । वहां उसने कुछ खोया है, कुछ पाया है । खोने-पाने की इस प्रक्रिया में काव्य-चेतना के नये आयाम विकसित हुए हैं ।

नयी कविता को अपने इस रूप तक आते-आते बहुत संघर्ष एवं प्रतिवादों का सामना करना पड़ा है । आज प्रायः सर्वत्र कहानी, कविता सभी में प्रयोगों की धूम मची हुई है, इस दृष्टि से अच्छे-बुरे का सवाल कम उठता है बल्कि नये-पुराने का अधिक । इसी बीच नयी कविता का आन्दोलन उठा है, इसलिए उसके प्रति भी ऐसी दृष्टि रखी गई । वैसे भी साहित्य की कोई भी नवीन विधा सहर्ष स्वीकार नहीं की जाती है । नये कवियों को भी आलोचकों और पाठकों के विरोध का सामना करना पड़ा । उनको अगम्यता, अस्पष्टवादिता, बौद्धिकता आदि पर काव्य न होने का आरोप लगाया गया, लेकिन नयी कविता सभी विरोधों का सामना करती हुई अपने मार्ग पर बढ़ती ही चली है, उसके मार्ग का विस्तार हुआ है, अवरोध नहीं आया है । भावों की लम्बी परम्परा से विनिर्मुक्त हो लेने के कारण भी नयी कविता के विरोधों का सामना करना पड़ा है । नये कवियों का मार्ग पूर्ववर्ती काव्य-परम्पराओं के मार्ग से भिन्न था । जीवन-जगत् की व्यापकता में मानवतावादी दृष्टिकोण को लेकर नये कवियों ने अपना मार्ग प्रशस्त किया है ।

<u>नये मार्ग की व्याख्या</u>

आज नयी कविता को जिन परिस्थितियों में होकर गुजरना पड़ रहा है, वैसी परिस्थितियां पिछली साहित्यिक-विधाओं के सामने नहीं आई थी । संक्रमणकालीन परिस्थितियों में युग जी रहा है, सारी मान-मर्यादा की परम्परायें टूट रही हैं, जीवन मूल्य छिन्न-विच्छिन्न हो गये हैं, मानव-मन अपने चारों ओर फैली विषमताओं एवं अमानवीय घटनाओं से क्षुब्ध है । मानव-व्यक्तित्व का क्षरण हो रहा है, मन दिन-पर-दिन मनो-विकारों का पुंज बनता जा रहा है । जीवन के प्रति अनास्था का भाव पैदा हो रहा है । ऐसी जनव्यापी एवं विश्वव्यापी जटिल परिस्थितियों ने नये मार्ग का सहारा लिया है । आज के

युग-बोध एवं सम-सामयिकता के अनुसार अपने युग को जिया है । किसी राजनैतिक मतवाद अथवा सिद्धान्त के वशीभूत युग की संवेदना को समझने का प्रयास नहीं किया है । बल्कि उसे ऐसे मार्ग के प्रति अटूट श्रद्धा है, जो संवेदनात्मक, भावात्मक स्तर पर सारे विघटन एवं सारी विषमता का समाधान खोज सके । वह मार्ग जो ऐसी क्रान्ति का आह्वान करे, जिसमें मानव-प्रतिष्ठा का, मानव-विशिष्टता का कार्य सम्पन्न हो सके । मानव की सम्वेदना को और उसकी भावना को विभाजित अंश में स्वीकार न कर, उसके व्यक्तित्व को समान महत्व मिले । किसी देवता या असुर से परे उसकी गरिमापूर्ण मानव के रूप में, सहज, राग-द्वेष, हर्ष-विषाद से युक्त सहज मानव के रूप में हो । इसीलिए कवि नये पथ के विषय में भ्रान्ति का निराकरण करता है । वह कहता है 'यह ठीक है कि मैंने जिस पथ पर अपने चरण रखे वही पथ पहले से पथ कहलाता रहा है, मेरा आग्रह भी उसी पथ पर चलने का था, क्योंकि वह पथ सरल और स्पष्ट था, लेकिन मैं उस पथ को खोज करना चाहता हूं जिसकी मिट्टी को मैं जब चाहूं रौंदूं'[1] ।

नयी कविता का कवि वादों के बन्धनों से मुक्त अपनी नयी राह बनाता है । उसके लिए जीवन का प्रत्येक मामूली-से-मामूली क्षण भी कीमती है और स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है, क्योंकि यथार्थ की कसौटी पर व्यक्ति

---

१. तेरा कहना ठीक : जिधर मैं चला
वही पथ था
....
मेरी खोज
नहीं थी उस मिट्टी की
जिसको जब चाहूं मैं रौंदूं — मेरी-आंखों ... ।
— 'अरी ओ करुणा प्रभामय' — अज्ञेय
'नये पथ की खोज', पृ० ३५ ।

इन्हीं क्षणों में जीता है और विशेष अनुभूति को ग्रहण करता है । यही अनुभूतियां सत्य हैं और महत्वशाली हैं, चाहे उसका नग्नतम रूप सुन्दर हो या वीभत्स । नया कवि अपने चारों ओर परिव्याप्त छोटा-से-छोटा नगण्य लगने वाली वस्तु के प्रति भी उत्तरदायित्व रखता है । क्योंकि जीवनकी समग्रता में ऐसा नहीं है कि इन वस्तुओं का अस्तित्व ही नहीं होता है ।

इस काव्याभिव्यक्ति में जो बात बहुत मुखर है वह यह कि युग की नयी चुनौतियों के फलस्वरूप उसने मानव-चेतना के नये पार्श्वों,नई अभिव्यक्तियों की खोज की है । जीवन की ज्वलन्त एवं दाहक समस्याओं से जूझने के लिए अथवा उसके अनुत्तरित जटिल प्रश्नों को समझने और सुलझाने के लिए उसने मानव-मन, मानव-चैतन्य के ऐसे अनेक बिन्दुओं का स्पर्श किया है,जो अब तक अछूए थे । स्वतन्त्रता के बाद देश की व्यक्ति और समाज के स्तर पर जो स्थिति रही है, और युग जिस संक्रमणकालीन स्थिति में रहा है, अपने-आपमें वह एक नया युग-बोध रहा है । नयी कविता के सर्जकों ने सजग होकर अपने युग को देखा है, उसकी दुर्बोध जटिलताओं को समझा है और उसके बिखराव को झेला है, इसलिए इस साहित्य विधा में चेतना नये धरातल पर नवीन भाव और विचार-भूमियों पर संचरण करने के लिए बाध्य हुई है । किसी साहित्यिक व वाद-विशेष अथवा रहस्यदर्शन से युग की विकटता को अमूर्त कर या सैद्धान्तिक रूप से सुलझाने का चेष्टा नहीं की गई है । युग को अपने वक्ष पर झेलकर व्यक्तित्व का जो नया गठन हुआ है,उसकी अनेक नयी भंगिमायें हैं । युग के यथार्थ में पैठ कर चेतना ने जो कुछ खोया-पाया है, उसकी अपनी संगति है और सार्थकता है । इस दृष्टि से स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी की नयी कविता में जीवन और जगत् की आप बीती में चेतना के ऊंचे-नीचे,गहरे-उथले और क्षणिक-शाश्वत अनेक नये आयाम देखे जा सकते हैं ।

—o—

द्वितीय परिच्छेद

नयी कविता की नव-मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि

सामाजिक विषमता के प्रति कवि-मन की पीड़ा और आक्रोश

हताश मन:स्थितियां

संक्रान्ति काल

यथार्थ बोध : संघर्षशीलता

परिवेश का दबाव

क्रान्ति का आवाहन

संश्लिष्ट जटिल मनोविज्ञान : मनोविश्लेषणवाद से आगे की दिशा

-o-

द्वितीय परिच्छेद

नयी कविता की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि

साहित्य की प्रत्येक विधा युग-सापेक्ष होती है। किसी भी साहित्यिक-विधा को समझने के लिए उस युग की परिस्थितियों को समझना नितान्त आवश्यक होता है। नयी कविता-विधा जिस परिवेश में और जिन परिस्थितियों में प्रकट हुई, वे परिस्थितियां उथल-पुथल एवं संघर्षमय स्थितियां थीं। संक्रमणकालीन परिस्थितियों के कारण नयी कविता ने जहां एक ओर वैयक्तिक एवं सामाजिक-जीवन मूल्यों को टूटते-बिखरते देखा है, वहीं सांस्कृतिक एवं धार्मिक मूल्यों को भी विशृंखलित होते देखा है। साम्राज्यवाद ने दो भयंकर युद्ध दिये, जिनकी कलुषित छाया जन-जन के तन-मन को बुरी तरह तोड़ गयी और उस टूटने-बिखरने की पीड़ा में नयी कविता ने आरम्भिक श्वास भरी। युद्ध के पश्चात् अस्त-व्यस्त जीवन से उद्भूत कटु अनुभव, नैतिक मान्यताओं में विकृति और साथ-ही-साथ मानव जीवन की सरल गतिविधियों में जो अवरोध आये, उनसे मानव-व्यक्तित्व कुंठा और निराशा की ओर बढ़ चला। सर्वत्र तनाव, संघर्ष, अपमान एवं तिरस्कारमय वातावरण ने नयी कविता की पृष्ठभूमि तैयार की। मानव-मन ने मानवता की सबसे बड़ी हार का सामना किया, पश्चाताप एवं ग्लानि को झेला। नयी कविता के नाम पर जो कुछ भी लिखा गया, वह कवि के अन्तर्मन की आवाज थी, जो कुछ उसने झेला, सहा, अनुभव किया, उसकी अभिव्यक्ति नयी कविता के नाम से हुई[1]। अतः यह कहना

---

१ 'बांह भरे कौन कहां
आहत एकाकी पर
कौन बने समभागी
पर दु:ख का ?
आहत कर ?
पीड़ा देने वाले अपने बहुतेरे हैं
पर नहीं देखा, जो
आकर बैठा है लौ..।'
'तीसरा सप्तक'--सम्पा० अज्ञेय

पर्याप्त होगा कि नयी कविता नव-मनोविज्ञान से सम्बन्धित है । उसने जीवन की उन तमाम विसंगतियों को झेला है, भोगा है, जिन्होंने मानव जीवन के सरल गतिमान व जीवन में एक तूफान भर दिया , उसकी आशा-आकांक्षा निराशा में बदल गयी, उसकी खुशी, उसका आह्लाद, अवसाद और पीड़ा की ओर मुड़ गया । उसके अपने सपने एक झटके में टूट गये और उसकी जगह उसको मिली झुंझलाहट, कुंठा, विरक्ति और तिक्तता । इन सब भावों में घिरा व्यक्ति समाज से विमुख होता हुआ क्रमशः निराशा, अवसाद को आत्मसात् कर लेता है, कभी-कभी जब ये भाव अत्यधिक तीव्र हो उठते हैं तो व्यक्ति अपने चारों ओर से मुख मोड़ कर अकेला हो जाता है, तभी नयी कविता में अकेलेपन का स्वर जन्म लेता है । ये ही स्वर जब अत्यधिक जोर-शोर से उठने लगते हैं, तो नयी कविता में यह आरोप लगाये जाने लगते हैं कि नयी कविता का स्वर समाजविमुख एवं पलायनवादी है । कभी संत्रास, कभी आक्रोश, कभी पीड़ा, कभी निराशा, कभी आस्था और कभी विश्वास अविश्वास के मिले-जुले भावों का आश्रय लेता हुआ कवि-मन सम-सामयिक विसंगतियों एवं विघटन से संत्रस्त मानसिक ऊहापोहों को अभिव्यक्ति देता है । नयी कविता की पृष्ठभूमि में दो भयंकर विश्व-युद्धों के भयानक परिणाम जहां एक ओर अभिशाप सिद्ध हुए, वहीं वरदान भी सिद्ध हुए । यद्यपि भारतीय-परिवेश में ये विश्व-युद्ध नहीं हुए थे, लेकिन प्रबुद्ध संवेदनशील वर्ग इन विश्व-युद्धों से उद्भूत दुष्परिणामों तथा विसंगतियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका है । युद्ध की समाप्ति के बाद अन्य अविकसित देशों में भी अन्दर-अन्दर युद्ध की भावना उठने लगी, परिणाम-स्वरूप सुरक्षा एवं प्रतिद्वन्द्विता की दृष्टि से नये विकास और नयी शक्तियों की खोज की गई, पुराने आदर्श, मान्यतायें तथा सिद्धान्त काल्पनिक एवं झूठे लगने लगे । साथ-ही-साथ जहां एक ओर मानवता की भावना में, जीवन-मूल्यों की दृष्टि में, सांस्कृतिक एवं नैतिक मानदण्डों में आमूल संघर्ष एवं स्थितियां उत्पन्न हुईं, वहीं युद्धकालीन संकटपूर्ण विषम स्थितियों ने नयी आवश्यकताएं और नये

आविष्कारों को जन्म दिया[1]।

दो विश्व-युद्ध बहुत कुछ अर्थों में नयी कविता के लिए वरदान ही सिद्ध हुए, क्योंकि नयी कविता की विषय-वस्तु और भाव-बोध दोनों ही अत्यधिक विस्तृत एवं नवीनता लिए हुए हैं, साथ-ही-साथ युग के साक्षात्-रूप में खड़ी हो सकी है। माध्यम युद्धों की विभीषिका से संत्रस्त मानव-मन जहां एक ओर वर्षों से तन से गुलामी सह रहा था, वहीं मन से भी दासता के दुर्दान्त चक्र में फंस चुका था। स्वतन्त्रता के नाम से बाह्यरूप से चमत्कारिक ढंग से क्रान्ति का आवाहन हुआ। गांधीवादी पूर्व पृष्ठभूमि में देश के सुधार को, प्रजातांत्रिक ढंग से वैज्ञानिक-विधियों द्वारा देश की, वर्ग की और जाति की वृहद् सुधार की आशा की गयी, लेकिन सारी व्यवस्था, सारा ढांचा ही बिगड़ चुका था, अतः आर्थिक विषमता बढ़ती ही गयी। जीवनस्थिति और भी दुर्वह होती गया। आन्तरिक रूपमें रिक्तता, विघटन, विसंगति के स्वर ही उभरते रहे, परिणामस्वरूप व्यापक रूप में यही स्वर उत्पीड़न, आशा-निराशा, आत्म-मन्थन, विद्रोह, व्यंग्य, विद्रूप, अनास्था, विडम्बना, सम्बन्धहीनता और उदासी के रूप में नयी कविता में प्रकट हुआ। युग-युग से संचित मानव उदात्तता और आस्था के स्वर झटके से टूटने लगे, परिणामतः आज का कवि रंजनात्मकता से दूर होता हुआ कुटिल यथार्थ के निकट संघर्षरत होता जा रहा है। उसकी अन्तश्चेतना कल्पना की सुन्दर समतल डगर को छोड़कर जीवन की यथार्थ, कंकरीली, ऊबड़-खाबड़ पगडण्डी की ओर मुड़ चली है। कहीं किसी मोड़

---

१ "यह एक कटु सत्य है कि, युद्ध अभिशाप सिद्ध होता है, किन्तु युद्ध के कुछ प्रभाव वरदान भी सिद्ध होते हैं। युद्ध अभिशाप क्यों है, यह स्पष्ट ही है। युद्ध-कालीन संकटपूर्ण स्थिति में नयी आवश्यकताएं कुछ नये आविष्कारों को जन्म देती हैं। इस दृष्टि से युद्ध वरदान भी सिद्ध होता है...।"

— ज्ञानप्रकाश — मोहनचन्द्र जोशी एवं मीरा जोशी, शीर्षक:

२ हिन्दुस्तान का जीवन का 'नया मनोविज्ञान'

पृ० ८१

पर उसे पीड़ा का अनुभव होता है । कहीं आत्म-मन्थन, कहीं विद्रोह, कहीं अनास्था, कहीं वह सबसे कटकर अकेलेपन को गले लगाता है तो कहीं आशा-निराशा के डूबते-छिपते भावों में डूबता-उतराता, विश्वास जगाता है तो कहीं गहरे विषाद में डूब जाता है । कभी संत्रास की स्थिति में होता है तो कभी अन्यमनस्क हो उठता है । ये सब भाव कवि की मनोवृत्तियों से सम्बद्ध हैं । कवि के मन का विश्लेषण करने पर इन सभी भाव-बोधों का सूत्र मिल सकता है ।

सामाजिक विषमता के प्रति कवि-मन की पीड़ा और आक्रोश

आज कवि की अन्तश्चेतना अपने आस-पास फैली विकृति, विसंगति अव्यवस्था से अच्छी तरह परिचित है । जीवन में सब कुछ सहज प्राप्य नहीं है । दुनियां में बहुत कुछ कड़ुआ है, उसके चारों ओर अजनबी और विषाक्त धुआं भरा हुआ है, सर्वत्र अन्धकार फैला हुआ है । छल-प्रपंच, दिखावा, स्वार्थ-द्वेष आदि वातावरण को असह्य बना रहे हैं । विकास-युग में ये ही चीजें आगे बढ़ रही हैं । ये ही भाव कवि के अन्तर्मन को पीड़ित करते हैं और उसके भावों की अभिव्यक्ति व्यंग्य में होती है । स्वतन्त्रता के बाद जिस लोकतन्त्रीय शासन-व्यवस्था की कल्पना की गयी थी, जिन सुधारों की आशा की गयी थी, क्या वे स्वप्न साकार हो सके ? जन-जन में समानता की कल्पना की गयी था, विसंगतियों और विषमताओं के स्थान पर जन-जन की मुक्ति और सुख-सुविधाओं की कल्पना की गयी थी । लेकिन वास्तव में स्वतन्त्रता की जो क्रान्ति, जो चेतना जोर-शोर से भड़की थी, क्या आन्तरिक सांस्कृतिक रूप में भी चेतना का उदात्त रूप ही प्रस्फुटित हुआ ? लोकतंत्रीय वैज्ञानिक विधि से जिस सुधार की कल्पना की गया, उससे आर्थिक विषमता और भी बढ़ी । अमीर और भी धनी होता गया तथा निर्धनवर्ग और भी दरिद्र एवं दलित । नये कवियों के मन में बार-बार ऐसी व्यवस्था, ऐसे अधिकारों के प्रति टीस उठती है । उसका मन क्षुब्ध हो उठता है । आजादी के नाम पर हम आज बड़े-बड़े उत्सव मनाते हैं, लेकिन क्या उस आजादी को सच्चे अर्थों में हमने जिया है।

आजादी की एक भी सांस हमने आजादी से ली है[1]।

आज समाज की और देश की व्यवस्था पंगु हो गयी है । सर्वत्र पार्टियों का बोलबाला है तथा जातिगत और वर्गगत भेद बढ़ते जा रहे हैं । शहर और ग्रामों की सभ्यता - व्यवस्था,आचार-विचार के मध्य एक बड़ी खाई बनी हुई है । साक्षर-निरक्षर, अफसर-नौकर के मध्य विषमता की दीवार खड़ी हुई है । हम अपने चारों ओर फैली अस्त-व्यस्त स्थितियों से पूर्णत: परिचित हैं, लेकिन हम ऐसे व्यवहारों के आदी हो चुके हैं, हममें वह चेतना नहीं है कि हम बढ़कर कुछ कर सकें, कुछ कह सकें । क्योंकि हम सबों का साहस मर चुका है। यद्यपि ऊपर से हम स्वतन्त्र हो चुके हैं,लेकिन मन से अब भी हमें दासता निभाने का रोग लगा हुआ है । ऐसी व्यवस्था के प्रति कवि के मन में पीड़ा और आक्रोश है । वह सोचता है, जैसे वह पहले दूसरे के हाथों की कठपुतली बना हुआ था वैसा ही अब भी बना हुआ है । कैसी हास्यास्पद स्थिति है ? अगुआओं के `माध्यम` है । विवेक,बुद्धि,चेतना और मन-मस्तिष्क से हम दास हैं । बड़ी-बड़ी बातें बघारने वाले दार्शनिकता का जामा पहने, नेताओं के हाथों की कठपुतली बने हमेशा `घायल` ही रहेंगे ,क्योंकि हमारी मनोवृत्ति और हमारी अन्तश्चेतना सुप्तावस्था में है । इस तरह कवि के उद्गार जहां व्यंग्य-विद्रूप से आक्रान्त है,वहीं उसके मन में झुंझलाहट है,

---

१ ...दिन भर ईंट और गारा ढोने वाले ये कंकाल
गंदे नालों के किनारे बनी झुग्गी-झोपड़ियां
और फुटपाथों पर ही जिंदगी क्यों काट रहे ? ....
हर पंद्रह अगस्त को जश्न मनाने वाली जनता ने
कभी आजादी के दांत भी गिने हैं ?
क्या हम झूठी मान्यताओं के किलों को
आज तक भी तोड़ सके हैं ?..........
—`अर्धविराम` — सुनिलचन्द्र
`एक सपाट`, पृ० २१ ।

विद्रोह है, तिक्त आक्रोश है और साथ-साथ -ही-साथ सपाट बयानी भी द्रष्टव्य है[१] ।

हताश मन:स्थितियां

नयी कविता का आधार एक प्रकार से हताश मनोविज्ञान ही समझना चाहिए, क्योंकि नयी कविता का सारा परिवेश युद्ध की विभीषिकाओं से उत्पन्न विक्षुब्धता, ग्लानिभाव, हीनता, विशृंखलता, उदासीनता, नैराश्य, टूटन, विघटन, विसंगति, तिक्तता और व्यंग्य-विद्रूप आदि विभिन्न मन:स्थितियों का पोषक रहा है । यही कारण है कि आज नयी कविता विभिन्न मन:स्थितियों में नये-नये रूप-आकार लेकर प्रकट हुई है । अपने इस रूप में कहीं नयी कविता नीरस, कुंठित, भाव-सम्प्रेषण रहित है, तो कहीं साफ, स्वस्थ, सरल और सतत् प्रवाहगामी । परिवेश की मांग नयी कविता के से सम्बन्धित है, यहां पर आकर नयी कविता का लक्ष्य खण्डन-मण्डन दोनों की ओर झुका हुआ लगता है । वह नहीं मानती कि पुरानी कविता के क्या मानदण्ड थे, क्या प्रतिमान थे, अपितु व्यक्तक वह तो अपनी यथार्थ-अनुभूति की बात करना पसन्द करता है, अपनी व्यापक मन:स्थिति को प्रकाशित करती है, अपने भावों के संघर्ष और कल्पनाओं

----

१. "हम सब बौने हैं

मन से मस्तिष्क से भी.....

वरना मिलेंगे कहां

ममता को बौना

नेता को पिछलग्गू.....

मतवादों की भूख

सम्प्रदायों को सांचे ढले आदमी.....

हम भावुक सिपाही हैं

हमको कैसा भी

भावुक की रचना है ..... ।"

—'जो बंध नहीं सका'— गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ६

की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति में समस्त संसार की पीड़ा, संत्रास और विक्षुब्धता को अपनी संवेदना में समा लेना चाहती है । भवानी प्रसाद मिश्र की कविता 'जी हां हुजूर में गीत बेचता हूं' अपने आकार में यदि हास्यास्पद है तो समाज की और व्यक्ति की पतनोन्मुखी प्रवृत्ति की ओर एक संकेत भी है और विशाल मानव-आत्मा में समाने का प्रयत्न भी[1]। उस आत्मा में समाने का प्रयत्न है जो आत्मा भीषण युद्धों की पृष्ठभूमि में ढकेला कर चूर-चूर हो गया है, टूटन, पीड़ा और नैराश्य उसके साथी बने हैं । इसी तिक्तता, विसंगति और विशृंखलता ने उसे दूसरों की पीड़ा को भी समझा दिया । अपने आहत अभिमान ने उसे सिखा दिया कि यदि अपना सब कुछ दूसरे के लिए नहीं है तो 'पहाड़ वाले बादल की तरह टूटने दो' उसकी मनःस्थिति कल्याणकारिता के साथ-साथ समभावी बनना चाहती है । उसके मन में एक नया भाव उठता है । भाव का उद्वेग ज्वार की तरह उसकी 'धमनियों', 'हड्डियों' 'पसली-पसली को' 'कगार' की तरह टूटने देना इंगित करता है[2]। एक तरह से देखा

१...जी हां हुजूर में गीत बेचता हूं
में तरह तरह के
गीत बेचता हूं
....
है गीत बेचना वैसे बिल्कुल पाप,
क्या करूं मगर लाचार हार कर
गीत बेचता हूं ... ।'
—'दूसरा सप्तक'— सम्पा० - अज्ञेय
'गीत फरोश'— भवानीप्रसाद मिश्र
पृ० २६-२७

२...टूटने दो ...
हां , छहरी छहरी को
पसली-पसली को
नदी के कगार की तरह ...
अगर नहीं है मेरे स्वरों में -
तुम्हारे स्वर
अगर नहीं है मेरे हाथों में -
तुम्हारे हाथ...
मुझे पहाड़ वाले बादल की तरह
टूटने दो ।'
'तीसरा सप्तक'-सं०-अज्ञेय
केदारनाथ सिंह, पृ०१२२ ।

जाय तो यह मानसिक विकलता का ही भाव है, यही मानसिक विकलता कवि को उस सत्य का अनुभव करा देती है, जहां मानव को मानव के कल्याण की भावना से ओत-प्रोत होना चाहिए । यही कारण है कि,कवि के मन में अनेक संशय हैं,द्विविधा है, इसका कारण आज मर्यादा और मूल्यों के बीच संघर्ष की स्थिति है, पुराने मूल्य आज के परिवेश में निरर्थक हैं, आज का समय पुराने मानदण्डों को ढोने में पूर्णतया असमर्थ है ,क्योंकि वर्तमान परिवेश में, समय की मांग में पुरानी परम्पराएं और पुराने मूल्य बेमानी हैं । भीषण वातावरण में विशृंखलित मानव-मन के लिए सैद्धान्तिक और पारम्परिक प्रतिमानों का कुछ मूल्य नहीं, आज तो उसे स्वयं अपने लिए प्रतिमानों का निर्माण करना है । स्वयं मार्ग ढूढ़ना है, जिसपर चलकर वह दूसरों को मार्ग दिखा सके । उसके पैरों की छाप पर पैर रखता हुआ आने वाला नये मार्ग को प्रशस्त करे, यही उसकी इच्छा है, यही उसका उद्देश्य है । इसके लिए वह आह्वान् करता है--

...आ, तू आ,
हां आ
मेरे पैरों की छाप-छाप पर रखता पैर.... [१]

जहां एक ओर कवि की चेतना में कुछ आशा का संचार होता है, वहीं अगले क्षण उसे अपनी नियति का स्मरण हो आता है । उसका दुःख व्यंग्य में परिणित हो जाता है । उसे फिर भी अपनी स्थिति से अधिक शिकायत नहीं है, छोटेपन में भी वह अपने को बड़ा मानकर अपने अस्वस्थ मन को शान्त और सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करता है,क्योंकि इसके अतिरिक्त उसके पास कोई दूसरा उपाय नहीं है । एक ओर तो कवि की मनश्चेतना जीने

---

१ `अरी ओ करुणा प्रभामय` -- अज्ञेय
`नये कवि से`, पृ० १५

रहकर भी आजीवन बौनेपन को निबाह देना चाहती है[1] तो दूसरी ओर वह एक अजीब-सी उदासी का अनुभव करता है, अपने मन को बार-बार टूटते हुए देखता है, अनुभव करता है । वह जानता है कि उसका जीवन फूलों का जीवन नहीं है, क्योंकि फूलों का हर दिन जाना हुआ है, समझा हुआ है । उनकी नियति तो खिलना, मुसकाना और अन्त में धरती की मिट्टी में विलय हो जाना है, जब कि कवि का मन कभी टूटता है तो कभी शरीर, एक बेचैनी का भाव है, बिखरने का भाव है-- ये भाव उसकी मानसिक स्थितियों से प्रस्फुटित होते हैं । वह जानता है कि वर्तमान परिस्थितियों ने और समस्याओं ने उसकी कल्पना, उसके स्वप्नों और उसकी इच्छाओं को अपने बाहुपाशों में जकड़ लिया है । उसकी नियति में तो केवल टूटना है, बिखरना है, उसे कहां अवसर कि वह फूलों की भांति दो चार क्षणों के लिए भी मुस्कुरा सके[2] ।

---

१ .... आजीवन
बौने बने रहने की नियति को
वरदान मानकर सिर माथे लेना
कितनी महानता है
मुझे छोड़ इसका मर्म और कौन जानेगा? ...
पौधा बने रहकर भी
तारों को चीम बिराई है ।'
--'अनुपस्थित लोग'--भारतभूषण अग्रवाल
बापू(श्री सियारामशरण गुप्त) के स्वर्गवास पर, पृ०५६
२९-३-६३

२ .... मेरा हर दिन अलग है
हर दिन मुझे
कुछ नये ढंग से
बिखरना होता है
जब शरीर टूटता है
तो कभी मन.....
--'चकित है दुःख'-- भवानीप्रसाद मिश्र
--'बिखरना', पृ०३३ ।

दो- दो माभणा युद्धों ने उसे क्या दिया ? सिवाय संत्रास, पाड़ा, विक्षुब्धता, नैराश्य, अविश्वास और तिरोहित होती आकांक्षाएं और स्वप्न आदि । किसी भी वस्तु-विशेष अथवा वस्तु-सामान्य का बोध अनुभूति पर ही निर्भर करता है, अर्थात् जहां कवि मन को विभिन्न दुष्कर परिस्थितियों का सामना करना पड़ा हो, वहां उसकी अन्तश्चेतना विभिन्न मन:-स्थितियों मेंअभिव्यक्ति होती है । उसका सबसे बड़ा सम्बल `विश्वास` भी उसका साथ छोड़ देना चाहता है । `सपने` विवश सिसकियां भर रहे हैं । सर्वत्र उदासी का भाव तिर आया है । भरोसे की लम्बी नदी शुष्कप्राय हो गयी है। ऐसी ही स्थिति में एक लम्बी अवधि समाप्त हो चली है । सबसे अधिक पीड़ास्पद बात तो यह जो कवि के मन को कचोटती है कि क्या उसकी स्थिति वैसी ही है,जैसा कि वह नहीं है,अर्थात् वह स्वयं को भी नहीं पहचान पाने की स्थिति में आ जाता है। सबसे बड़ी पराजय का सामना करता है[१]।

संक्रान्तिकाल

कवि में यह संक्रान्ति की स्थिति मनोवैज्ञानिक है और इसका कारण सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन है । सामाजिक

---

१ ···विश्वास के कगार पर
सपने
विवश सिसकियां भर रहे हैं ।...
भरोसे की सूख गयी है नदी
बीत गयी है एक सदी, और
मेरे अन्दर कुलबुलाता है प्रश्न :
क्या मैं सिर्फ वही हूं
जो मैं नहीं हूं ..... ।`

— नयी कविता-अंक ८,सं० डा० जगदीश गुप्त एवं विजयदेव ना०साही
सम्पा.में : सुरेन्द्रनाथ पुरी, पृ० १६८ ।

एवं सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन के लिए दो भयंकर विश्व-युद्धों ने भूमि तैयार की और उस पथ को जटिल से जटिलतर बनाया । मनुष्य ने एक बेचैनी का अनुभव किया, अवसाद और पीड़ा का स्पर्श किया, मानो दुर्बलता के साथ-साथ आस्तिकता की ओर अग्रसर हुआ है[1] ।

सबसे ज्यादा संशय और अनिश्चय की स्थिति नयी कविता में द्रष्टव्य है । उसका कारण मानसिक ऊहापोह ही है । वह अपने अन्दर एक बेचैनी महसूस करता है, ग्लानि का भाव, विरक्ति का भाव है । उसके मन में पीड़ा है, अवसाद है और इन सब का कारण उसके अन्दर वह आत्मिक शक्ति नहीं रह गयी जो उसे सारे तनावों, दबावों को ,टूटन को और विसंगति को झेलने के लिए अतिरिक्त शक्ति के साथ साहस का भी संचार कर सके । वह तो हर पल टूटता जाता है, नष्ट होता जाता है और उसे लगता है उसके गान में यों ही समाप्त हो जायेंगे, उसके स्वप्न भी यों ही व्यर्थ जायेंगे । क्योंकि काल के दुश्चक्र में चेतना और चेतना के नाम पर मात्र एक स्थिति ही रह गयी है । न उसमें साहस है न जागृति, तो फिर चेतावनी कैसी । 'मैं जानता हूं आज ये गान नहीं संवरेंगे' ~~के~~ कवि की व्यथा है -पीड़ा के साथ-साथ निराशा की भी रेखा दृष्टिगोचर

१...वास्तव में आज मनुष्य के मनोवैज्ञानिक संक्रमण का कारण सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन है । समाज की एकात्मानुभूति ही इन दोनों महायुद्धों में भयंकर रूप से विशृंखलित हुई है....... युद्ध के भयंकर धक्कों में वे बहुत से रागात्मक सम्बन्ध जो परम्परा के आधार पर विकसित हुए थे और चले आ रहे थे, सहसा कल्पना के स्वप्न-लोक से यथार्थ के धरातल पर आ खड़े हुए।"

—'नयी कविता के प्रतिमान' : लक्ष्मीकान्त वर्मा

'मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि', पृ० ४४ ।

होता है। यही दर्द उसका अनभुला दर्द बन जाता है[१]।

जहां युद्धों की तीव्र प्रतिक्रिया नयी कविता में अवसाद, पीड़ा, कुंठा, निराशा, विसंगति, विशृंखलता, टूटन, विघटन, संशय और निराशा आदि विभिन्न मनोभावों के रूप में अभिव्यक्त हुई, वहीं उसने कुछ नया भी किया, परम्परा से हटकर नयी यथार्थानुभूति की बात कही, बिल्कुल स्वच्छंद होकर सपाट बयानों का आश्रय लिया और उस सत्य स्थिति की अभिव्यक्ति दी, जैसी उसने अपने अन्तर्मन में झेली-सही और अनुभव की थी। इसी रूप में आज कविता अपने परिवेश के साथ किसी-न-किसी रूप में द्वन्द्वात्मक स्थिति में उपस्थित होती है। संघर्षमय स्थिति से उभरता हुआ वह अपने लिए मार्ग बनाता है। पथ-निर्माण में संवेदनात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति में कभी उसे संशय की स्थिति का सामना करना पड़ता है तो कभी विश्वास का। कभी वह इन सभी त्रासकारी स्थितियों से त्राण पाना चाहता है और उस काले क्षण की प्रतीक्षा में निरत होना चाहता है, जिसके पल भर पूर्व सब कुछ अनन्त शान्ति की अवस्था में होता है। लेकिन जैसा वह चाहता है, वैसा नहीं हो पाता, सदियों से चले आ रहे प्रवर्तन में वह वज्रपात नहीं हुआ तो नहीं हुआ। यद्यपि कवि उस अनहोने सन्नाटे से परिचित है जो पूरी शाम से ही नगर पर अपना अधिकार जमा लेता है, सारी आशायें उसमें तिरोहित हो जाती हैं, फिर भी वह उस सन्नाटे से उबरने का प्रयत्न करता है और उस

---

१ ...मैं जानता हूं आज ये गान नहीं संवरेंगे....
ऐसे पाषाणों की कोई कभी दरारों में
झिलमिली सी वेदना ?
काठ की चपेटों से छिला दरदरा आहत,
सिसक रही वेदना ?
नहीं आज जीवन के स्वप्न नहीं ठहरेंगे .... ।
—'चक्रव्यूह' : कुंवर नारायण सिंह, 'अनभुला दर्द', पृ० २२-२३ ।

वज्रपात का आवाहन करता है,जो कड़क कर टूटे और उस अनदेखे,अनभोगे को दिखा जाये । अन्त में वह नैराश्य को ही प्राप्त होता है । क्योंकि उसकी भावना और उसकी कल्पना का वह `अनदेखा` और अनभोगा कभी भी घटित नहीं होता । उसके अन्तर्मन की पीड़ा या साहस पूर्ववत् ही रहते हैं । सारी प्रार्थनायें यों ही झूठी सिद्ध हो जाती हैं, उसका कोई अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ता[1] ।

कहीं-कहीं नयी कविता में मानसिक स्थितियों के मिले-जुले भाव भी परिलक्षित होते हैं । जहां एक ओर वह टूटने की और बिखरने की व्यथा से तड़पता है, शरीर और मन में टूटने का अनुभव करता है, वहीं वह उस `टूटने` और `बिखरने` से समझौता कर लेता है । उस `टूटन` और `बिखरन` को वह साधारण-सी स्थिति मानकर संघर्ष के लिए तैयार हो जाता है । जहां आरम्भ में उसकी अनुभूति में कच्चापन है,वहीं क्रमश: भावों में परिपक्वता और साहस का संचार होता जाता है[2] ।

----

१ ··· सबको है दुर्दम प्रतीक्षा
    उस काले क्षण की
  जिसके निमिष भर पहले, सब शान्त होगा...
    पर अफसोस
    कि हुआ नहीं
    सारी प्रार्थनाओं को झुठलाता
    वह वज्रपात... ।"
  --`जो बंध नहीं सका` : गिरिजाकुमार माथुर
    `अदृष्ट की प्रतीक्षा`, पृ० २३-२४ ।

२ ..... कि, यह टूटना बिखरना
      कुछ नहीं है, ...
      जीवन संघर्ष है
      लड़ो··।।"
  --`चकित है दुःख`: भवानीप्रसाद मिश्र
      `बिखरना`, पृ० २४ ।

यथार्थ बोध : संघर्षशीलता

नयी कविता के विषय में प्राय: ऐसा कहा जाता है कि नये कवियों में पलायनवादिता, नैराश्य और एकान्तप्रियता का भाव अधिकता से परिव्याप्त है । कवि अपने मन को अन्धकार से आच्छादित पाता है, जिसकी तुलना में उसे बाहर का अंधेरा और अन्तरमन के अंधेरे में समानता दिखाई देती है । और वह अंधेरे में घिरता जाता है, डूबता जाता है, जब कि उसकी तर्क शक्ति, उसकी प्रतिभा शक्ति, और बोध शक्ति उसे बार-बार अहसास कराते हैं कि सिर्फ अंधेरा वहीं नहीं है जहां `सूरज` है और वह यह भी भली-भांति जानता है कि अभी सूरज उससे कहीं दूर है, अभी तो उसकी चेतना शून्य है, उसे सूर्य कहां प्राप्त हो सकता है । क्योंकि यह पीढ़ी उस समय जन्मी है, जब कि सूर्यास्त हो चुका था, सर्वत्र अन्धकार का साम्राज्य था, उस अंधकार से उसे लड़ना होगा[१] । विभिन्न मन:स्थितियों से गुजरता हुआ कवि उसब पथ को ही अपनाना चाहता है, जहां संघर्ष है । लेकिन संघर्ष की स्थिति से वह क्यों गुजरना चाहता है ? वह जानता है कि उसका जन्म उस समय हुआ है जब कि समस्त प्रगति प्रकाशगामी जीवन-स्थितियां अन्धकार की गुहा में विलीन हो चुकी है । अत:

---

१ .... किसी की मुट्ठी में सूर्य नहीं
सब अंधेरे की मुट्ठी में हैं ....
जहां सूरज है वहां हम नहीं हैं
यह पीढ़ी उस समय जन्मी
जब हो चुका था सूर्य निर्वासित ... ।
— `नयी कविता`, अंक ८
सम्पा० डा० जगदीश गुप्त, विजय देवनारायण साही
`कविताएं` : वाजिदपुर
पृ० १९८-१९९ ।

संघर्ष ही उसके जीवन-मूल्यों को पनपने दे सकता है, उसको सहारा देसकता है । जहां एक ओर जीवन की भयानकता, खण्डित मर्यादा, अस्त-व्यस्त परम्पराओं, प्रताड़ित भावनाओं का लम्बा सिलसिला हो, वहां कब तक अपनी इच्छा का, अपनी आकांक्षा का और अपने स्वप्नों का दमन किया जा सकता है । कवि जानता है कि उसका जन्म ऐसे समय में हुआ है जब कि उसको इच्छाओं के पूरे होने की आशा नहीं है । ऐसा जानते हुए भी वह बेबस है, वह स्वीकार करता है कि उमड़ती इच्छाओं को वश में करना सहज नहीं । इसके लिए वह प्रयत्न भी करता है, लेकिन अपने प्रयत्न में वह असफल है ।

इच्छायें तो उमड़ती हैं, उन्हें कहां तक कोई रोक सकता है, लेकिन कवि को प्रतीक्षा के साथ-साथ क्षीण-सा विश्वास भी है कि कभी ऐसा भी समय आयेगा, जब उसका मन स्वस्थ होगा, उसके अन्तर्मन में कोई भी निराशा-क्लान्ति का भाव नहीं उपजेगा, और तब वह अपनी इच्छाओं का समाधान स्वयं खोज लेगा । उसे अपनी इच्छाओं को दूसरे के 'सिरहाने' रखने की आवश्यकता नहीं होगी । अन्तर्मन की व्यथा है, पीड़ा है, अपूर्ण इच्छाओं के प्रति उदासी का भाव है[१] ।

१---इच्छायें उमड़ती हैं ....
थोड़ा थककर
तुम्हारे सिरहाने रख जाता हूं ....
कभी ऐसा भी होगा
जब मेरी क्लान्ति कोई भी इच्छा
तुम्हारे सिरहाने तक रखने नहीं आयेगी .... ।
--'खुशबू के दुःख' : भवानीप्रसाद मिश्र
'ऐसा भी होगा', पृ० ७४ ।

परिवेश का दबाव

युद्धों के फलस्वरूप खण्डित मर्यादाओं, टूटते मूल्यों की भयानकता और अस्त-व्यस्त परम्पराओं ने जहाँ एक ओर व्यक्ति को सब तरफ से असहाय बना दिया, वहीं उसे एकान्तप्रिय भी बना दिया । सर्वत्र अविश्वास, टूटन, विसंगति, छल-कपट और चोरबाजारी के परिणामस्वरूप वह एक-दूसरे से घृणा करने लगा, सबसे कटकर कभी नैराश्य तो कभी उदासी, तो कभी पश्चाताप की अग्नि में जलने लगता है । नयी कविता पर आक्षेप लगाया जाता है कि नयी कविता एकान्तप्रिय है, लेकिन कवि स्वयं स्वीकार करता है कि अपने चारों ओर की अस्त-व्यस्त हलचलों से और प्रताड़नाओं से घबड़ाकर वह एकान्तप्रिय हो जाता है, लेकिन यह एकान्तप्रिय न होकर दबाव और तनाव को उत्पन्न करता है । अतः इस दबाव को वह नहीं चाहता है[1] ।

युद्धोत्तर एवं युद्धकालीन परिस्थितियों में मनुष्य ने जिन भीषण नैतिक पतन और सामाजिक एवं वैयक्तिक सीमाओं में विशृंखलता को झेला, उससे उसकी चेतना बिखर गयी, जीवन की सरल, सहज बहने वाली धारा एकाएक ऐसे मार्ग की ओर मुड़ चली, जहाँ विषमता, असन्तोष, नैराश्य, विघटन, खिन्नता, आक्रोश, पश्चाताप, एकान्तप्रियता और कहीं-कहीं कुण्ठित

१... मन बहुत सोचता है कि, उदास न हो
पर उदासी के बिना रहा कैसे जाय ?
शहर के दूर के तनाव, दबाव कोई सह भी ले
पर यह अपने ही रचे एकान्त का दबाव सहा कैसे जाय...।
—'कितनी नावों में कितनी बार' : अज्ञेय
'मन बहुत सोचता है', पृ० ८५ ।

(पलायन नहीं) के स्वर दृष्टिगोचर होते हैं । ये सभी भाव कवि की मन:स्थितियों को प्रकाशित करते हैं । अपने चारों ओर की अव्यवस्था, अस्त-व्यस्त परम्परा, रूढ़ियों, अनैतिकता तथा जीवन की विषमता से घबराकर कवि कभी अपनी चेतना में जागृति करना चाहता है, दावे के साथ परम्परा को, रूढ़ियों को बदलना चाहता है, और अपने को एक 'अयबोध' बताता है[१] । कहीं चारों ओर फैली विषमता, तनाव, अनैतिकता से आक्रोश के साथ लोहा लेना चाहता है । कभी-कभी जीवन की विषमता से, सर्वत्र परिव्याप्त असन्तोष, तिरस्कार से घबराकर अचेतन हो जाना चाहता है । मानसिक विकृतियों का शिकार हो जाता है ।(फलस्वरूप) वह समझ जाता है कि उसके चारों ओर जो कुछ भी घटित हो रहा है और घटनीय है, वह अधिकांशत: तिक्त और असहनीय है । इसलिए वह अपनी चेतना को बहोश कर देना चाहता है । क्योंकि ऐसी परिस्थिति में वह अपने को असहाय समझता है । उसकी मन:स्थिति ऐसे भावों को झेलने की स्थिति में नहीं है, अत: कटु सत्य को वह स्वीकार करता है । लेकिन कवि की यह मन:स्थिति विशुद्ध मनोवैज्ञानिक है, पलायन का भाव नहीं है । अत्यधिक असमानता की स्थिति से कवि के अन्तर्मन से ऐसे भाव प्रस्फुटित होते हैं । जीवन-मूल्यों में विघटन और परिवर्तन तथा सामाजिक और वैयक्तिक अनैतिकता से घबरा कर वह, चेतना के बहोश होने

---

१ ...न रास्ता कहीं मुड़ता
    न सड़कें कहीं जाती हैं
  'हम'
      एक अयबोध हैं
      जिसे हवा
      घर से चौराहे तक
      दिन भर भटकाती है... ।
  — कभी बिल्कुल कभी : केदारनाथ सिंह
      'हम जो सोचते हैं', पृ०७८ ।

की बात करता है[१]।

जब नयी कविता में मनःस्थितियों की चर्चा करते हैं तो इसी तरह मिले-जुले भावों की शृंखला दृष्टिगोचर होती है । कहीं उदासी है, तो कहीं बेचैनी, कहीं निराशा तो कहीं पीड़ा, कहीं अविश्वास है तो कहीं संशय, कहीं तिक्तता है तो कहीं व्यंग्य, कहीं विषाद है तो कहीं व्याकुलता । इन सभी भावों का सम्बन्ध व्यक्ति के अन्तर्मनस से है । उसने जो कुछ झेला है, भोगा है, उससे उसका तन-मन टूटकर चूर-चूर हो गया है । युद्ध के फलस्वरूप जीवन कठिन होता गया, विषमतायें बढ़ीं, सैकड़ों नयी समस्यायें मुंह बाए उठ खड़ी हुईं, आदमी-आदमी का शोषक हो गया । सर्वत्र बिखराव, टूटन और पीड़ा का स्वर व्याप्त हो गया, सर्वत्र संत्रास की स्थिति, घुटन का भाव परिव्याप्त हो गया । इन सबसे घबराकर वह मांग करता है कि उस परिस्थिति को ख़त्म करो जिसमें तमाम विषमतायें, करुणा और भय की स्थितियां ख़त्म हो जाती हैं । ज़िंदगी और मौत, ख़तरे की सीमायें समाप्त हो जाती हैं[२]।

१... मुझे चेतना से घबराहट होती है
मैं जड़ हो जाना चाहता हूं ...
चेतना का मतलब है
छिड़ो-भिड़ो, विरोध करो
झूठ-मूठ प्यार करो, झूठमूठ द्वेष करो ।
—'चकित है दुःख' : भवानी प्रसाद मिश्र
पृ० १११ ।

२... इस परिस्थिति को ख़त्म करो जिसमें ज़िंदगी और मौत
और ख़तरा और रोज़गार की
सीमायें समाप्त हो जाती हैं.... ।
—'चकित है दुःख' : भवानीप्रसाद मिश्र
'इस परिस्थिति को ख़त्म करो', पृ० ५६ ।

जहाँ कवि ऐसे शब्दों का माँग करता है तो कहीं संशय की स्थिति में आ जाता है । और यह संशय का स्थिति व्यक्ति(कवि) के लिए भावना से इतनी सम्बद्ध नहीं है, जितनी युग-जीवन के यथार्थ-बोध से सम्बद्ध है । उसे दुःख है कि उसने जीवन को ठीक तरह से नहीं भोगा । उसने न ठीक तरह सुख को भोगा और न दुःख को ही सहा, उसका जीवन तो यों ही निरर्थक बीत गया[1] ।

इसके साथ-ही-साथ वह अपने परिवेश के असंगत, शुष्क, निर्मम व्यवहार से भी असन्तुष्ट है । उसे पूरा विश्वास है कि उसकी भावना के गान अधूरे रहेंगे । परिस्थिति के वश विष से जीवन जर्जरित हो गया है । सर्वत्र एक अंधेपन का भाव है । और उस अंधेपन से कवि का अन्तर्मन आच्छादित हो गया है । उसकी चेतना छिपकली के सदृश छिपछिपी-सी हो गयी है और वह चारों तरफ एक रौरव, 'अंधापन' देखता है । न केवल कुछ काल के लिए, बल्कि उसे एक युग पूरा अन्धा दिखता है । अपने चारों ओर विराट अंधेपन का समुद्र दिखता है । उस समुद्र को चारों ओर से ऊँचे-ऊँचे पर्वत घेरे हुए हैं, 'भयानक तूफान उसको मथ रहे हैं और उसमें नाग लोक के शहर के जैसे काले सर्प, केंचुल चढ़े हुए, आगे-पीछे ऊपर-नीचे, टेढ़े-मेढ़े रेंग रहे हों ।' ऐसी भयानक कल्पना का चित्रण कवि के उस प्रताड़ित, विक्षुब्ध मनःस्थिति का परिचायक है जहाँ सबसे ज्यादा कवि के मन को, उसके अहं की चोट लगी, विषाक्त तीरों का सामना करना पड़ा होगा । उसकी

---

१. 'यों बीत गया सब : हम मरे नहीं, पर हाय ! कदाचित्
जीवित भी हम रह न सके .... !
— इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये : अज्ञेय
'योगफल', पृ० ७८ ।

भावना के गीत सिसक-सिसक कर रोये होंगे[१]।

जहां एक ओर वह पूरे युग को ही अंधा युग कहता है, वहीं वह अपने चारों ओर परिव्याप्त लोगों के बारे में भी अपनी मन:स्थिति व्यक्त करता है। आज मनुष्य एक-दूसरे के लिए कितना शोषक एवं विषाक्त हो गया है। एक-दूसरे के अहित, विनाश के लिए तत्पर है, यहां तक कि अपने विषाक्त व्यवहार से उसे समाप्त तक कर देने के लिए तैयार है। ऐसे विषैले सर्पों के कारण समाज में न रह पाने की छटपटाहट और पीड़ा, उसके मन को और मस्तिष्क को इस सीमा तक आक्रान्त कर देते हैं कि उसके अन्तर्मन से ये उद्गार उमड़ पड़ते हैं[२]।

एक बार वह मन-मस्तिष्क से पूरी तरह हताश हो जाता है और दूसरी ओर जीवन के प्रति आस्था और विश्वास के अंकुर भी अंकुरित होने देता है। क्योंकि उसका उद्देश्य जीवन से पलायनवादी होना नहीं है

१... यह युग एक अंधा समुद्र है
चारों ओर से पहाड़ों से घिरा हुआ....
सैकड़ों केचुल चढ़ाये सांप
एक दूसरे से लिपटे हुए .....
रेंग रहे हों......।
—'अंधा युग' : धर्मवीर भारती, पृ० ७२।

२... मैं
सांपों के बचे में रहता हूं ?
पूरे काले विषधारी सांप ....।
—'नयी कविता', अंक ८ : डा० जगदीश गुप्त, विजय देव नारायण साही
'अमरत्व' - महेन्द्रप्रताप, पृ० २०३।

भावना-ग्रस्त परिस्थितियों वश उसके अन्तर्मन से उद्गार प्रस्फुटित हो जाते हैं । धीरे-धीरे वह अपने में विश्वास उपजाता है । कुछ-कुछ निश्चय की स्थिति में आता है, और विश्वास का सम्बल लेकर वह अपने अन्तर्मन की पीड़ा को यथासंभव सहलाना चाहता है । वह जानता है कि, वह `अनउगे दिन का एक बीज है, लेकिन `नवयुग` का बीज है, वह भी अज्ञात, लेकिन, कामना कितनी ऊंची है । वह समूचा विश्व होना चाहता है । उसका मन इतनी ऊंची उड़ान भरता है कि वह नहीं समझ पाता कि वह `क्या-क्या, कितना कुछ, सभी कुछ` होना चाहता है[1] । वर्तमान से वह पूरी तरह परिचित है । वर्तमान में जो कुछ शुभ-अशुभ घटित होने वाला है, उससे वह अच्छी तरह अपने को सम्प्रेषित करना चाहता है, परिणाम-स्वरूप वह उन अनुकूल - प्रतिकूल परिस्थितियों से समझौता करना चाहता है । वह थककर निराश नहीं होना चाहता, वह उन सभी परिस्थितियों को विस्तार से समझ कर सुलझाता है, अपने योग्य बनाता है । इस क्रम में कभी-कभी अपने को सब कुछ मानकर चलता है तो कभी प्रभु का सहारा लेता है[2] । यद्यपि दो महायुद्धों की प्रतिक्रिया स्वरूप मानव जाति अत्यधिक व्यग्र एवं दयनीय हो उठी है, उसके स्वप्न,

----

१ ..... कल उगूंगा मैं
आज तो कुछ भी नहीं हूं....
एक नन्हा बीज मैं अज्ञात नवयुग का
समूचा विश्व होना चाहता हूं ... ।
`अभी बिल्कुल अभी` -- केदारनाथ सिंह
`निराकार की पुकार`, पृ०१२ ।

२..तुम जब मुझे
अपमानित करते हो
तब तुम मेरे निकट होते हो
प्रभु से प्रार्थना है
वह तुम्हें निकट ही रखे-।
`नयी कविता` अंक-८, १९६६-६७, सम्पा० डा०जगदीश गुप्त, विजय देव नारायण साही
श्रीश नरेश मेहता : प्रभु के नाम, पांच कविताएं-१
पृ०६४ ।

उसकी आशा,आकांक्षा के दीप की लौ ताज़ बर्बरता एवं अत्याचार के झोंके से एकदम क्षीण हो उठी है । उसके विश्वास की जड़ें हिली हैं, लेकिन जीवन-आस्था एकाएक भरभरा कर ढह नहीं गयी, क्योंकि मानव जाति सबसे ज्यादा बौद्धिक प्राणी है । जहां एक ओर विश्वास,आशा-आकांक्षा, सरल निर्द्वंद्व जीवन पर आंच आयी, वहीं उस आंच से बचने की ओर नूतन जीवन-निर्माण की ओर भी दृष्टिपात हुआ । और यहीं अवश्य यथार्थ का डटकर प्रदर्शन और सामना हुआ ।

क्रान्ति का आवाहन

यही बौद्धिकता उसमें नयी क्रान्ति का आह्वान् करता है । उसका मन सभी पुराने अन्ध-विश्वासों एवं संस्कृतियों की ऊबर परम्परा को तोड़ देना चाहता है--क्योंकि उसका मन बुरी तरह विशृंखलित हो गया है,उसकी आत्मा प्रताड़ित हो चुकी है, अब अतः वह नूतनता का आह्वान् करना चाहता है । नयी व्यंजना लाना चाहता है,क्योंकि इसी से मानव जाति का त्राण है[१] । क्रान्ति का व आह्वान् करता है, वह अपने में विश्वास जगाता है और दृढ़ता से कहता है कि एक दिन अवश्य प्रलय होगी, जिसमें सारे अवसाद,पीड़ा,निराशा,तिक्तता, विसंगतियां और अत्याचार नष्ट हो जायेंगे । सभी स्थितियां सामान्य होंगी । मन-मस्तिष्क से अनुकूल व्यवहार होगा । जहां इस तरह का विश्वास पैदा कर लेता है,

---

१ ···संसृतियों की संस्कृतियों की
तोड़ सभ्यता की चट्टानें
नयी व्यंजना का सोता बन
इसी तरह से बह सकता है··।
--हरी घास पर क्षण भर : अज्ञेय
नयी व्यंजना

अपनी भावना को व्यक्त करता है[१]। वह उन परिस्थितियों को शब्द देने की बात करता है जिन परिस्थितियों में व्यक्ति-मन को चेतना-करुणा-त्रास, जिंदगी और मौत जैसे खतरों से असम्पृक्त अपना स्थान रखती हो । जहां झूठी ममता कठोर यथार्थ को झुठलाये नहीं, बल्कि मां भी अपने बेटे को कठोर आज्ञा देने का साहस कर सके[२]।

उसकी चेतना में ऐसे ही कितने आयाम विस्तार पाने लगे हैं । पिछले सभी ठहर मनो-दशाओं में वह जीवन-संचार करना चाहता है, वह चाहता है कि परिस्थितियों से वह नहीं बल्कि उससे परिस्थितियां अनुप्राणित हों । ऐसी ही चेतना में वह घोषणा करता है । अपने चारों ओर घिरी संत्रास की ऊंची दीवार को तोड़कर उन्मुक्त हो जाना चाहता है । उसका जितना भी पतन हुआ है उन सब को उसकी चेतना ने भली-भांति समझ लिया है । अब उसके लिए वह कुंठा, विसंगति, संत्रास, उदासी, तिक्तता के मिले-जुले ईंटों, गारे के पुख्ता मकान को भी तोड़ देने के लिए तत्पर है । उसके परिणामस्वरूप वह सभी तरह के तिरस्कार, विरोध, संघर्ष की धूप, बरसात, सर्दी -- सभी कुछ सहने-झेलने को

---

१ ...एक दिन होगी प्रलय भी,
मत रहेगी झोपड़ी,
मिट जायेंगे नाहक निकम्मे भी ... ।
--`दूसरा सप्तक` : भवानीप्रसाद मिश्र
`प्रलय`, पृ० १६-२० ।

.... जिसमें अशोक को हत्या का आदेश देना पड़ता है
अंगूठा लगाना पड़ता है जिसपर किसी मां को
उस परिस्थिति को शब्द दो .... ।
--`वाकित के दुःख` : भवानीप्रसाद मिश्र
पृ० ८५ ।

तैयार है । पर वह बर्फ़ों से बने उस असहनीय `मकान` में नहीं रह सकता[1] । वास्तव में देखा जाय कि कितनी पीड़ा है , कितनी टीस है, जिसकी वजह से उसकी मन:स्थिति उन सभी असहनीय बोझ से बचना नहीं चाहती, बल्कि उससे त्राण चाहती है, उसके बदले में सभी कठिनाइयों को भी सह लेना चाहता है । कवि के मन में स्व-चेतना और संवेदनशीलता अधिक है, जिसकी वजह से उसके हृदय से कटु उद्गार निकलते हैं । ये उद्गार उसकी सच्ची अभिव्यक्ति है ।

लेकिन कहीं-कहीं सच्ची अभिव्यक्ति में भी वह स्वीकार करता है कि आज वह सभी विषम परिस्थितियों से डटकर मुकाबला करने के लिए चेतना का आह्वान एवं जागरण कर चुका है, और उसे उसके परिणाम में भयंकर स्थितियों से भी गुजरना स्वीकार है, लेकिन फिर कभी उसकी चेतना उसे यह सोचने के लिए मजबूर कर देती है कि इतना सब होने पर भी उसमें ऐसा क्या है जो उसे ऐसी क्रान्ति, ऐसा विरोध करने के लिए एकाएक उत्तेजित नहीं करता[2] ।

१ .... और हमें इस मकान को तोड़ना ही होगा
नया मकान नहीं है हमारे पास रहने के लिए,
हमें खुले आकाश के नीचे ही रहना होगा.... ।
`अर्धविराम` : मुनिरूपचन्द्र, `विनाश और निर्माण`, पृ०९ ।

२ ... हम भी हैं उसके स्वीकार में तनिक भी संकोच नहीं है
कि हमारे में ज्वालामुखी सी धधकती हुई एक आग है...
लेकिन क्या तुमने नहीं देखा,
हमारे में कुछ ऐसा भी है
जो हमारी नाव के आस-पास किसी को डूबते देखकर
गुज़रते हुए भी जल्दी से झपटता नहीं.... ।
— `अर्धविराम` : मुनिरूपचन्द्र
`सम्बन्धहीन जीवन`, पृ० ४० ।

इसकी पृष्ठभूमि में युद्ध के फलस्वरूप उत्पन्न हुई वे सभी विषाक्तता थी, जिन्होंने शनैः शनैः व्यक्ति के तन और मन दोनों को अपने वश में कर लिया था। अतः उसका प्रभाव एक झटके से नहीं टूट सकता। उसके लिए ऐसी ही कितनी घोषणाओं और साहस-संघर्ष की आवश्यकता है। तभी उसके मन से उदासी-निराशा, रिक्तता, अकेलापन, भय, संत्रास, विसंगति आदि समाप्त होकर उसकी नव जागृत चेतना अभिव्यक्त होगी।

संश्लिष्ट जटिल मनोविज्ञान : मनोविश्लेषणवाद के आगे की दिशा

इस तरह से देखा जाये तो नयी कविता की अभिव्यक्ति विशुद्ध मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है। मुक्तिबोध के इन विचारों को देखें तो पता चलता है कि वास्तव में आज कविता में कवि-मन जिन रूपों में अभिव्यक्ति पा रहा है, उसके पीछे युद्धों की प्रतिक्रिया से उद्भूत विशृंखलित मानव-मूल्य, टूटते-बिखरते आस्था-विश्वास के रूप, अनदेखे स्वप्न, अतृप्त आकांक्षा ही मूल है। कहीं-कहीं नयी कविता कवि-मन में व्याप्त तनाव के मनोविज्ञान को भी भली-भाँति चित्रित नहीं कर पाती है[१]। जिसके परिणाम-स्वरूप कभी कहीं-कहीं वह अन्तर्मुखी लगता है। कभी-कभी दुःखित, कातर आत्मा

---

१ -- "आज के कवि के हृदय में तनाव भी है, विराम भी। किन्तु कवि-हृदय फैलना चाहता है। फैलने की मनोवृत्ति के सक्रिय होते ही, उसे वास्तविकता के कुछ मार्मिक पक्ष दिखाई देने लगते हैं। किन्तु कहना चाहिए कि इन मार्मिक पक्षों का संवेदनात्मक आकलन करने की सारी तत्परता होते हुए भी अभिव्यक्ति लंगड़ा जाती है ....।"

--"नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध" — मुक्तिबोध

पृ०१

की पुकार को आत्मनिवेदन के रूप में अभिव्यक्त करता है और संघर्ष से निकलना चाहता है, उसमें घिरे हुए रहना नहीं चाहता है । तनाव और संघर्ष कभी आत्म-द्वन्द्व का रूप धारण कर लेते हैं, कभी निराशा का आंचल ओढ़ लेते हैं, तो कभी यथार्थ की ही दिशा बदल देते हैं । वस्तुतः यह सब मानसिक तनाव-घुटन-संघर्ष निराशा से प्रति-उत्पन्न विभिन्न मनोवैज्ञानिक सम्मिश्रित भाव-स्थितियां ही हैं जो नयी कविता की चेतना से सम्बद्ध हैं ।

जब कवि अपने मन की बात खुलकर कहना चाहता है, और उसके लिए पर्याप्त साहस एवं क्षमता जुटा लेता है, लेकिन अपनी मनोदशा को अभिव्यक्ति दे देने के बाद उसको लगता है कि अभी उनमें पर्याप्त साहस और क्षमता नहीं आ पाई है, क्योंकि उसकी अभिव्यक्ति लंगड़ी है । सब कुछ कह लेने की उत्कण्ठा न कह पाने की स्थिति में उसके मन में घुटन, तनाव तथा पीड़ा के भाव भर देते हैं । ऐसी ही मानसिक अभिव्यक्तियां खण्डित रूप में सामने आती हैं[१] ।

~~कारण--भुक्तभोगी-होने-पर-भ~~ यदि यह कहा जाय कि ऐसा क्या है, जिसके कारण भुक्तभोगी होने पर भी कवि अपनी मनो-दशा को भली भांति समग्ररूप में क्यों नहीं अभिव्यक्ति दे पाता है ? तो इसके साथ भी एक बड़ा कारण है । वह कारण है विश्वास और आस्था के बीच अनायास संशय की कसक का उठ खड़ा होना। यही संशय उसकी संवेदना के बीच बाधा बन जाता है । जब सर्वेश्वर जी 'काठ की घण्टियाँ' में अपने निष्प्राण देवता के चरण छोड़ देने की बात करते हैं, अपने गूंगे

----

१ ... केवल एक बात थी
    कितनी आवृत्ति,
    विविध रूप में करके निकट तुम्हारे कही ।
    फिर भी हर क्षण
    कह लेने के बाद,
    कहीं कुछ रह जाने की पीड़ा बहुत सही ।'

'तीसरा सप्तक' - सम्पा० अज्ञेय

'केवल एक बात थी' -- कीर्ति चौधरी, पृ० ९३ ।

स्वरों में कोटि-कोटि जन के स्वर में कर लोई शक्ति के प्रस्फुटित होने की बात करते हैं, तो उस समय उनको चेतना मनोविज्ञान से सम्बद्ध जान पड़ता है[1]।

कहीं-कहीं नयी कविता में यह आक्षेप भी लगाया जाता है कि नयी कविता सही मनोविज्ञान नहीं प्रस्तुत कर पाती या यों कहें कि नयी कविता मनोविज्ञान से सम्बन्धित होने पर भी उसमें कवि की मन:स्थितियों का चित्रण सही ढंग से नहीं हुआ है। यद्यपि नयी कविता के मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि में जीवन की खण्डित मर्यादायें, टूटे मूल्यों की अस्त-व्यस्त परम्परा, मानव-आत्मा की तिरस्कृत, प्रताड़ित, भावनायें अमानुषिक व्यवहार और मिथ्याचरण ही हैं। इन सभी का प्रभाव विभिन्न मनोदशाओं के रूप में अभिव्यक्ति पाना चाहता है। 'प्रत्येक ज्ञान का मूल केन्द्र दो भाव-स्तर हैं-- पहला संवेदना स्तर और दूसरा सम्वर्म स्तर।'[2] इस तरह जो अनुभूति है, वही ज्ञान है और उस ज्ञान का कवि है।

---

१ '..... शायद कल
मेरी आत्मा का निष्प्राण देवता
अपने चक्षु खोल दे
शायद कल
मेरे गूंगे स्वरों के सहारे
कोटि कोटि कंठों की लोई शक्ति बोल दे।'

'काठ की घंटियाँ'-- सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
'काठ की घंटियाँ', पृ०४२८।

२ इस सम्बन्ध में डाक का यह मत था कि प्रत्येक ज्ञान का मूल केन्द्र दो भाव स्तर है-- पहला संवेदना स्तर और दूसरा सम्वर्म स्तर। लेकिन ये दोनों मानसिक क्रियाशीलता के आधार पर विकसित होते हैं और इस मानसिक स्तर की प्रक्रिया आन्तरिक चेतना से सदैव सम्बद्ध रहती है।

--'नयी कविता के प्रतिमान' -- लक्ष्मीकान्त वर्मा
'मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि', पृ० ३०।

अभिव्यक्ति दे पाना मनोवैज्ञानिक-प्रक्रिया है । यदि नयी कविता तनावों एवं घुटन के मनोविज्ञान को चित्रित करने में पूर्णतया सफलता प्राप्त कर ले तो नयी कविता में मनोविश्लेषणवाद से आगे की दिशा कुछ अधिक स्पष्ट और सुदृढ़ हो जायगी । तब उसे अपनी मनोदशा को अभिव्यक्ति में किसी भी तरह का प्रश्न चिन्ह लगाने की आवश्यकता नहीं महसूस होगी । वह अपनी मन:स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए सपाट और कुरूप की भाषा का प्रयोग करेगा, वार्तायता, साम्प्रदायिकता, समुदायिकता और सामाजिकता के प्राय: समस्त प्रतिमान नये आयाम में प्रवेश पा लेंगे और तब नयी कविता नये मनोविज्ञान का आयाम लेकर प्रस्फुटित होगी । लेकिन ऐसा अभी पूरी तरह हो नहीं पाया है[१] । क्योंकि कभी-कभी कवि अपने ही आत्मविश्वास और शब्द-सामर्थ्य की भावस्थिति में आकर ऊंची-ऊंची बातें करने लगता है, अपने पर गर्व का भाव चढ़ा लेता है और इस भावस्थिति में आकर अनुभूत महान भावनाओं, विशिष्ट कल्पनामय स्थितियों और सांसारिक जिज्ञासाओं का कोई भी मनोविज्ञान उपस्थित नहीं कर पाता, जब कि वे उसके जीवन की वास्तविकता से सम्बद्ध हैं । इसके स्थान पर फुटकर छोटे-मोटे क्षणिक अनुभव को सार्थक और महत्वपूर्ण समझकर उसी पर ऊंची-ऊंची बातें तथा कविताएँ प्रस्तुत करने के में निमग्न हो जाते हैं । जिन नये मूल्यों के लिए संघर्षरत हैं, जो उनके जीवन के महत्वपूर्ण अंग हैं, जिनका अविभाजन असम्भव है, उनके प्रस्तुतीकरण में इसलिए ईमानदारी नहीं कर पाते, क्योंकि जीवन कोई वास्तविकता के लिए किए गए

---

१ '...किन्तु, नयी कविता तो तनावों के मनोविज्ञान को भी पूर्णत: चित्रित नहीं कर पाती है । संवेदनात्मक ज्ञान-क्षमता और अनुभव-सामर्थ्य की दृष्टि से स्वयं सम्पन्न होते हुए भी लेखक तनावों के अत्यन्त लघु, अत्यन्त अल्प अंश को ही कविता में प्रतिबिम्बित कर पाता है,....(जहां तक कि वास्तविक जीवन में महान भावनायें भी मूर्त होती हैं, और बराबर अनुभव की जाती हैं, वह लेखक का मानस सामर्थ्य है) नयी कविता में चित्रित नहीं हो पाता... ।'

—'नयी कविता का आत्म-संघर्ष तथा अन्य निबन्ध'

गजानन माधव 'मुक्तिबोध', पृ० ५१

वास्तविक संघर्ष में रत कवि और फलस्वरूप इस दौरान में पाये गये अनुभव और नयी दृष्टियाँ उसे विश्वास और उत्साह देने के स्थान पर क्षीण और कातर करती जाती हैं और वह उपयुक्त मानव-मनोविज्ञान के स्थान पर दीन-हीन-सा व्यवहार करने लगता है, और कला के प्रति अपने प्रति अनुत्तरदायी साबित होता है[१]।

कवि जीवन के नये मूल्यों के लिए जो संघर्ष करता है, उसका अनुभव तो गौण हो जाता है, उसके स्थान पर संघर्ष की प्रक्रिया में आई हुई विघ्न-बाधायें और तमाम दुःस्थितियां ही अभिव्यक्ति के स्तर को छू पाती हैं, उन दुःस्थितियों और बाधाओं के संघर्ष की मुख्य भावस्थिति अनछुई ही रह जाती है। उसके लिए जिस प्रतिभा और पौरुष की आवश्यकता होती है, वह कवि अपने में नहीं उपजा पाता। परिणामस्वरूप संघर्ष की पीड़ा और बाधा ही कविता का मनोविज्ञान बन सामने आता है। संघर्ष में रत रहने और उसमें प्रयास रहित होने की स्थिति से उत्पन्न क्षोभ, पीड़ा और आहत मन को ही वास्तविक संघर्ष नहीं कहा जा सकता, बल्कि संघर्ष की गहराइयों को धैर्य और बुद्धि तथा विवेक से झेलते हुए मनोवैज्ञानिक चेतना के नये आयाम की आवश्यकता है।

---

१ "... उसके विपरीत, व्यक्तित्व पर लक्ष्यों की मांगें कम होने की स्थिति में छोटी-मोटी सांसारिक सफलताओं के नशे में लेखक अपने तथाकथित सन्तुलन और आत्मविश्वास के आभास का बृहद् रूप बनाकर, कविता में तथाकथित 'आत्म-स्थापना' करता है, किन्तु पाठकों को या अन्य लेखकों को ऐसी कविता पढ़कर केवल इतना ही प्रतीत होता है कि कवि 'आत्मप्रस्थापना' के मूड में है। कुल मिलाकर नतीजा यह होता है कि वास्तविक अनुभावित जीवन के आधार पर मनोवैज्ञानिक वस्तुतत्वात्मक चित्र अपने अभाव में महत्वपूर्ण हो जाते हैं। विशेष वर्ग में रहने वाले विशेष प्रकार के जीवन में पड़े हुए पूर्ण मनुष्य का मनोवैज्ञानिक चित्रण नहीं हो पाता ....।"

—'नयी कविता का आत्म-संघर्ष तथा अन्य निबन्ध'— मुक्तिबोध, पृ०५२।

जीवन-मूल्यों के संघर्ष से टकराते-जूझते उसी में डूब जाने की प्रक्रिया विशुद्ध मनोवैज्ञानिक नहीं है, बल्कि उससे उबरने का प्रयास सच्चे रूप में और सच्चे अर्थों में मनोवैज्ञानिक-चेतना के आयाम हैं । जिसकी नयी कविता में नितान्त कमी है[1] ।

नयी कविता से पूर्व प्रयोगवाद फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित था । फ्रायड का जो मनोविश्लेषणवाद के विषय में विचार था, उसके अनुसार व्यक्ति अचेतनावस्था में रहता है, उसके लिए उसका परिवेश, उसका समाज और यहां तक कि सत्य स्थितियां भी उतनी महत्वपूर्ण नहीं होतीं, जितना व्यक्ति स्वयं अपने लिए महत्व पूर्ण होता है । प्रयोगवाद के कवि इस आत्मकेन्द्रितता से ग्रसित थे । प्रयोगवाद के कवियों ने यद्यपि छायावादी वायवीय काल्पनिकता, रहस्यमयता और प्रगतिवादी बहिर्मुखी यथार्थवादी सामाजिकता से छुटकारा तो पा लिया, लेकिन युग की जो समस्या थी, समाज की जो स्थिति थी, उससे एक अन्तर्मुखीनता का रवैया भी अपना लिया । प्रयोगवाद में व्यक्ति की महत्ता का प्रश्न तो उठाया गया, लेकिन उस व्यक्ति की सीमा अचेतन तक सीमित कर दी गई । उसको परिस्थितियों की टकराहट से उत्पन्न समस्यायें प्रभावित तो करती हैं, लेकिन वह चेतन होते हुए भी अचेतन की स्थिति में रहता हुआ बड़ी-बड़ी घोषणायें करता है । उनसे उबरने की जो बात करता है, लेकिन ऐसी कोई भी दृष्टि नहीं दे पाता जो मनोविश्लेषण को आगे की दिशा दिखा सके । नये कवियों में मनोविश्लेषण का रूप सुधरा हुआ दिखाई देता है । नया कवि समझता है कि वह पूर्णरूपेण जानते हुए अचेतन की स्थिति में नहीं रह सकता । इसलिए वह प्रयोगवादियों की स्थिति में तरह उधार अचेतना का आवरण नहीं ओढ़ना चाहता । इसलिए वह नौकरशाही शासन-व्यवस्था से उद्भूत आर्थिक, सामाजिक वैषम्य के प्रभाव से अपने

---

1 '....नयी कविता में नये मूल्यों के संघर्ष के तनावों के साथ मानवात्मा के मनोवैज्ञानिक चित्र कितने कम हैं यह किसी से छुपा नहीं.... ।'
—'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध', पृ०३३ ।

भी नहीं बचा पाता, वह टूटता है, बिखरता है, लेकिन वह सम्बन्धहीन नहीं होना चाहता । वह यथार्थ दृष्टि द्वारा उन सभी परिस्थितियों को वश में चाहे न कर पाये, लेकिन उन सभी विरोधों, विसंगतियों को झेलते हुए , व्यक्ति के मन के हर एक पक्ष को उद्घाटित करता है । इस दृष्टि से नयी कविता के भीतर जो मनो-वैज्ञानिक प्रक्रिया लक्षित होती है, वह छायावादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी अथवा पूर्ववर्ती किसी भी अन्य काव्य-धारा से सर्वथा भिन्न है । क्योंकि नया कवि छाया-वादी कवियों की तरह न तो भावुक होकर रूमानियत के प्रवाह में भावों पर रहस्य-मयता एवं काल्पनिकता का आवरण डालता है, न प्रगतिवादी कवियों की तरह सुधारवादी भावना से प्रेरित होकर नितान्त कृत्रिम भावों की अभिव्यक्ति करता है और न ही प्रयोगवादी कवियों की तरह फ्रायडवाद का सहारा लेकर चेतन पर अवचेतन को हावी कर दु:ख, पीड़ा, नैराश्य के गीत गाता है, बल्कि वह आज के सम-सामयिक मानस के किन्हीं अनुकूल मानसिक ऊहापोहात्मक प्रक्रियाओं को ही व्यक्त करता है । इसी दौरान वह कभी व्यक्ति के मानसिक प्रतिक्रियाओं के चित्र सहज रूप में प्रस्तुत करता है, कभी उन्हें कुछ अधिक विषमता दे देता है । लेकिन ऐसा नहीं है कि यह विषमता उसके अन्तर्मन को बिना स्पर्श किये ही अभिव्यक्त हुई है । बल्कि होता यह है कि वह अपने अन्तर्मन में व्याकुलता, मन्थन का अनुभव तो करता है, लेकिन उस व्याकुलता और मन्थन की अनुभूति को विवेक,बौद्धिकता के द्वारा अनुशासित एवं सन्तुलित करके प्रस्तुत करता है ।

मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति नयी कविता के सम-सामयिक बोध का प्रमाण है । जिन विषमताओं ने अन्तर्मन को बुरी तरह झक-झोरा है और उनको अभिव्यक्ति देने में नयी कविता अपना धर्म समझती एवं अपना दायित्व समझती है । लेकिन केवल मन के अन्तर्मन के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पक्षों के उद्घाटन से नयी कविता का दायित्व पूरा नहीं हो सकता । आज तो ऐसी शक्ति की ज़रूरत है जो व्यक्ति को बिखरने,टूटने,अवसाद,पीड़ा और सम्बन्धहीनता की स्थिति में न केवल उबार दे,बल्कि पूरे समाज को ही बचा ले । यद्यपि नयी कविता ने मनोविश्लेषण की दिशा में एक वास्तविक कदम उठाया है, उसने

मानव-मन को स्वकेन्द्रता की स्थिति से उबार कर व्यक्ति-मन को सामूहिक मन के रूप में विश्लेषित किया है । लेकिन इतना ही करने से मनोविश्लेषणवाद को आगे की दिशा का पता नहीं चल सकता । केवल विषाद, अवसाद और पीड़ा का राग अलाप कर नयी चेतना नहीं जगा सकते । मानव चेतनायुक्त प्राणी है, वह अपने आस-पास की वस्तुओं से प्रभावित होता है । नये कवियों के साथ भी ऐसा ही हुआ । स्वतन्त्रता के बाद आशा के प्रतिकूल जो विषमतायें और अव्यवस्थायें उत्पन्न हुई, उनसे मानव-मन दुखित हुआ और विशृंखलित हुआ, क्योंकि मानव एक सम्वेदनशील प्राणी है । जो संवेदनशील होगा, वह कभी-कभी भावुक भी होगा । अतः टूटना-बिखरना और आशा-निराशा का शिकार मानव तो होता ही है, लेकिन नये कवियों का दायित्व इतना ही नहीं है कि वह मनोविश्लेषण के रूप में उसके मन की नाना रूपों में केवल व्याख्या ही करें । बल्कि होना यह चाहिए कि ऐसी शक्ति की खोज भी करें जो मनोविकारों का समाधान करके ऐसी दृष्टि भी प्रदान करे, जिससे सारी विषमतायें आपसे-आप समाप्त हो जायें । ऐसा हो जाने पर मानव-मन के विश्लेषण की आगे की दिशा स्पष्ट हो सकेगी । तब न व्यक्ति 'फ्रायडवाद' का सहारा लेगा न 'मार्क्सवाद' का और न ही उसे समाज से कटकर रहने की आवश्यकता ही होगी ।

~~लेकिन~~ अभी नयी कविता में मनोविश्लेषणवाद के आगे की दिशा निश्चित नहीं हो सकी है । लेकिन ऐसा भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि नयी कविता मनोवृत्तियों का ही नाना रूपों में ही चित्रण करती रहेगी, उससे उबरने के लिए कोई चिन्तनकारी दृष्टि नहीं दे सकता । जहां आज मानव को इतनी सफलता मिली कि उसके मन का विश्लेषण यथार्थ की खुरदुरी भूमि पर उतर कर, सारे विरोधों को पार करके हो रहा है, वहां उसकी आगे की दिशा भी अवश्य खोज निकाली जायगी । परन्तु हो सकता है, इस दिशा की खोज में अभी काफी समय लग जाय ।

--०--

तृतीय परिच्छेद

-o-

नयी कविता की नयी आत्म-चेतना

मानवतावादी दृष्टिकोण

व्यक्ति और समाज की सापेक्षता में नयी आत्म-चेतना का विकास

मानवता के सन्दर्भ में आत्म-तत्व का विकास

युगीन परिस्थितियां : सम्बद्धता,

स्वतन्त्र अभिव्यक्ति : सीधा साक्षात्कार

अतिलौकिकता

प्रयोगवाद से पृथक् अहं का रूप

आत्मानुभूति का वैज्ञानिक मनोविज्ञान

सपाट बयानी

आस्था का स्वर

भविष्य के प्रति गहरी अदम्य आशा ।

-o-

तृतीय परिच्छेद

-0-

नयी कविता की नयी आत्म-चेतना

मानवतावादी दृष्टिकोण

आज नयी कविता के बारे में बार-बार यह प्रश्न आलोचकों एवं पाठकों के बीच विवाद का विषय बना हुआ है कि नयी कविता की चेतना विशुद्ध वैयक्तिकता की ओर है और नयी कविता का भाव-बोध समाज-निरपेक्षता को स्वीकार करता है । लेकिन इन प्रश्नों का हल ढूंढने के लिए यदि नयी कविता के मूल स्रोत में छिपी मनोवैज्ञानिक दृष्टि को समझने का प्रयास करें, तो हम देखते हैं कि पिछले दो दशकों के बीच मानव को दो भीषण विश्व-युद्धों का सामना करना पड़ा । ऐसे भयंकर युद्ध जिसमें जीवन की सारी सरलता सदा-सदा के लिए समाप्त हो गई । या यों कह दें कि मानव-संघर्ष की वह स्थिति उत्पन्न हो गई, जहां युग-युग से संचित मूल्य,मान्यताएं,परम्पराएं ढह-ढहाकर नष्ट हो गई । रीति-व्यवस्था,क्रम-अनुक्रम की परम्परा विशृंखलित हो गई । मानव-संघर्ष की इस आंधी में सर्वत्र बिखराव आ गया । एक ऐसा टूटापन,जिसमें असहायता,अकुलाहट शंका, ठहराव और आत्मविश्वास नाममात्र को रह गये । ऐसे टकराहट के समय चूर-चूर होते मानवीय-मूल्यों को नये कवियों की चेतना उपेक्षा नहीं कर सकी । यही कारण है कि नयी कविता के सम-सामयिक परिप्रेक्ष्य में मानवतावादी दृष्टिकोण दृष्टिगोचर होता है[1] ।

---

१ `.... नयी कविता ने यथार्थ की प्रकृति के साथ-साथ अनुभूतियों के सम-सामयिक और उसके मानवीय पक्ष को सहज रूप में स्वीकार किया है... ।`

—`नयी कविता के प्रतिमान` — लक्ष्मीकान्त वर्मा ,पृ० २ ।

यहां प्रश्न उठ सकता है कि विश्व-युद्ध से उत्पन्न चेतना का नयी कविता से क्या सम्बन्ध है ? विश्व-युद्ध से उत्पन्न चेतना से नयी कविता का संवेदनशीलता का सम्बन्ध है । यद्यपि ये विश्व-युद्ध भारतीय परिवेश में नहीं हुए हैं, तथापि इनका प्रभाव प्रकारान्तर से आया है । कवि की चेतना देश-काल की सीमा में बंधी नहीं होती है । इसलिए संवेदनशीलता के आधार पर वे दुनियां के किसी भी कोने में होने वाली घटनाओं का अनुमान लगा लेते हैं[1]। पुराने मूल्यों,परम्पराओं आदि के टूटने और बिखरने के साथ-साथ मानव-सम्मान को भी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं वैयक्तिक धरातलों पर अपमानित होना पड़ा है । यही कारण है कि नयी कविता के भाव-बोध ने मानवीय तत्वों को सबसे पहले स्वीकार किया है । नयी कविता में सबसे ज्यादा बल आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास की जागरूकता की ओर दिया गया है । ऐसे मनोवैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक दांव-पेंचों में उलझी नयी कविता की चेतना आत्ममन्थन के रूप में अभिव्यक्त हुई है । नये कवियों ने इसके लिए सर्वप्रथम अपने आत्मतत्व, और अपने अहं को पहचानने का प्रयत्न किया है । ऐसी स्थिति में यदि नयी कविता को समाज-निरपेक्ष और अहंवादी कविता कहेंगे तो यह न्यायोचित न होकर मिथ्यारोपण ही होगा । क्योंकि व्यक्ति समाज की इकाई है । व्यक्ति से पृथक् समाज का कोई अर्थ नहीं होता, कोई मूल्य नहीं होता । मानवतावादी दृष्टिकोण होने के कारण नयी कविता की चेतना व्यक्तिगत चेतना भला कैसे हो सकती है ? प्रायः नये कवियों की चेतना व्यक्तिगत न होकर सामूहिक ही है[2]।

---

१ "....नये कवि स्वतन्त्र चेता होने के कारण विदेशी साहित्य से भी निस्संकोच प्रभाव ग्रहण करते हैं(उपनिवेशन वीजन कोड में इसके लिए शायद कोई जगह भी नहीं है) लेकिन उनकी अन्तश्चेतना अपने ही परिवेश से अनुप्राणित हो रही है...।"
— नयी कविता,अंक ८-डा० जगदीश गुप्त,विजयदेव नारायण साही,पृ०६ ।

२ "....(नयी कविता में) मानवीय तत्व अत्यधिक हैं और इसी कारण वह केवल सामान्य की वस्तु न होकर एक व्यक्ति सत्य और मानवीय संवेदना का सत्य बनकर अधिक यथार्थ के साथ उभरा है... ।"
— "नयी कविता के प्रतिमान" — लक्ष्मीकान्त वर्मा,पुरोवाक्,पृ०२-३।

व्यक्ति और समाज की सापेक्षता में नयी आत्मचेतना का विकास

जहां नयी कविता का उद्देश्य जीवन की विराटता को लेकर चलने का है, वहां नयी कविता के प्रति ऐसी धारणा बना लेना कि नयी कविता समाजेतर वैयक्तिकता प्रधान है। यह नयी कविता के प्रति संकुचित एवं असंगत धारणा कही जायगी। सामाजिक मूल्यों की अवहेलना करके मनगढ़न्त आत्मानुभूतियों सम्वेदनाओं, भाव-बोधों को मनमाने ढंग से नयी कविता अभिव्यक्ति दे रही है। यह भी सर्वथा उचित नहीं पड़ता, क्योंकि नयी कविता का दृष्टिकोण इतना सतही और सीमित नहीं है। उसकी चेतना, सम्वेदना, सामूहिक चेतना है-- समाज में जीवनमूल्यों को नये रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए 'नये मानव' के रूप में। यद्यपि उसका ऊपरी स्वरूप व्यक्तिगत ही लगता है, लेकिन उसकी मूल सम्वेदना सामूहिक सम्वेदना ही है[१]।

व्यक्ति और समाज की सम्बद्धता के प्रश्न को नयी कविता में विवाद का विषय बना लिया गया है। यद्यपि नयी कविता की चेतना एक ओर यदि वैयक्तिकता-प्रधान है, तो दूसरी ओर सामाजिक मान्यताओं की समर्थक भी है। जहां तक नये कवियों का प्रश्न है, उन्होंने एक ओर समाज और व्यक्ति के सम्बन्धों को समझा तो दूसरी ओर कला के प्रति भी उत्तरदायित्व को निभाया है। अज्ञेय ने स्वयं कलाकार को मात्र व्यक्ति न मानकर कलाकार भी माना है[२]। कलाकार के दृष्टिकोण से नये कवियों ने नयी कविता में शिल्प और भाव दोनों को प्रधानता दी है।

---

१ '....'आज की कविता' नहीं मानती कि व्यक्ति सब सामाजिक मूल्यों, सम्बन्धों से कट गया है या निपट वैयक्तिक होकर जीने में ही जीवन की सार्थकता है.. ।'
--'नयी कविता', अंक-८, सं०डा०जगदीश गुप्त, विजयदेव ना०साही, पृ०८१ ।

२ '... जो व्यक्ति और समाज का झगड़ा खड़ा करते हैं वे बहुधा यह भूल जाते हैं कि व्यक्ति और समाज के प्रति उत्तरदायित्व के अतिरिक्त कलाकार का कला के प्रति भी उत्तरदायित्व होता है... ।'
--'शरणार्थी' (भूमिका), पृ०२ ।

जहां तक भाव-बोधों और अनुभूतियों का प्रश्न है, नये कवियों ने मानव-संघर्ष, टकराहट एवं छटपटाहट के बीच अपना मार्ग प्रशस्त किया है । इसी से नयी कविता में व्यक्तिगत स्वर कुछ तीव्रता के साथ उठा है । इस दृष्टिकोण से नयी कविता को समझने का प्रयास करें तो सामाजिक एवं वैयक्तिक दोनों भाव-भूमियों पर नयी कविता निश्चित रूप से अनुस्यूत हुई है । नयी कविता पर असामाजिकता का आरोप लगाना, नयी कविता के भाव-बोधों की अवहेलना करना है । क्योंकि समाज से इतर व्यक्ति का कोई महत्व नहीं, समाज और व्यक्ति परस्पर सम्बद्ध हैं[1] ।

संघर्षशील परिस्थितियों और मूल्यों को टकराहटों ने नये कवियों की चेतना को मानवतावादी दृष्टिकोण के साथ-साथ व्यक्तिवादी भी बना दिया । उनकी यह चेतना यथार्थवादी आत्म-चेतना ही कही जा सकती है । यथार्थवादी चेतना के इस अर्थ में कवि आत्ममन्थन द्वारा अपने अहं को पहचानना चाहता है । यदि कहा जाय कि नयी कविता की चेतना नितान्त व्यक्तिगत है तो वह पूर्णतया अमान्य भी नहीं,क्योंकि नयी कविता की चेतना संघर्षशील परिस्थितियों के विद्रोह से अनुप्राणित है । विद्रोह,कुंठा,निराशा की स्थिति में व्यक्ति ने अपने को पहचानने का सर्वप्रथम प्रयास किया है । यह बात और है कि व्यक्तिगत अनुभूति को सामूहिक स्तर पर संचरित करने के प्रयास में वह कहां तक सफल हुए हैं । लेकिन यह तो कहा ही जा सकता है कि नयी कविता में वैयक्तिकता,अहंवाद,सामाजिकता या ह्रासशील प्रवृत्तियों का अतिवादी रूप नहीं स्वीकार किया गया है, बल्कि एक सामन्जस्य की भावना से नयी कविता का स्वर मुखरित हुआ है[2] ।

---

१ '.... समाज के प्रत्येक सदस्य की छोटी से छोटी चेतन क्रिया किसी न किसी अंश में सामाजिक होती है,फिर कविता तो समाज के सबसे अधिक संवेदनशील व्यक्ति की चेतन क्रिया है । उसकी सामाजिकता अनिवार्य है... ।'

—'तीसरा सप्तक'—सम्पा० अज्ञेय, वक्तव्य केदारनाथ सिंह,पृ०११५-१७ ।

२ '.... नयी कविता का यथार्थ आत्मकेन्द्रित है । नयी कविता में न वैयक्तिकता का अतिवादी रूप अहंवाद ही आया है और न सामाजिकता का ही सर्वग्रासी रूप.. ।'

—'हिन्दी की नयी कविता'— डॉ० नारायण शुक्ल , पृ०७०।

मानवता के सन्दर्भ में आत्मतत्व का विकास

प्रत्येक युग का अपना एक सत्य होता है । प्रत्येक युग की काव्य-धारा उस सत्य की अभिव्यक्ति होती है । कालक्रम के अनुसार प्रत्येक युग का सत्य शाश्वत् सत्य न हो, लेकिन स्थिति सत्य तो होता ही है । यही बात नयी कविता के सन्दर्भ में लागू होती है । नयी कविता का मूल भाव-बोध मनोवैज्ञानिक भाव-भूमियों से अनुप्राणित है । गत तीन दशकों में मानव-इतिहास दो भयंकर विश्व-युद्धों के दुष्परिणामों का सब साक्षी रहा है । मानवता के नाम पर जो अपमान सहना पड़ा, उसकी प्रतिक्रिया में आज नयी कविता मानवसम्मान, आत्मसम्मान और साथ-ही-साथ आत्मविश्वास केप्रति अधिक जागरूक है । यद्यपि विश्व-युद्धों की प्रतिक्रिया प्रकारान्तर से प्रच्छन्न रूप में यथार्थवादी भाव-भूमि तैयार करने में सहायक रही है, लेकिन उसके भीषण परिणामों के फलस्वरूप कविता ने खोखली मान्यताओं,टूटते पुराने जर्जरित मूल्यों को नये ढंग से देखा,समझा तथा नये भाव-बोध के साथ प्रस्तुत किया है । विश्व-युद्धों की ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया हुई कि अधिकांश कवियों ने वैयक्तिक धरातल पर अधिक-से-अधिक चिन्तन-मनन किया और यथार्थवादी दृष्टिकोण रखा । प्रकृति-विकृति, सुन्दर-असुन्दर,सत्य-असत्य सबको स्वीकार कर भविष्य के प्रति आस्था का स्वर जगाया है । यद्यपि यह निर्विवाद है कि कहीं-कहीं अनास्था,अविश्वास और पीड़ा के स्वर भी दिखाई पड़ जाते हैं । जहां मानव-सम्मान की बात उठती है, वहां व्यक्ति का अहं प्रकट हो उठता है । पहले की अपेक्षा आज का कवि अधिक साहस और आत्मविश्वास के साथ मानव-अस्तित्व की घोषणा करता है । भविष्य के प्रति आस्था रखता है । उसके लिए आँखें बिछा देता है । जितना विश्वास है,वो उसे वर्तमान और भविष्य दोनों से जोड़ता है । जीवन में जीने का भाव है,पलायन का नहीं[1] ।

---

1 '.... बड़े मलिन मंद मुख पुष्पों का
आखिर भविष्य क्या
इसकी प्रतीक्षा क्यों।'
— 'ठीकरा [illegible]' — कीर्ति चौधरी, 'प्रतीक्षा', पृ० 45 ।

युगीन परिस्थितियां : सम्बद्धता

नयी कविता का कवि आज परिस्थितियों के वश में नहीं है । उसके लिए प्रत्येक दिन नयी आशा किरण लेकर उदय होता है और वह अपने अनुरूप दिन को ढालता है । प्रकृति की सत्यता को स्वीकार करते हुए भी प्रकृति पर विजय का भाव है 'खोल दूं यह आज का दिन'[1] । परिस्थितियां उसकी विवशता अथवा कमजोरी नहीं हैं,बल्कि वह परिस्थितियों पर अपना अधिकार कर सका है । परिस्थितियां, रात-दिन यहां तक पूरी-की-पूरी प्रकृति उसके अनुकूल कार्य करती है । वह जो कुछ सोचता है, उसका अपना सत्य होता है । वह ऐसे सत्यों में जीता है,जो शाश्वत चाहे न हो, लेकिन वस्तुस्थिति सत्य तो है ही । यही कारण है कि नयी कविता की चेतना परम्परा-रूढ़ियों के विरोध में जीवन-सत्य के उन आयामों का स्पर्श करती है,जो व्यक्ति की आत्मानुभूति और आत्म सत्य के द्वारा अभिव्यक्त होते हैं ।

स्वातन्त्र्य अभिव्यक्ति : सीधा साक्षात्कार

यदि यह विचार किया जाय कि नये कवियों की व्यक्तिगत स्थिति क्या है तो इस विषय में लगता है कि कवि स्वयं भी अनभिज्ञ है, क्योंकि आज स्थिति पूर्णतया अपने नग्नतम रूप में हमारे सामने है और इस कारण अनुभूतियों,सम्वेदनाओं को व्यक्त करने के लिए ऐसा कोई भी आवरण नहीं है जिसकी आड़ लेकर कवि अपने को व्यक्त कर सके । न तो छायावादी कवियों की भांति उसके पास केवल लेखनात्मक कवच ही उपलब्ध है कि प्रकृति का अवलम्बन लेकर अपनी अनुभूतियों,इच्छाओं,अतृप्त यौन भावनाओं को व्यक्त कर सके या रीतिकालीन कवियों

---

१ '.... खोल दूं यह आज का दिन ... ।
एक हल्दी सी ...
हथेली पर धरा... । '
—'अभी बिल्कुल अभी'— केदारनाथ सिंह,पृ०१२-१३ ।

की तरह आचार्यों और विद्वानों द्वारा निरूपित आदर्शों, गुरु या ईश्वर के माध्यम से अपने को व्यक्त करसके । अत: नये कवियों की स्थिति पूर्ण तथा अनावृत है । अपने नग्नतम रूप में नये कवियों की अनुभूति व्यक्तिगत अभिव्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत होने पर सामान्य पाठक को सहज प्रभावित नहीं कर पाती है । इसके अतिरिक्त सब कुछ अनावृत कर देने की लालसा नये कवियों की अपनी स्वयं की पिपासा है, आवश्यकता है, अपने अन्तर्मन को खोलकर व्यक्त करने की उसकी अपनी आकांक्षा है । `शब्ददंश` में `तूफान दोस्त है` नामक कविता में डा० जगदीश गुप्त ऐसे तूफान का आह्वान करते हैं, जिसमें शुतुर्मुर्ग की तरह वास्तविकता से मुंह छिपा कर बैठने की बात चित्त में न उठे । एक ऐसा झंझावात अन्तर्मन में मचल उठे, जहां वह दर्पण की भांति अपने रूप को देखकर पहचान सके[१] । आत्म-चेतना का यह इच्छित विस्तार उन नये मूल्यों को स्थापित करना चाहता है, जहां समस्त मानवता का भविष्य जुड़ा हुआ है ।

नयी कविता में आत्मनिवेदन की भावना भी स्वतन्त्र अभिव्यक्ति से सम्बद्ध है । नये कवियों की विचार-धारा और अन्तर्दृष्टि जिस मोड़ पर आकर पीछे देखना चाहती है, वहां पर उसे अपने अहं का और अपने व्यक्तित्व का ही आभास होता है । क्योंकि वह अपने व्यक्तित्व को पास से परखना चाहता है[२] । इस दृष्टि से नयी कविता की चेतना व्यक्तिवादी भी मानी जा सकती है, लेकिन यदि इसी दृष्टि को व्यापक अर्थों में देखें तो कवि की अनुभूति व्यक्ति-चेतना को सार्वजनीन बनाने के पक्ष में है ।

---

१ `शब्ददंश` -- डा० जगदीशगुप्त, `तूफान दोस्त है`, पृ०४३-४४ ।

२ ` .... कैसे मैं नहीं हूं कोई ...
या तो हम दशा हैं अपने निषेध की
या फिर है स्वीकृति असत्य आत्मबोध की .... ।`
--`शब्ददंश`--डा० जगदीश गुप्त, पृ०२८ ।

अतिबौद्धिकता

नयी कविता में एक ओर जहां अपने युग का प्रतिनिधित्व करने का गुण है, वहीं अतिबौद्धिकता का भी प्रबल आवेग है। जिसके कारण कविता में अपेक्षित गम्भीरता, अपेक्षित गहनता नहीं आने पायी है, क्योंकि कहीं-कहीं अतिबौद्धिकता के चक्कर में फंसकर नयी कविता अबोध हो गयी है। उसमें कृत्रिम भावों का आरोपण होने लगता है। यहां पर शमशेर बहादुर की एक कविता 'शाम' का उल्लेख आवश्यक है। 'शाम' कविता साधारण पाठक के लिए एक नयी समस्या खड़ी कर देती है, क्योंकि जिस बौद्धिकता के वशीभूत हो कवि नितान्तअसम्बद्ध काल्पनिक प्रतीकों का चित्रण करता है, वह न तो पाठक के हृदय में उसी रूप में उद्भूत हो पाते हैं और न पाठक उनसे किसी प्रकार का तथ्य ग्रहण कर पाता है। ऐसी स्थिति में कविता मात्र कवि की अतिबौद्धिकता की तस्वीर बनकर ही रह जाती है[१]। अतिबौद्धिकता से कविता के सहज विकास में अवरोध आने लगता है, लेकिन इसकी अपेक्षा जिन कवियों ने कविता के दुष्कर्म को समझा है, उसे भोगा है वे तर्क और बौद्धिकता के साथ-साथ कविता को अपेक्षित ऊंचाई तक पहुंचा सके हैं। श्रीकान्त वर्मा की कविता 'मायादर्पण' एक लम्बी कविता है, इसका एक अंश मुझे कवि की बुद्धि की गहनता के विषय में अत्यधिक प्रभावित करता है। यद्यपि इसका आरम्भ महज शाब्दिक चमत्कार के साथ-साथ कौतुक-सा भान पड़ता है, लेकिन अन्त तक आते-आते कविता अपने चरम उत्कर्ष में समाप्त होती है। शुरू का 'मैं दुखी हो रहा हूं', 'मैं सुखी हो रहा हूं' जिस अर्थ-गाम्भीर्य का सूचक है, वह द्रष्टव्य है[२]। तर्क-वितर्क एवं चिन्तन-मनन की यह

---

१ '.... पीतू का मखमल-सा कत्थई, शाम ...
कविता के शब्दों, स्वरों, अर्थों से परे की
मेरी शाम।'
—'शाम'—शमशेरबहादुर सिंह

२ '... मैं दुखी चाहूं
हो रहा हूं
मैं सुखी दुःखी होकर
दुःखी सुख सुखी
हो रहा हूं ... मैं
हो रहा हूं।'
—'मायादर्पण'—श्रीकांतवर्मा
'मायादर्पण', १९६४

स्थिति तद्युत: भावना की स्थिति ही मानी जानी चाहिए,क्योंकि जहां आत्मानुभूति तीव्र होगी वहां बौद्धिकता अभिव्यक्ति को और भी सरल,सुस्पष्ट प्रतिस्थापना दे देगी । लेकिन कोरी बौद्धिकता से युक्त कविता न तो आत्मसंवेद्य होती है और न पाठक संवेद्य ही । बौद्धिकता या कुछ हद तक अतिबौद्धिकता अस्पष्ट वैचित्र्यपूर्ण प्रदर्शन के साथ-साथ हास्यास्पद स्थितियां भी खड़ी कर देता है । अर्थहीन,खोखला, सतही किस्म की कविताएं, जहां वाग्जाल मिथ्या हो, कविता नहीं कही जा सकती।

<u>प्रयोगवाद से पृथक अहंकार रूप</u>

जहां नयी कविता में कवि की आत्मानुभूति और आत्माभिव्यक्ति की बात उठती है, वहीं नयी कविता के अहंवादी होने का आरोप लगाया जाता है । लेकिन जो लोग नयी कविता को अहंवादी होने का आरोप लगाते हैं, वे कदाचित भूल जाते हैं कि नयी कविता का धरातल उन मनोवैज्ञानिक भाव-भूमियों से होकर विकसित हुआ है,जहां सबसे ज्यादा अहं को, आत्मसम्मान को ठेस लगी थी । मानव-सम्मान को अपमानित होना पड़ा था । युग-युग से संचित परम्परायें,मूल्य,व्यवस्था,क्रम-अनुक्रम में बदलाव आया। फिर से मानव के सम्मान को प्रतिष्ठापित करने में पुन: अपने अधिकारों को, अपने औचित्य को स्वीकार करने में जो प्रवृत्तियां मुख्य रही हैं, उनमें आत्मविश्वास ,आत्मानुभूति और अहं ही सर्वोपरि हैं । शायद यही बात है नयी कविता को अहंवादी होने का आरोप लगाया जाता है । यह बात तो स्वीकार करनी पड़ती है कि नयी कविता में अहंवादी प्रवृत्ति अधिक मुखरित हुई है, लेकिन इसके साथ-साथ यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि आज नयी कविता में इतनी अधिक सशक्तता,युग प्रतिनिधित्व करने की क्षमता के पीछे प्रकारान्तर से यही अहंवादी प्रवृत्ति ही रही है । न अहं जागता और न चेतना करवट लेती । यह प्रवृत्ति अहं से प्रस्फुटित हुई है । यह सम्वेदना उसके अपने व्यक्तित्व, स्वत्व आत्म से सम्बन्धित है । अनुभूति का सीधा और गहरा सम्बन्ध आत्म से है । जो चीज आंखों से बार-बार देखने पर भी अनुभूति के गहनतम रूप की अभिव्यक्ति नहीं कर पाती,वही आत्मा के संस्पर्श से अनुभूति के व्यापक रूप को उद्घाटित कर

देता है । अनुभूति की अभिव्यक्ति में जो विवशता होती है, वह तर्क-वितर्क और बुद्धि-विवेक से परे है । उसके लिए चिन्तन-मनन के साथ-साथ आत्मप्रकाश की भी आवश्यकता होती है । यही बात नये कवियों में चेतना के नये आयाम विकसित करती है ।

अहंवादिता अपने में कोई रूढ़ि या विकृति नहीं है । यह तो व्यक्ति की अन्य प्रवृत्ति की तरह ही एक प्रवृत्ति है । इसलिए इससे वैयक्तिकता और सामाजिकता का प्रश्न तो कदाचित् जोड़ा ही नहीं जा सकता । किसी व्यक्ति का सामाजिक होना और अहंवादी होना दो अलग-अलग बातें हैं[1] । अहं एक जागृति है, चेतना है, जो कवि में उत्साह,साहस के साथ-साथ स्थिति सत्य और युग-बोध को जगाता है । तभी वह आत्मविश्वास एवं साहस के साथ अपने को कवि होने का दावा कर सका है[2] । इसलिए यह स्वीकार करना पड़ेगा कि नयी कविता की अहंवादी प्रवृत्ति प्रयोगवाद की अहंवादी प्रवृत्ति से भिन्न है ।

आत्मानुभूति का वैज्ञानिक मनोविज्ञान

नया कवि अपने को दावे के साथ कवि होने का घोषणा करता है । उसकी आत्मा का साध्य कवि कर्म है । लगता है इष्ट को पा लेने पर ही वह इस तरह का दावा करता है । कुछ नया और अच्छा कर

---

१ `... समस्या अहं और समाज की नहीं है, वरन् व्यक्ति और समाज की है । सामाजिक दायित्व को पूर्णतया निभाने वाला व्यक्ति भी अहंवादी हो सकता है.... वह (अहं) अपने अस्तित्व का समर्थन है... ।`
`नयी कविता के प्रतिमान`--लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ०२२३।

२ `.... मैं कवि हूं, स्वाभिमानी,
कुछ मैं नया और अच्छा
अर्थ भरना चाहता हूं... ।`
-`नयी कविता` अंक-८, सम्पा० डा० जगदीश गुप्त
`शब्द और अर्थ के बीच` --डा० जगदीश गुप्त, पृ०८३ ।

दिखाने की उत्कट लालसा नये कवियों की आत्मा की आवाज है । यह लोलता परम्पराओं, विघटित मूल्यों और असंगतियों से नहीं चिपकना चाहता है ।उसकी आत्मा सत्य से, युग की मांग से, युग-बोध से सम्पृक्त होकर, जीवन, सौन्दर्य और समाज का साक्षात्कार करना चाहती है । ऐसा साक्षात्कार करना चाहता है, जो स्थूल तो हो ही (वस्तुवादी) साथ-ही-साथ सूक्ष्मरूप में भी उसकी आत्मा-नुभूति से जुड़ा हो । ऐसा अनुभव जो उसकी आत्मा में किसी एक क्षण में ऐसा प्रकाश, ऐसा सत्य बनकर उद्घाटित हो कि आत्मानुभूति का गहनता कवि-कर्म को सुलभ कर दे । क्योंकि अनुभव से अनुभूति कवि-कर्म के लिए हेतु है । इस हेतु का सागर आत्मा है । इसी सागर में अनुभूति की लहरें आकार,रूपादि धारण करती हैं ।[१]

अनुभूति की यह अभिव्यंजना जो पूर्णरूपेण कवि की अन्तरात्मा से सम्बद्ध है,आवश्यक नहीं अनुभूति के साथ तत्काल घटित हो, यह भी हो सकता है कि प्रभावोत्पादक विषय-वस्तु होने पर भी उसकी अभिव्यक्ति कुछ वर्षों बाद सही और सम्प्रेषणीय हो । नयी कविता इस तरह पूर्णतया आत्मा से सम्बन्धित है और आत्मा मनोविज्ञान का विषय है । इसप्रकार विज्ञान और मनोविज्ञान पर आधारित नयी कविता युग की मौलिक और सहज अभिव्यक्ति है ।

नयी कविता वैयक्तिक और सामाजिक सन्दर्भों में व्यक्ति/पारस्परिक सम्बन्धों की अनिवार्यता एवं महत्व को समझती एवं स्वीकार

---

१ ..... अनुभव से अनुभूति गहरी चीज है । कम से कम कृतिकार के लिए अनुभव तो घटित का होता है, पर अनुभूति संवेदना और कल्पना के सहारे उस सत्य को आत्मसात कर लेती है,जो वास्तव में कृतिकार के साथ घटित नहीं हुआ है ... ।'

'आधुनिक कविताएं'

' मैं क्यों लिखता हूं '-- अज्ञेय,पृ०२४ ।

करता ही है, साथ-ही-साथ आत्मा से आत्मा के उस बन्धन को भी स्वीकार करता है,जो अटूट है, सत्य है । शारीरिक आकर्षण, प्रेम से आत्मा का बन्धन बहुत ही सूक्ष्म है और उसे लाख प्रयत्न करने पर भी तोड़ा नहीं जा सकता है[1] ।

नयी कविता में मानवीय संवेदना का इसलिए (सरल) हुआ है,क्योंकि उसका यथार्थ आत्मप्रेरित है, रहस्यात्मक या अतिरंजित काल्पनिक नहीं । पूर्णतया आत्म सत्य पर आधारित होने के कारण कहीं-कहीं कवि का संवेदना, अनुभूति दुर्बोध भी हो गये हैं । क्योंकि अनुभूति के गहनतम क्षणों की अभिव्यक्ति को पकड़ने के लिए विषय के प्रेरक तत्वों को समझने की आवश्यकता होती है, और जब प्रेरक तत्व या कवि-सम्वेदना पकड़ में आ जाता है तो कवि-संवेदना सामान्यीकृत हो जाती है । और तब कविता असंवेद्य भी नहीं रह जाती है । अनुभूति की तीव्रता नये कवियों को यह सोचने के लिए बाध्य करती है कि आज के सामाजिक,सांस्कृतिक, वैयक्तिक परिवेश में उसका क्या महत्व है, क्या आवश्यकता है और कहां तक युग-बोध उसे प्रभावित कर सका है । इसलिए वह अपने को `अबोध` समझता है, हर नये दिन के साथ समझौता करता है और यह समझौता उसे परिस्थितियों से और युग से जोड़ता है । जोड़ने की इस अनुभूति में अपने को `अबोध` कहना कवि के आत्मविश्वास को ही प्रकट करता है[2] । अनुभूति और आत्मविश्वास का मिला-जुला रूप ही नयी कविता में अभिव्यक्त हुआ है ।

---

१ `... शरीर का शरीर से बन्धन

तो आखिर कब तक निभता, टूट ही जाता

पर आत्मा का आत्मा से भी एक बन्धन होता है...

कभी तोड़ा नहीं जा सकता... ।`

—`अंगाचार`-- मुनिरूपचन्द्र, पृ०१२

२ `... `हम`

एक अबोध हैं....

जिसे हवा

दिन भर भटकाती है... ।

--`अभी बिल्कुल अभी`—केदारनाथ सिंह,`हम जो सोचते हैं`,पृ०८८-८९ ।

सपाट बयानी

नयी कविता का धरातल आत्मानुभूति से अनुप्राणित है, इसलिए जब कवि किसी तीखी अनुभूति को कविता के लघु परिवेश में संचरित करता है, तो उसके कथ्य की तीव्रता और तीक्ष्णता का अर्थ लोग कवि के व्यक्तिगत आक्रोशों से लगाते हैं। परिणाम यह होता है कि कथन की सत्यता चतुर्दिक उठते शोर और विरोध में खोकर रह जाती है। राग-द्वेष से जोड़कर महत्वपूर्ण पहलू को महत्वहीन सिद्ध कर दिया जाता है। ऐसा नहीं होना चाहिए, क्योंकि आज युग जिन संक्रमण-कालीन परिस्थितियों में गुजर रहा है, वहां पुराने मूल्यों के बोझ को नहीं ढोया जा सकता है[1]। जरूरत है आज थोथी मान्यताओं, जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं के विरोध में आवाज उठाने की, सीधे प्रहार करने की, क्योंकि यदि कुछ नया लाना है, नया करना है तो उसके लिए साहस का परिचय देना होगा, सपाटबयानी का सहारा लेना होगा। और यह कहना शायद अनुचित न होगा कि नये कवियों की आत्म-चेतना कवि को आज उस स्थिति तक तैयार कर चुकी है, जहां सपाटबयानी की मांग दिखाई पड़ती है। आज परिस्थितियों के औचित्य और मांग के अनुसार कवि का उत्तरदायित्व बढ़ गया है। सामाजिक, सांस्कृतिक, वैयक्तिक दायित्वों के साथ-साथ कला के प्रति भी उसका पूरा-पूरा दायित्व है। लेकिन नयी कविता अपने इस रूप में आते-आते पुराने संस्कारों, रीतियों और रूढ़ियों को छोड़ आयी है। नये कवियों की आत्मा ऐसे ही सत्य को स्वीकार करती है, जो युग-सापेक्ष है। सत्य को उद्घाटित करने में वह तीखे प्रहार और आक्रोश की भी चिन्ता नहीं करता है। वास्तव में आज के कवि की आत्म-चेतना युग की मांग और जिम्मेदारियों के सन्दर्भ में नये चेतना के

---

१ ` ...... वरे यों गर्दन झुकाओ मत
किसी कल्पित भार को
कंधे उठाओ मत।
`झुके हुए आसमान के नीचे' -- कीर्ति चौधरी, पृ०११।

आयाम प्रस्तुत करती है,जहां कवि बिना झिझके, बिना छाव-बनाव के बेधड़क कठोर से कठोर सत्य को भी कह देने में सन्तोष पाता है । इसलिए वह 'सतह की भाषा को तोड़कर आसमान सी खुली भाषा'[1] का उपयोग करता है । व बनावटी,कृत्रिम भाषा द्वारा न वह अपनी आत्मा को ठेस पहुंचाता है और न ही युग-बोध के प्रति गैर जिम्मेदार बनना चाहता है ।

आस्था का स्वर

नयी कविता में इस दौर तक आते-आते जो विशिष्ट,पुष्ट स्वर अधिक तीव्रता से उठा है, वह स्वर है आस्था का स्वर । या यों कह दें तो अनुचित न होगा कि नयी कविता की चेतना का मुख्य स्वर आस्था का है । भटकाव,अकेलेपन,सन्दिग्धता से आस्था के स्वर तक आते-आते कवि ने बहुत कुछ झेला है, भुगता है, और इस झेलने-भुगतने के संघर्ष में उसने सत्य को पहचानने का प्रयास किया है[2] । इस पहचानने की प्रक्रिया को नयी कविता की उपलब्धि ही कह सकते हैं ।

सत्य की अनुभूति में छल-प्रपंच के दौर को कवि पार कर गया और उभरा स्वर उसकी आस्था का स्वर रहा है । नयी कविता का प्रारम्भिक स्वर अनास्था,सन्देह,निराशा और अकुलाहट व का स्वर ही रहा है।

---

१ '...मानवस्थिति को प्रचलित भाषा में और प्रचलित काव्य-व्यवस्था के भीतर व्यक्त करना असम्भव है ... इसलिए वे (कवि) सतह की भाषा को तोड़कर 'नी आसमान सी खुली हुई भाषा' की खोज करते हैं ।'
--'नयी कविता का परिप्रेक्ष्य'-- डा०परमानन्द श्रीवास्तव, पृ०१२१ ।

२ '....जो याद रहे--
वे ही तो सबसे दूर रहे ....
जिन सब ने छल-छल हाथ और झुक झुक कर पैर गहे
वे ही ब्याहु, वत्सल, स्नेही जो
सबसे दूर रहे ।'
--'आंगन के पार द्वार'-- अज्ञेय, पृ०२८ ।

लेकिन जहां व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के साथ-साथ अधिकार, विस्तार एवं गतिशीलता मिली, वहीं आशंका का स्वर आस्था का स्वर बनकर व्यापक रूप में उभरा है। जहां नयी कविता आस्था के प्रति जागरूक है, वहीं वह आस्था में प्रतिरोपित जड़ता का भी विरोध करती है। आस्था सहज रूप में नये कवियों का सम्बल है। आस्था के विषय में उसका क्षीण होता[1] स्वर सबल उठता है और वह अनिश्चयता, निराशा के बीच सत्य को पहचान लेता है। इसीलिए लगता है कि नयी कविता अपने युग के स्वर को पहचान सकी है। हां यह बात और है कि नयी कविता में यह पहचान का स्वर किस सीमा तक प्रस्फुटित हो पाया है।

भविष्य के प्रति गहरी आशा

नयी कविता में आत्म-परीक्षण की भावना भविष्य के प्रति आस्था, दृढ़ संकल्प और विश्वास से सम्बन्धित हैं। कविता के इस विकासक्रम में नये कवियों को एक गहरी आत्मोपलब्धि हुई है, क्योंकि युग-बोध के नवोन्मेषात्मक भाव-बोधों से असम्पृक्त, आत्मानुभूति के सन्दर्भ को नये कवियों को सुप्तावस्था से नवजागृति की ओर मोड़ा है। यहां भविष्य के प्रति गहरी आशा और अभिरुचि अभिव्यक्त की है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने 'काठ की घण्टियां' नामक कविता में ऐसा विश्वास प्रकट किया है कि आने वाले समय में उनकी 'आत्मा का सोया हुआ देवता' अपने 'ज्ञान चक्षु' खोल देगा और उसके 'गूंगे स्वरों' से 'कोटि-कोटि' कंठों को 'वाणी शक्ति मिल जायेगी। कोटि-कोटि कंठों को पुनः

---

१ '.... कभी लगता है खो गया हूं ...
        नींद से कुछ-कुछ समझता था कि, अपनी धुन, अपनी राय
          अपने नहीं..... ।
        'तीसरा सप्तक'-सम्पा० अज्ञेय
          'अपने नहीं'-- कुंवरनारायण, पृ०१४८ ।

खोई शक्ति प्राप्त कर लेने के पीछे नये कवियों का आत्मविश्वास एवं भविष्य के प्रति गहरी आशा ही है[1]।

ऐसा दृढ़ आत्म-विश्वास नया कविता से पूर्व अन्य किसी काव्य-धारा में नहीं दिखाई देता है। नया कविता का कवि आज परिस्थितियों को, असंगतियों को अपने अनुरूप ढालकर अधिकार के साथ घोषणा करता है कि 'हम जहां हों वहां से झिलमिलाता क्षितिज अवश्य दिखाई दे, जो कि उनका ही है[2]।' शायद ऐसी घोषणा इससे पूर्व किसी अन्य काव्य-धारा में नहीं दिखायी दी होगी। जीने के प्रति लगाव है, सम्मोहन है और उसी लगाव और सम्मोहन से उत्पन्न अधिकार भाव है। जीवन के प्रति आस्था का भाव, 'जीने के लिए कुछ शर्तें' से प्रकट होता है। इसलिए नयी कविता पर आत्महीनता का आरोप लगाना उचित नहीं है। नयी कविता में आत्मविश्लेषणात्मक भाव-बोध विकसित हुए हैं, लेकिन यह आत्महीनता आत्मा के संघर्ष से और द्वन्द्व से अभियुक्त है। वह अपनी आत्मा में संघर्षात्मक वर्जनाओं से लड़ते हुए टूट जाने को भी महत्वपूर्ण

---

१ '.... शायद कल
मेरी आत्मा का निष्प्राण कैसा
अपने बड़ा बोल दे....
कोटि-कोटि कंठों की खोई शक्ति बोल दे... ।
—'काठ की घण्टियां'-- सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ०४२८ ।

२ '... जरूरी है
हम जहां हों
वहां से दिखता रहे वह झिलमिलाता क्षितिज
जो केवल हमारा है..... ।'
'अभी बिल्कुल अभी '— केदारनाथ सिंह
'जीने के लिए कुछ शर्तें' — पृ० ७६ ।

मानता है । टूटने के बाद संघर्ष से त्राण पाना भी चाहता है, और इसके लिए प्रयत्नशील भी होता है[1] । छायावादी कवियों की तरह निराशा और पराजय को स्वीकार नहीं कर लेता ।

आत्म-विश्वास और आस्था के सहारे ही वह प्रत्येक नये दिन को अपनी अनुभूति,अपनी सम्वेदना से खोलता है । `सम्पुटित दिन के पुनरुक्ले पत्र ` को `दुरभैली पत्र` सा खोलकर मानव-सन्देश सुनना चाहता है[2] । उसकी अभिव्यक्ति में प्रत्येक क्षण को जीने का भावाकुल प्रयास है । आज के देश-काल में जीवन के मूल्य और विषयों के मापदण्ड इतनी शीघ्रता से बदल रहे हैं कि उनको अभिव्यक्ति देने के लिए कवियों के पास तीव्रानुभूति होनी चाहिए, संघर्षों एवं विरोधों के विरुद्ध युद्ध और ऊंची आवाज उठानी चाहिए । और शायद तभी भविष्य के प्रति गहरी आशा रखते हुए कवि `मेरा ही भविष्य है, फिर मैं क्यों घबराऊं ` कह सकेगा[3] ।

-0-

---

१ ` .... नहीं उस भांति मैं डूबा

बताये हाथ, लहरों से लड़ा ...

तो क्या हुआ डूबा अगर

क्या पार जाने से कम कहेगा कोई... ।`

--`नाव के पांव `-- डा० जगदीश गुप्त, `क्या करोगे` ,पृ०२८ ।

२ ` खोल दूं यह आज का दिन.... ।`

`अभी बिल्कुल अभी `--केदारनाथ सिंह ,पृ०५२-५३ ।

३ `नयी कविता` अंक -२

`दो मुक्तक` -- मीहरि, पृ०६७ ।

चतुर्थ परिच्छेद

नयी कविता की नयी समाज चेतना

द्विवेदी युगीन उपदेशात्मकता का बहिष्कार

पौराणिक कल्पना से मुक्ति

प्रगतिवादी नारेबाजी का तिरस्कार

कल्पना रहितता

छायावादी पलायन से हटकर युग-जीवन का सामना

प्रयोगवादी आत्मकेन्द्रितता का तिरस्कार

नयी कविता की सामाजिकता

प्रगतिवाद-प्रयोगवाद से हटकर नयी सामाजिकता

नयी समाज-चेतना

व्यक्ति-चेतना का विस्तार समाज-चेतना में

सामाजिक-असामाजिकता

सामाजिक अव्यवस्था के प्रति जागरूकता

व्यक्तिगत मन:स्थितियाँ और समाज

नगरीय अनुभव और तीक्ष्ण प्रतिक्रिया

व्यक्तिवादिता की परिणति सामाजिकता में ।

-o-

चतुर्थ परिच्छेद

नयी कविता की नयी समाज-चेतना

नयी कविता की सामाजिकता एवं असामाजिकता विवाद का विषय बना हुआ है । नयी कविता के पूर्व जिस प्रकार की सामाजिकता विभिन्न काव्य-विधाओं में परिलक्षित होती है, उनमें युग-समाज की अभिव्यक्ति एवं स्पन्दन हल्के और गहरे रूप में अवश्य सुनायी देता है, लेकिन नयी कविता में सामाजिकता के प्रश्न को बहुत व्यापक एवं महत्वपूर्ण दृष्टियों से उठाया गया है । व्यक्ति और समाज को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से नहीं देखा गया है, बल्कि व्यक्ति-चेतना, व्यक्ति-सम्वेदना एवं व्यक्ति-समस्याओं को समाज के परिप्रेक्ष्य में रखकर व्यक्ति-समाज की सीमा का विस्तार किया गया । नये कवियों की दृष्टि जहां व्यक्तिगत स्वतंत्रता और व्यक्तिगत मान-प्रतिष्ठा में है, वहां उसका अर्थ व्यक्ति-इकाई का समाज के छोटे रूप में देखने से है । यहां देखना यह है कि नयी कविता की समाज-चेतना किन पूर्ववर्ती वृत्तियों से बचती हुई नयी प्रकार की समाज-चेतना की ओर मुड़ती है ।

द्विवेदी युगीन उपदेशात्मकता

नयी कविता यद्यपि स्पष्टत: पूर्व युगीन काव्यधाराओं के विरोध में नहीं खड़ी हुई है, जितना कि वह उन रिक्तताओं की पूर्ति के लिए संघर्षमय स्थिति में खड़ी हुई है । युग के कठोर एवं क्षण-प्रतिक्षण परिवर्तित होते परिवेश एवं जटिल समस्याओं ने युग-जीवन को झकझोर दिया । सारी युग-चेतना को स्वयं संघर्ष करने के लिए बाध्य होना पड़ा । नियतिवाद, कर्मवाद और भाग्यवाद उसी प्रकार झूठे प्रतीत होने लगे, जिस प्रकार पुष्पों पर मोती का आभास देने वाले ओस-कण । युग की संक्रमणकालीन परिस्थितियों ने व्यक्ति को स्वयं सोचने और स्वयं तर्क-वितर्क द्वारा निर्णय लेने के लिए बाध्य किया । यद्यपि इससे पूर्व समाज-चेतना स्वतन्त्र निर्णय लेने की आदी नहीं थी तथापि परम्परा एवं रूढ़िग्रस्त युग-

चेतना सदैव मार्ग-निर्देशन के लिए दूसरों का मुख देखती आई थी । अतः ऐसे युग को, जिसमें स्वयं कोई निर्णय ले लेने की क्षमता न हो, उसे किसी नयी दिशा की ओर ले जाना सहज नहीं था, लेकिन नये कवियों ने व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की मांग के रूप में द्विवेदी युगीन उपदेशात्मकता का बहिष्कार कर दिया । प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं निर्णय लेने और अपने युग को जीने का अपना तरीका होना चाहिए (उच्छृंखलता एवं अनुशासनहीनता की दृष्टियों से नहीं) । व्यक्ति कोई पशु अथवा काठ का पुतला नहीं कि उसे दूसरों की दृष्टि एवं उपदेशों के सहारे चलने की आवश्यकता है, उसे स्वयं अपने लिए पथ खोजना है, अपनी दिशा ढूंढनी है । इस दृष्टि से नये कवियों ने द्विवेदी युगीन उपदेशात्मकता का बहिष्कार कर दिया । लेकिन उपदेशात्मकता का बहिष्कार नये प्रकार की समाज-दृष्टि के लिए ही हुआ । प्रत्येक व्यक्ति में इतना चेतना पैदा कर दी जाय कि वह अपना अच्छा बुरा तो समझ ही सके और दूसरों का भी भला-बुरा सोचने की क्षमता उसमें पैदा हो सके ।

पौराणिक कल्पनाप्रियता

नयी कविता की समाज-चेतना और पौराणिक कल्पना-प्रियता को आत्मसात् नहीं कर सकी । यथार्थ के कठोर धरातल पर वस्तु-स्थिति का सम्यक ज्ञान नये कवियों को हो गया है । पुराणों एवं धर्म-ग्रन्थों की महानता एवं एक-से-एक चमत्कारिक बातों का विश्वास, नये कवि बिना परीक्षण के नहीं स्वीकार करते । नयी कविता वैज्ञानिकता एवं आधुनिकता में विश्वास करती है, इसलिए हर बातों का परीक्षण एवं उसकी सत्यता-असत्यता पर नये कवियों की दृष्टि रहती है । हमारे धर्म-ग्रन्थ और पुराण ऐसे नहीं हैं जो काल्पनिक एवं निरर्थक बातों से ही भरे हों । आज के युग में इन तथ्यों अथवा घटनाओं का आश्रय लेकर युग को नहीं समझा जा सकता है । अतः नये कवियों ने जहां एक ओर पौराणिक कल्पना-प्रियता को छोड़ा है, वहीं आधुनिक परिवेश में पौराणिक उपमानों को स्वीकार भी किया है । इसलिए ऐसा नहीं मानना चाहिए कि नयी

कविता समस्त परम्पराओं की जड़ें उखाड़ फेंकने में ही विश्वास करती है । भारती ने जिस पथभ्रष्ट युग की प्रस्तुतीकरण के लिए `अंधायुग` लिखा है, उसके विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है -- " अंधा युग कुछ ऐसी समस्याओं को उठाता है, जो किसी भी युद्ध सभ्यता में मानवीय मनोवृत्तियों, स्थितियों, मर्यादाओं और उनके पारस्परिक संघातों से उत्पन्न बाह्य एवं आन्तरिक संकटों से सम्बद्ध होती है.... [१]"

इसके अतिरिक्त `चक्रव्यूह`, `ब्रह्मास्त्र`, `तटाक`, `वामन`, `परीक्षित` और `जनमेजय के नागों` आदि इन पौराणिक शब्दों को आधुनिक सन्दर्भ में अपनाया भी गया है । इस तरह जहां नयी कविता ने नये प्रकार की सामाजिकता के लिए पौराणिक कल्पनाप्रियता से मुक्ति ले ली, वहीं आधुनिक सन्दर्भों को सार्थकता एवं सजीवता देने के लिए पौराणिक उपमानों को अपनाया भी है ।

प्रगतिवादी नारेबाजी

छायावाद जिस अनात्मवाद, अध्यात्मवाद की ओर बढ़ रहा था, उससे न तो युग को कोई मार्ग निर्देशन मिल रहा था और न शायद ठोसरूप में इन एकान्तप्रिय कलावादी कवियों को कुछ विशेष प्राप्त ही हो पा रहा था। उस समय की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियां असामान्य थीं । समाज में निम्न कृषक, मजदूर एवं शिल्पकारों की स्थिति अच्छी नहीं थी । शोषण नीति से असफलता एवं पराजय की भावना परिव्याप्त होती जा रही थी । सारे अत्याचार समाज के निम्नमध्यवर्ग के ऊपर ही हो रहे थे । अतः सुधारवाद की मनोवृत्ति एवं विचारधारा से प्रगतिवादी काव्य-क्षेत्र में उतर आये । ऐसी अवस्था में जो चेतना काव्य में दिखाई दी, उसमें सुधारवादी भावना का पूरा जोश दिखाई दिया । युग की वास्तव

---

१ `नयी कविता`, अंक-२, सम्पा० डा० जगदीश गुप्त, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी
`अंधायुग` -- धर्मवीर भारती, निवेदन, पृ० ५८ ।

अभिव्यक्ति तो हुई,लेकिन समस्त युग की नहीं; समाज के विशेष वर्ग के रूप में, समाज-इकाई के रूप में नहीं। सुधारवादी नारेबाजी की पुनरावृत्तियों से ऊबकर नये कवियों ने समाज की व्यक्ति-इकाई की मुक्ति के लिए अपनी आवाज उठाई। प्रगतिवादी काव्य की अतिशय भावुकता, अतिशय आवेग और अतिशय नीरसता व्यापक अर्थों में समाज-चेतना को लेकर नहीं चल सकी। इसलिए नये कवि समाज को वर्गों अथवा विशिष्टता के रूप में बांट कर नहीं देखते। व्यक्ति-इकाई ही समाज का अविभाज्य अंग है।

कल्पना रहितता

नयी कविता का सर्वप्रमुख आधार यथार्थ दृष्टि है। नये कवि यह मानते हैं कि जीवन जीने के लिए है,इसलिए इसे आकाश की ओर न देखकर क्षण-प्रतिक्षण प्रभावित करने वाली कठोर भूमि की सत्यता की ओर देखते हैं। इसके साथ-ही-साथ वैज्ञानिक-दृष्टिकोण अपनाकर चलने के कारण, कल्पना,रहस्य,मान्यतायें सभी बिना परीक्षण के स्वीकार नहीं किये जा सकते हैं। इसलिए कल्पना का स्थान ठोस और यथार्थ ने ले लिया। कल्पना में पड़े हुए जीवन और यथार्थ की सत्यता को नये कवि झुठला नहीं सके, इसलिए नया कवि युग की विषमता और उसके कटु अनुभव का सीधा साक्षात्कार करता है। युग की विषमता में वे उन्मुक्त दु:स्थितियों के भय से अपने चारों ओर छायावादियों की तरह सघन कुहासा नहीं देखते बल्कि प्रतिपल उससे संघर्ष करने के लिए तैयार रहते हैं। इस प्रकार नये कवियों ने कल्पना की जड़ें ठोस यथार्थ की भूमि से उखाड़ फेंकी। और जिस समाज-चेतना को जगाने का प्रयास किया है, वह ठोस यथार्थ एवं मानवीय स्तर की वास्तविक चेतना है।

छायावादी पलायन से हटकर युग-जीवन का सामना

छायावाद के लिए यद्यपि यह स्वीकार किया जा सकता है कि छायावादी काव्य समस्त पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं से नयी प्रकार की अभिव्यंजना-शैली का प्रतिपादन करता है, लेकिन यह अभिव्यंजना-शैली नितान्त

व्यक्तिपरक, समाज चेतना से विच्छिन्न पलायनवादी अधिक थीं । छायावाद के पूर्व प्रथम विश्व-युद्ध हो चुका था । युद्ध के उपरान्त उत्पन्न होने वाली सामाजिक जटिल परिस्थितियां सामने थीं । व्यक्ति में असन्तोष तथा अन्य मनोविकार भी घर कर चुके थे । युद्ध की भयावह सम्भावना भी समाज पर अपना आतंक जमाये हुए थी, लेकिन ये कवि फिर भी समाज से कटकर आत्मकेन्द्रित हो गये । इनकी नजरें यथार्थ की कठोर धरातल पर न रहकर आकाश की ओर लग गईं । इनकी अभिव्यक्तियों में अशरीरीपन, अनात्मसात् रहस्य एवं अध्यात्म तथा कुण्ठितता अधिक दिखाई देता है । समाज से कटे हुए इन्हें अपना दुःख ही दुःख लगता है, अपनी पीड़ा ही पीड़ा । छायावादी जिस सौन्दर्य को सौन्दर्य कहते हैं, वह सौन्दर्य उन्हीं तक सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्यों को खोलता है । प्रकृति उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम है । उनकी अभिव्यक्ति में अनभिज्ञता तथा कच्चापन अधिक है, बौद्धिकता तथा परोक्षण-क्षमता कम । इस प्रकार छायावादी काव्य समाज से पलायन का काव्य है । उसके लिए समाज की अनुभूतियां, संवेदना एवं चेतना गौण है । व्यक्तिनिष्ठ समस्यायें, अनुभूतियां एवं संवेदना मुख्य । इस प्रकार समाज-विमुख काव्य पूर्णतया पलायनवादी ही माना जा सकता है । नयी कविता की चेतना समाज-चेतना का तिरस्कार करके नहीं चल सका ।

प्रयोगवादी आत्मकेन्द्रितता का तिरस्कार

छायावादी पलायन से हटकर, प्रगतिवादी अतिशय नारेबाजी तथा भावुकता से मुक्ति पाते-पाते प्रयोगवादी अपनी समस्याओं से इस-इस भांति आक्रान्त हो गये कि उनकी कविताओं में जो अभिव्यक्तियां हुईं वे समाज-चेतना से पृथक व्यक्ति-चेतना का ही प्रदर्शन करने लगीं । जहां एक ओर प्रयोगवादियों ने समाज के वर्ग-विशेष की समस्याओं से छुटकारा दिलाया, वहीं इसने व्यक्तिवादी स्वच्छन्दता का भी आवरण ओढ़ लिया । व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की बात करते-करते ये कवि शिल्प और टेकनीक के प्रति इस सीमा तक झुक गये कि तरह-तरह से अपनी अनुभूतियों एवं मनोवृत्तियों का चित्रण करने लगे । व्यक्ति की बात करते-करते प्रयोगवादी आत्मकेन्द्रित हो गये, इस आत्मकेन्द्रावस्था में वे अपने अन्दर समस्त विषमताओं के लिपट लेने के प्रयास में जिस मनोवृत्ति का अनायास हो

परिचय दे गये, वह थी अहंवादी प्रवृत्ति । प्रयोगवादी व्यक्तिवादी तो हुए ही, साथ-ही-साथ अहंवादी भी हो गये । इसी अहंवाद के वश वह अपनी रचनाओं में बड़ी-बड़ी घोषणायें करने लगे । मैं-मैं के इस शोर में समाज-चेतना का दायित्व विलुप्त हो गया । 'मैं' को तरह-तरह के विशिष्ट विशेषणों व एवं गुणों से सुसज्जित करके प्रस्तुत किया गया । इस 'मैं' की आंधी में आस्था की जड़ें हिला दी गईं, हर वस्तु में अपर्याप्तता तथा विसंगति देखी गई । युग-जीवन के प्रति यों अनास्थामय दृष्टिकोण समाज और व्यक्ति के परम्परागत मूल्यों को अस्वीकार करके चला । इसी अनास्था एवं व्यक्ति तथा अहंवादी प्रवृत्ति से आक्रान्त प्रयोगवादी अपने अन्दर निराशा, कुंठा, घुटन, वेदना का अनुभव करते हैं और शिल्प-कौशल के आग्रही होने के कारण उन्हें भिन्न-भिन्न रूपों में सजाकर अभिव्यक्त करते हैं । फ्रायड के यौन विषय विचारों से प्रभावित होने के कारण प्रयोगवादियों ने दमित यौन भावना का भी व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के नाम पर खुला प्रदर्शन किया है । इनके लिए प्रेम का अर्थ तन तक ही सीमित है । उसका कोई व्यापक एवं पवित्र अर्थ महत्व नहीं रखता । आत्मलीनता की इस स्थिति में समाज-चेतना का पक्ष शिथिल पड़ गया था । हां, यह बात और है कि प्रयोगवाद में भी जो कवि व्यक्तिवादी एवं अहंवादी प्रवृत्तियों की संकुचित सीमा से निकल कर चले हैं, उन्होंने सामाजिक क्षेत्र में भी प्रभावशाली अभिव्यक्तियां की हैं । यद्यपि इसे युग की मांग अथवा दबाव का परिणाम ही माना जायगा । लेकिन यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि प्रयोगवादी काव्य-धारा में समाज-चेतना का पक्ष अधिकतर उपेक्षित ही रहा है ।

नयी कविता की समाज-चेतना ने उपरोक्त विचारों की कमियों की पूर्ति तथा उपलब्धियों को आत्मसात् करके नयी समाज-दिशा की ओर अपनी दृष्टि फेरी है । नयी कविता की सामाजिकता व्यक्ति और समाज को लेकर चली है । व्यक्ति के व्यक्तिगत अनुभव, उसकी अन्तर्दृष्टि और उसके अधिकार जहां एक ओर व्यक्तिगत सीमा से बंधे हैं, वहीं दूसरी ओर उसका विस्तार समाज-चेतना के लिए होता है । इसलिए कहना चाहिए कि नयी कविता की व्यक्ति-चेतना समाज-चेतना की पूरक है, विरोधी नहीं ।

नयी कविता की सामाजिकता

आज नयी कविता का सबसे विवादास्पद पक्ष उसकी असामाजिकता एवं व्यक्तिगत चेतना से सम्बन्धित है। जहां आलोचकों का एक वर्ग नयी कविता को अतिवैयक्तिक एवं असामाजिक मानते हैं, वहीं दूसरा नवोग्राही, नूतनता के प्रति आस्था रखने वाला प्रबुद्ध वर्ग यह मानकर चलता है कि नयी कविता की भाव-भूमि व्यक्तिगत और सामाजिक भाव-बोधों के बीच विकसित एवं समृद्ध हुई है। यद्यपि नयी कविता की पृष्ठभूमि में दो दो भीषण विश्व-युद्धों के व्यापक विघातक माध्यम रहे हैं, भारतीय साहित्यिक-परिवेश में बहुत कुछ उसका प्रभाव प्रकारान्तर से ही आया और बहुत कुछ आरोपित भी। या यों कहें कि विश्व-युद्धों के घटित परिणामों का भारतीय साहित्य पर यद्यपि सीधा प्रभाव नहीं पड़ा, फिर भी उनके विघातक परिणामों की दुष्छाया से भारतीय-परिवेश बच नहीं सका और इसी सन्दर्भ में नयी कविता के नाम से जो कुछ लिखा गया वह न तो पूर्णतया व्यक्तिनिष्ठ ही कहा जा सकता है और न ही पूरी तौर से समष्टिनिष्ठ। क्योंकि नयी कविता जो आज व्यक्तिगत समस्यायें ही उद्घाटित नहीं करतीं, बल्कि विश्व में होने वाली प्रिय-अप्रिय घटनायें भी उद्घाटित करती हैं। समाज-चेतना का सार्वदेशिक विस्तार हो जाने के कारण न तो वह केवल व्यष्टिनिष्ठ होकर रह गया है और न ही समष्टिनिष्ठ, बल्कि वह दोनों पक्षों को साथ लेकर चला है। अनास्था और निराशा के बीच विभिन्न पराजित मनःस्थितियों का चित्रण वर्तमान के प्रति उदासीनता और भविष्य के प्रति आस्था का स्वर स्फुटित हुआ[१]। यद्यपि अधिकांशतः व्यक्तिगत भाव-बोधों को ही अधिक उन्मेष प्राप्त हुआ है,

---

१ ... शायद अब
टूटी देहरी पर चढ़कर
फिर मेरा खोया प्यार
वापस लौट आये।....
-- काठ की घण्टियाँ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
काठ की घण्टियाँ, पृ० १३०-१३४।

तथापि उस व्यक्तिगत भावना के पीछे जो व्यापक सामूहिक चेतना छिपी है, उसका बहुत ही सीधा और स्पष्ट प्रयास नये मानव की प्रतिष्ठा से सम्बन्धित है । `झरोखे में बैठा उदास कबूतर` नामक कविता में मुनिचन्द्र ने ऐसे ही भावों का निरूपण किया है, जहां आदमी अपना आदमियत, अपनी सीमा, अपना कर्तव्य भूल गया है[१] ।

[illegible] प्रगतिवाद,प्रयोगवाद से हटकर नयी सामाजिकता

वास्तव में आज सामाजिक क्रम-अनुक्रम एवं व्यवस्था इस सीमा तक अव्यवस्थित एवं पथभ्रमित हो गई है कि व्यक्ति,व्यक्ति का शोषक बन बैठा है । सामान्य मानवोचित व्यवहारों एवं कर्तव्यों के पथ से हटकर स्वार्थ,ईर्ष्या एवं अहंकार के मार्ग को प्रशस्त करने में जुट गया है । यद्यपि प्रकारान्तर से प्रगतिवादी काव्य-धारा का वस्तुत: यही विषय-वस्तु रही है, तथापि उस समय की परिस्थितियां सुधारवादी आन्दोलन की अपेक्षा चाहती थीं । प्रयोगवाद में सुधारवादी विचारधारा का विस्तार शिल्प और टेकनीक के रूप में प्रस्तुत हुआ । ऐसा प्रयोग मनमाने ढंग से प्रस्तुत हुआ कि तंत्र-कौशल की आड़ में कविता नितान्त व्यक्तिवादी और कुछ हद तक अहंवादी भी होती गई ।यद्यपि प्रयोगवाद के प्रतिनिधि कवि एवं कुछ मुख्य कवियों ने कविता को किसी वाद से सम्बद्ध न मानकर प्रयोग का अर्थ कविता को प्रयोगशीलता से लगाया । इन्हीं सब परिस्थितियों की अभिव्यक्ति एवं प्रस्तुति नयी कविता में आकर हुई । प्रयोगवाद की क्रान्तिकारी चेतना नयी कविता में बहुत अंशों तक अपने पैर जमाने के प्रयास में संलग्न रही, लेकिन नयी कविता न तो छायावाद,प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का अनुकूल विकसित विकास है और इस विकास से हटकर कुछ नया करने और करके दिखाने के पथ में अग्रसारित है । अत: जहां प्रयोगवाद नितान्त व्यक्तिगत अहंवादी

---

१ .... झरोखे में बैठा उदास कबूतर....
आधा पर्व मुनिचन्द्र, पृ०-८ ।

चेतना का शिकार हुआ, कुण्ठा दम्भ, अहंकार वस्तु-जगत् के प्रति उदासीनता और पलायनवादी प्रवृत्ति के मध्य डूबता उतराता सा रहा है, वहां अनिश्चय की स्थिति[1] नयी कविता में कुछ अंशों तक स्थिरता एवं निश्चयता की स्थिति में आ गयी है ।

जहां प्रयोगवादी समष्टिगत चेतना से विहीन व्यष्टिगत अहं में ही लीन एकाकीपन के गीत गाते रहे, वहां यह जरूरी है कि समष्टिगत चेतना अछूती सी रह गयी होगी और जब नये कवियों ने व्यक्ति और समाज के मध्य तादात्म्य स्थापित करना चाहा तब संघर्ष की स्थिति अवश्य उत्पन्न होगी और टकराहट अवश्य होगी । नयी कविता में व्यक्ति और समाज के बीच जो चेतना प्रस्फुटित हुई, उसमें मिश्रित भावना समाज और व्यक्ति दोनों को लेकर विकसित होना चाहती है । चूंकि नयी कविता का सम्बन्ध किसी भी वाद, प्रतिष्ठित सिद्धान्त या परम्परा से नहीं सम्बन्धित है, इसलिए नये कवि व्यक्ति और समाज के बीच उन विशिष्ट सम्बन्धों की परिकल्पना करते हैं, जिसमें व्यक्ति और समाज की चेतना साकार हो जाये[2] ।

१… 'मैं नहीं हूं मंत्रद्रष्टा
पर खुली संवेदना से
दिशाओं को छूकर
पहचान लेता हूं
कहीं—
वह लाल पत्तों के तले
सोया हुआ ग्रामिकुल,
जिसपर
हर नया इतिहास का दिन
जन्म लेता है–।'

— अभी बिल्कुल अभी — केदारनाथ सिंह
'मैं नहीं हूं मंत्रद्रष्टा' — पृ० ६२

२… आज कविता व्यक्ति-व्यक्ति का लगाव है उसका दौर्बल्य स्वीकारने को तैयार नहीं वह तो उन शब्दों-अर्थों की खोज में है जो व्यक्ति को नये सामाजिक दायित्व दे । … वह आंशिक आधुनिकता की प्रतीति के नाम पर करोड़-करोड़ लोगों से उनकी स्थितियों-पीड़ाओं से कटने को तैयार नहीं··। …
— नयी कविता, अंक ८ डॉ० जगदीश गुप्त, विजय देव नारायण साही
'विपिन विपिन की कविता', पृ० २८४

नयी कविता का स्वर अहंवादी है और इस अहं का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों और स्थितियों तथा अस्तित्वों के प्रति पूर्ण तथा जागरूक है और उसकी जागरूकता सामाजिक सन्दर्भ में विस्तार पाती है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की चेतना सामाजिक-चेतना की इकाई के रूप में स्फुरित होती है। समाज से पृथक् व्यक्ति की चेतना का कोई अस्तित्व नहीं और उसका कोई नियति नहीं। जहां एक ओर व्यक्ति के सामाजिक उत्तरदायित्व हैं, वहीं उसकी इससे हटकर कुछ अपनी पृथक् वैयक्तिक सत्य की अनुभूतियां भी हैं और जब व्यक्ति अपने वैयक्तिक-सत्य की चेतना के प्रवाह में उजागर करता है तो वह सामाजिक दायित्वों के सन्दर्भ में आ जुड़ता है। अत: वैयक्तिक चेतना और अहं में सामाजिक चेतना-विस्तार और विकास की स्थितियों को प्राप्त होती है[1]।

समय-समय पर आलोचकों ने नयी कविता पर यह आरोप लगाया है कि नयी कविता नितान्त व्यक्तिगत-चेतना की अभिव्यक्ति है, समष्टिगत चेतना का सन्दर्भ नयी कविता से विच्छिन्न है। इसी सन्दर्भ में जब नये कवि ने कभी भी सामाजिक-व्यवस्था के बेढंगेपन, पुरातनपंथी या आडम्बर के प्रति स्वस्थ, स्पष्ट और औचित्यपूर्ण विस्तृत विचार प्रकट किये वहीं, भावों की पकड़ की ओर, उसके सत्य की ओर न जाकर, नयी कविता को असामाजिकता का जामा पहना दिया।

१-- 'मानव जीवन के तत्वों में जहां एक ओर सामाजिक अनिवार्यताएं हैं तो दूसरी ओर व्यक्तिगत और वैयक्तिक सत्य की अक्षुण्ण सीमायें भी हैं। कोई सामाजिक दायित्व बिना इस अक्षुण्ण व्यक्तिगत आत्मसत्य के पूर्ण नहीं हो सकता। यदि सामाजिक सत्य जीवन का एक महत्वपूर्ण अंश है, तो व्यक्ति सत्य अथवा व्यक्तित्व उस महत्वपूर्ण अंश का पूरक है....'

--'नयी कविता के प्रतिमान' -- लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ०२२५।

नया समाज-चेतना

आज का युग विभिन्न मन:स्थितियों और परिस्थितियों के दौर से गुजरने के बाद इस स्थिति में आ गया है कि चेतना का स्वरूप तमाम थोथी मान्यताओं और प्रतिमानों के विरुद्ध सशक्त चुनौती दे सके। आज के युग में जातीयता, साम्प्रदायिकता, गुटवादिता और यहां तक कि सामाजिकता के समस्त अर्थ नये अर्थों में प्रवेश कर चुके हैं। सम-सामयिक परिस्थितियों के फलस्वरूप आज पुरातन सभी मान्यतायें खोखली सिद्ध हो गयी हैं। गति की तीव्रता में पुराने प्रतिमान बेमानी और निरर्थक-से लगने लगते हैं। ऐसी परिस्थितियों में हाथ पर हाथ रखकर बैठने की फुर्सत कहां ? चेतना का विस्तार तो नयी कल्पना, नयी शक्ति और नये सन्दर्भों से जुड़ने के लिए प्रयत्नशील है। ऐसी स्थिति में वैयक्तिक अनुभूतियों पर सामाजिक चेतनानुभूति की छाप स्पष्ट लक्षित होती है। सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह का स्वर है और उस सत्य तक पहुंचने का प्रयास है जो समस्त सत्यों से होता हुआ पूर्ण सत्य तक पहुंचाने में सहायक हो। इन पहलुओं से गुजरते हुए कवि को अपनी बात की सार्थकता और भावों की गहनता के लिए संघर्ष रत होना पड़ता है। यहीं पर कुछ वरिष्ठ आलोचकगण नयी कविता पर यह आरोप लगाते हैं कि नयी कविता का स्वर नितान्त विद्रोही और व्यक्ति-चेतना का स्वर है। कदाचित् विज्ञ आलोचक ये भूल जाते हैं कि संघर्ष द्वारा ही किसी पूर्णता तक पहुंचा जा सकता है। यह बात और है कि जिस बात के लिए द्वन्द्वात्मक स्थितियों से गुजरना पड़ रहा है, वे अपने युग के यथार्थ से किस हद तक निष्पक्ष और सीधे रूप से सम्बन्धित हैं[1]। व्यक्ति और समाज के संघर्ष की चर्चा करते हुए

---

१. "प्रत्येक सामाजिक सत्य वैयक्तिक सत्य से प्रभावित है। वैयक्तिक अनुभूति पर सामाजिक छाप न होकर सामाजिक प्रतिमानों पर वैयक्तिक छाप नये युग-सत्य के रूप में विकसित हो रही है। इसी अर्थ में आज की वैयक्तिक निष्ठा उन समस्त सामाजिक प्रतिमानों के प्रति विद्रोह करती है जो व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता और उसके व्यक्तित्व की स्वाभाविक अभिव्यक्ति में बाधा प्रस्तुत करती है।"

—'नयी कविता के प्रतिमान' — लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ६१

(निष्कर्ष)

यदि यह कहा जाय कि वर्तमान युग व्यक्ति और समाज के संघर्ष का युग है,तो कोई अत्युक्ति नहीं है।

नयी कविता के विषय में उपरोक्त विचार पूर्णतया लागू होते हैं । आज नयी कविता के प्रति अनेकों आरोपों का प्रहार हो रहा है, जब कि नयी कविता अपने विकास के चरण में है । यदि नयी कविता के प्रथम प्रकाशन से इसका समय देखा जाय तो यह १५-१६ वर्षों की लघु आयु तक ही पहुंच पायी है । क्या इसमें इतनी प्रौढ़ता या उत्कृष्टता कहां परिलक्षित हो सकती है ? नयी कविता की सामाजिकता के विषय में बार-बार प्रश्नचिन्ह लगाये जाते रहे हैं । जहां तक नयी कविता में समष्टिगत चेतना के अभाव की बात उठायी जाती है, वहां यह बात दावे के साथ कही जा सकती है कि नयी कविता में जहां एक वर्ग व्यष्टिगत चेतना में लिप्त हो कवि-कर्म में संलग्न है तो दूसरा प्रबुद्ध वर्ग सामाजिक पक्ष की अनिवार्यता को स्वीकार करके चलता है । तभी वह व्यक्तिवादी सुख-दु:ख की भावना में समाज के दु:ख-दर्द की कराह को सुन पाता है[2] । बाह्यरूपसे देखने पर हो सकता कि कविता रूप व्यष्टिगत चेतना का स्वरूप धारण किए हुए हो,

---

१ "....... प्रत्येक मोड़ संक्रान्ति युग होता है जिसमें पुराने-नये का संघर्ष अनिवार्य हो उठता है ।.... पुरानी आस्था, पुरानी मर्यादा और पुराना विश्वास, नयी आस्था, नयी मर्यादा और नये विश्वास को जन्म देता है... ।"

" नयी कविता" अंक-२, सम्पा० डा० जगदीश गुप्त, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी
"नयी कविता का सामाजिक परिवेश", पृ० १२ ।

२ "... घर दो
जिससे दुनिया कांप था जाये, था जो बिलकुल
लावारिस, बेघर, बेघर हो, उसको घर दो .... ।"
--"नयी कविता" अंक -२,सम्पा०डा० जगदीश गुप्त,डा०रामस्वरूप चतुर्वेदी
"दो मुक्तक", - मीनाक्षी,पृ०१६-१७

लेकिन व्यष्टिगत चेतना का विस्तार समष्टिगत चेतना में हुआ है[1]। इस प्रकार के मिले-जुले भावों की पृष्ठभूमि पर नयी कविता जिस रूप में सामने आती है, उसे न तो पूर्णतया व्यष्टिनिष्ठ चेतना का परिणाम माना जा सकता है और न पूर्णतया समष्टिगत चेतना का ही । इसके स्थान पर नयी कविता व्यष्टिगत और समष्टिगत विचारधारा को आत्मसात् किए हुए है । कुछ कवियों की विचारधारा समष्टिगत चेतना के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द करती है । कुछ कवियों का स्वर व्यष्टिगत चेतना के रूप में प्रस्फुटित होता हुआ समष्टि की चेतना में सार्थकता पाता है । इससे पूर्व भी छायावादी युग में जहां 'निराला' और 'पन्त' में सामाजिक-चेतना विस्तार पा रही थी, वहीं 'बच्चन' और 'नरेन्द्र शर्मा' एकाकीपन अवसाद में घिरे अवसाद के गीत गा रहे थे, अतः यह बात तो बहुत ही सहजरूप में स्वीकार की जा सकती है कि एक ही युग में दो भिन्न प्रवृत्तियाँ एक साथ चल सकती हैं, जब कि दोनों का उद्देश्य एक-दूसरे को विस्तार देना हो, एक-दूसरे में समाहित हो जाना हो ।

<u>व्यक्ति-चेतना का विस्तार समाज-चेतना में</u>

प्रयोगवाद के 'शलाका पुरुष'[2] अज्ञेय लगता है आज भी प्राय: एकाकीपन के सम्मोह से टिके हुए हैं । सामाजिक-चेतना से पृथक्

१-"समाज के प्रत्येक सदस्य की छोटी-से-छोटी चेतन-क्रिया किसी-न-किसी अंश में सामाजिक होती है, फिर कविता तो समाज के सबसे अधिक संवेदनशील व्यक्ति की चेतन-क्रिया है । उसकी सामाजिकता असंदिग्ध है..."

'तीसरा सप्तक' सम्पा०-अज्ञेय, वक्तव्य : केदारनाथ सिंह, पृ० ११६-११७।

२ डा० जगदीश गुप्त ने अज्ञेय के विषय में कहा है --

'....मैं उन्हें निस्संकोच नयी कविता का शलाका पुरुष कह सकता हूं ... ।

'नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ' -- डा० जगदीश गुप्त

'नये कवि का व्यक्तित्व और अज्ञेय जी', पृ० १५३ ।

उनका रचनाओं में आज भी तिक्तता,आक्रोश,व्याकुलता,अवसाद,कुंठा आदि बार-बार ध्यानाकर्षित करते हैं । लेकिन नये कवियों के अन्तर्मन में बैठकर देखें तो कवि की अनुभूति समाज की अव्यवस्था,रूढ़िग्रस्त परम्पराओं और खण्डित जीवन-मूल्यों के विरोध में तीखी अभिव्यक्ति है । पुराने मानदण्डों के प्रति निरर्थकता का भाव है और उस सत्य तक पहुंचने का प्रयास है,जो खण्डित न हो, जिसकी अनिवार्यता युग-सापेक्ष हो ।

बदलते युग की पृष्ठभूमि में कवि अपने में परिवर्तन के लक्षण देखता है । अत: समाज को अपने में और अपने को समाज में विलीन कर देना चाहता है । उसकी चेतना का विस्तार सामूहिक चेतना में विस्तार पाता है[१]। जहां एक ओर वह अपने को नितान्त एकाकी और मामूली समझता है, रात के चुप सन्नाटे में वह समझता है कि उसकी नियति क्या है ? उसकी सीमायें क्या हैं ? लेकिन शन:-शनै: उसकी चेतना उस तत्व को पहचान लेती है,जिसमें उसकी मामूलियत और एकाकीपन का दायरा इतना फैलता जाता है कि वह उसमें (एकाकीपन की मामूलियत)से निकल कर देश के रक्षकों की जिंदगी जीता है, इन सबों में अपने को गिनता है[२] । अज्ञेय की `आंगन के पार द्वार` तथा बाद की उनकी अन्य रचनायें

१...`यह समर्पित एकान्त
सब का धर्म
सब का कर्म...
मैंने इसे निर्वासित ही
स्वीकारा प्रभु..।`
—`मेरा समर्पित एकान्त`— नरेश मेहता, पृ०२४ ।

२...`मैं उन सब की जिंदगी जीता हूं
जिन्होंने दुश्मनों के दाँत तोड़े
जिन्होंने बलवार जिनका गिराये.... ।`
`कितनी नावों में कितनी बार`— अज्ञेय
`अंधकार में जागने वाले`,पृ०४१ ।

नयी कविता के ही अधिक निकट हैं। (वैसे डा० जगदीश गुप्त ने उन्हें नयी कविता का `शलाका पुरुष` माना ही है।)

कवि की चेतना का प्रवाह धीरे-धीरे उन सभी कामगरों को अपने में समेटता चलता है, जिस विशाल जनसमूह में कवि का भावुकियत और एकाकीपन समाहित हो जाता है। उसका सम्बन्ध, उसका दर्द समाज के प्रत्येक वर्ग के सदस्यों से सम्बद्ध होता जाता है। चाहे वह कलम घिसने वाला साधारण बाबू हो, तरकारी बेचने वाला निर्धन हो, राजगीर हो, मजदूर हो, डाक्टर हो या किसी भी अच्छे-बुरे सन्दर्भों से जुड़ा व्यक्ति हो, सब को जोड़ने वाला अकेलेपन में व्याप्त स्पन्दन है, जो एक डोर की भांति सबों के व्यक्तित्वों का गठबन्धन किए हुए है[1]।

जहां कवि की चेतना व्यष्टिगत भाव-भूमि से विकसित होती हुई समष्टिगत चेतना में समाहित हो जाये, वहां यह दोष लगाना कि नयी कविता का स्वर असामाजिक है न तो औचित्यपूर्ण ही है और न ही न्यायसंगत। हां, यह बात और है कि कभी व्यष्टिगत चेतना अधिक अपनापे के साथ उभरी है तो कभी समष्टिगत चेतना साथ सम्भाले हुए।

सामाजिक-असामाजिकता

आज भी आलोचक तथा पारिष्ठविज्ञ जन नयी कविता में सामाजिकता और असामाजिकता की ~~सामाजिक-परिस्थिति ने ही कवि~~

---

1 `.... जब कि अकेलेपन में
एक व्याप्त भावुकीपन का स्पंदन है
और वह व्याप्त भावुकीपन एक डोर है
जिसमें हम सब
हर अकेली रात के अँधेरे में
एक सम्बन्ध और सामर्थ्य और गौरव की कड़ी में बंधे हैं—
हम, हम, हम, हम भारतवासी ?`
—`कितनी नावों में कितनी बार`—अज्ञेय, अंधकार में जागने वाले`, पृ०४५

पचड़ा उठाते हैं, वे कदाचित् भूल जाते हैं कि आज का सामाजिक परिस्थिति ने ही कवि को सबसे ज्यादा प्रभावित किया है । समाज का संवेदना ने ही कवि को कुंठा, पीड़ा, अवसाद और त्रास की तिक्त स्थितियों से अवगत कराया है । साँचे में ढली समाज की अव्यवस्था , उसका ढीला संचालन और उसका पुरातन सिद्धान्तों के प्रति विश्वास ही आज व्यक्ति और समाज के बीच द्वन्द्वात्मक स्थितियों को जन्म देती है और जब व्यक्ति-समाज के साथ तालमेल बैठाने के प्रयत्न में निरर्थक साबित होता है तो वहां उसका चेतना में विद्रोह, आक्रोश विकलता और व्यंग्य-विद्रूप के स्वर फूटने लगते हैं । ऐसी ही विषम स्थिति में गण्यमान्य आलोचक नयी कविता पर यह आक्षेप लगाते हैं कि नयी कविता की प्रवृत्ति बहुत कुछ पलायनवादी है । लेकिन यदि जरा गहन रूप में कवि के उस अन्तर्मन तक पहुंचने का प्रयास करें तो हम स्पष्टतया यह देख सकते हैं कि ये सारी विषम संघर्षमय, आवेशमय एवं विशृंखल स्थितियां सामाजिक सम्वेदना के फलस्वरूप उपजी हैं । क्योंकि समाज आज जिस स्थिति में है, उससे न तो व्यक्ति उदासीनता का रवैया ही अपना सकता है और न ही पूरी तरह सन्तुष्ट ही हो सकता है । फलस्वरूप जहां विषमता होगी, वहां संघर्ष भी होगा ही । इसलिए आज नयी कविता में जो संघर्ष, जो कुंठा, आशा-निराशा का रूप मिलता है वह व्यक्ति-जन्य कम सामाजिक ही अधिक माना जायगा[1] ।

----

१ "..... आज की परिस्थितियों ने कवि को संवेदित किया है वह उस सर्वग्राही जड़ता और कुंठा का अनुभव अपने जीवन में कर रहा है ..... आज के कवि का संघर्ष, उसकी आशा-निराशा जन्य कुंठायें व्यक्तिगत से अधिक सामाजिक हैं.... ।"

—'नयी कविता' अंक-२, सम्पा० डा० जगदीश गुप्त, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी 'नयी कविता का सामाजिक परिवेश', पृ०१६ ।

सामाजिक अव्यवस्था के प्रति जागरूकता

अपने चारों ओर के वातावरण से कवि प्रभावित होता है । सभी चल-अचल वस्तुओं से अपने को जोड़ता है, चाहे वह नितान्त मामूली लगने वाला लकड़ी का टुकड़ा हो, जूते में अटका हुआ पैर हो, मेज,कुर्सी और चाहे कुछ भी हो । समाज में व्याप्त दुर्बल-शक्तिशाली,छोटे-बड़े के बीच जो विषम खाई बन गई है, उसका उपहास करते हुए साहस का परिचय देता है । विपिन कुमार अग्रवाल की कविता `जब हवा चली` में जिस प्रतीकात्मक रूप में दुर्बल और शक्तिशाली का वैषम्य दिखाया है, वह वास्तव में द्रष्टव्य है[१] । समाज में सदैव शक्तिशालियों ने दुर्बल को सताया है । इस सत्यता को कवि ने प्रतीक रूप में `हरी घास` और बलिष्ठ भुजाओं वाले वृक्ष से साकार किया है । जहां समाज में फैली हुई विषमताओं के प्रति कवि का आक्रोश व्यक्त हुआ है, वहीं मंत्र मुग्ध करने वाले शब्द-चित्र की भी संयोजना कवि ने की है । अतः कवि की चेतना किसी-न-किसी रूप में सामाजिक अव्यवस्था के प्रति ब जागरूक है ।

कभी कवि की भाषा संकेतों को माध्यम बनाती है (विपिन अग्रवाल की कविता की तरह) और कभी सीधे-सपाट बयानों पर ही उतर आती है । आज समाज का संचालन और उसकी व्यवस्था पंगु हो गई है,क्योंकि समाज में व्याप्त कुंठा,अनास्था,निराशा और अवसाद के परिणामस्वरूप हम बेईमानी, घूसखोरी, अनैतिकता,चोरबाजारी और अकर्मण्यता की ओर बढ़ रहे हैं एवं हम सब के

---

१ `जब हवा चली
हरी घास ने सिर उठा देखा
एक पेड़ बलिष्ठ भुजाओं में
अपना सिर उठाये खड़ा है.... ।`
--`नयी कविता अंक तीन् -सम्पा० डा० जगदीश गुप्त,डा०रामस्वरूप चतुर्वेदी
`जब हवा चली`-- विपिन अग्रवाल , पृ०८१

द्वारा मनुष्य-मनुष्य के बीच विषम खाई खोदता जा रहा है । उन्हीं सब पिछड़े दंशों से दंशित व्यक्ति समाज के प्रति,समाज के ठेकेदारों के प्रति कटूक्ति कहने से भी नहीं चूकता है[1] ।

जब कवि की चेतना खुलकर अभिव्यक्ति पाना चाहती है, तभी आलोचक वर्ग उसकी चेतना का वर्गीकरण करने लगते हैं । क्या यह सत्य नहीं कि आज शासन की व्यवस्था ऐसे लोगों के हाथ में है,जिससे समाज होनिया देश भी पतन की ओर जा रहा है । यदि `सरकण्डे की गाड़ी में मेढक जुते हैं`, `मच्छर शहनाइयां बजा रहे हैं`, `लाल चींटे सवार हैं` ऐसा कवि को आभास होता है तो कोई अनुचित बात नहीं है । हर संवेदनशील व्यक्ति इन विसंगतियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है । जब अज्ञेय ने `नगर और डाबर` तथा `हरा भरा है देश` जैसी कविताएं लिखी थीं,उसके पीछे भी यही भावना थी । तभी शायद उन्होंने कटाक्ष करते हुए कहा था कि चिन्तना के कछारों को हमने समझा नहीं,क्योंकि हम संस्कारों की अंधी पट्टियां बांधे हुए थे, जिसके कारण हमें ये असंगतियां दिखाई नहीं देतीं[2] । नयी कविता से पूर्व ही सामाजिक अव्यवस्था के प्रति जागरूकता हमें कुछ भिन्न रूप में प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद में भी दिखाई देती है । आज हमें `रंगीन पट्टियों` के विरुद्ध आवाज उठानी है, स्वस्थ एवं सुदृढ़ चेतना का संचार करना है, तभी हम समाज के प्रति जागरूकता का परिचय दे सकेंगे ।

---

१ `एक सरकंडे की गाड़ी है
जिसमें मेढक जुते हुए हैं ....
इन सरकंडे की पोल में....`
—`काठ की घण्टियां`— सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
`सरकण्डे की गाड़ी`,पृ०३६१ ।

२ `जिंदगी हर मोड़ पर करती रही हमको इशारे
जिन्हें हमने देखा नहीं.... ।`
`अरी ओ करुणा प्रभामय`— अज्ञेय
`इशारे जिंदगी के`,पृ०३२

व्यक्तिगत मन:स्थितियां और समाज

अनिश्चयता,सन्दिग्धता और व्याकुलता की स्थितियों से साक्षात्कार हो जाने पर कवि अपने व्यक्तित्व को बाह्य सन्दर्भों से असम्पृक्त करके विपन्नावस्था में उस सत्य का अन्वेषण करता है, जो खण्डित है,अपूर्ण है, तदनुसार उसकी चेतना का विस्तार उस सीमा तक फैलता जाता है जहां पूर्ण सत्य से साक्षात्कार होता है । ऐसी स्थिति से होता हुआ उसका सत्य समस्त सामूहिक चेतना का सत्य बन जाता है[1]।

जब-जब चेतना का प्रवाह व्यष्टिगत चेतना से प्लावित हुआ है, तब-तब कवि ने अपने अन्तर्मन में झांकने का प्रयास किया है, अपनी शक्ति को उजागर किया है और यहां तक कि कभी-कभी चुनौती के स्वर में भी फूटा है । लेकिन रचना-प्रक्रिया में बार-बार ऐसी स्थितियों के उभरने का क्या कारण है? क्यों कवि सभी सन्दर्भों से विलग होकर एकान्तप्रिय हो जाता है, उसकी अनुभूति की तीव्रता तो तब और भी स्पष्ट होती जाती है,जब वह एक-एक क्षण के भी छोटे-से-छोटे अंश की अनुभूति पा लेना चाहता है[2]।द्वारा

---

१ '.... इसी से आज के इस जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति ही आज के कवि की प्रधान और सच्ची अभिव्यक्ति है... यह अभिव्यक्ति व्यक्तिगत होकर भी समष्टि से संश्लिष्ट हो सकती है और समष्टिगत होकर भी व्यक्ति की अनुभूत हो सकती है .... ।'

-- 'तीसरा सप्तक' --सम्पा० अज्ञेय

'आत्मनिवेदन' -- प्रयागनारायण त्रिपाठी, पृ०५-६

२ '...चाहता हूं पा सकूं

हर क्षण की
नहीं
क्षण के भी विभाजित
मात्रा उसके अंश की अनुभूति
जिसमें अनायास पार जीवन की--
अचानक मौत की काली गुफा में घुस जाती है -- ।'

-- शब्दांश -- डा० जगदीश गुप्त

'एक आत्मकथा का अनुभूति',पृ०१५ ।

बाह्य और भौतिक परिवेश उसके विरुद्ध षड्यन्त्र का जाल बिछा देता है, उसका अन्तरात्मा से बारबार प्रश्न करती है, कि उसकी सत्ता क्या है, उसकी स्थिति क्या है, और वह उस निष्कर्ष तक पहुंचना चाहता है-- जहां वह समझ सके कि वह क्या है[1]। सामाजिक कुंठा-त्रास, विघटन, व्याकुलता आदि से आविर्भूत एवं संवेदित कवि की चेतना अपने अन्तःकरण में हलचल पैदा करना चाहती है, वह तूफान का आह्वान करती है, और उस तूफान में उसके चारों ओर जो कुछ भी हो वह सब टूट-टूट कर बिखर जाये, उस टूटन में पीड़ा में वह अपने साथ समस्त चेतना का साक्षात्कार करे[2]। ऐसी स्थिति में चाहे वह सब परिस्थिति से कट-कट कर रात में मकान के जलने की अनुभूति करे, अथवा प्रणय या विरह के गीत में तल्लीन हो जाये, लेकिन देखना है कि ये परिस्थितियां उपजती कहां से हैं ? इसप्रकार की पीड़ा, अवसाद, विघटन, आक्रोश, तिक्तता, अकेलापन, प्रणयात्मक विचारों के उद्बोधन में कौन-सी वस्तु संवेदन का कार्य करती है? क्या इन सभी भाव-बोधों के पीछे व्यष्टिगत चेतना ही सब कुछ है ? अथवा समष्टिगत अवरुद्ध कुंठित व्यवस्था का परिणाम ही व्यष्टिगत चेतना की भाव-भूमि है । युगों से संचित मानव-मूल्यों का अर्थ नये सन्दर्भ में बदल गया है, आज जीवन-व्यवस्था उतनी सहज नहीं रही, जितनी पहले थी, समय की मांग के साथ भावों के उस तीव्र प्रवाह की आवश्यकता है, जिसमें कवि थोड़े में अपने को ~~उस तीव्र प्रवाह को~~

१-"कैसे मैं नहीं हूं कोई
तुम भी कोई नहीं हो ।
या हम सत्ता हैं अपने निषेध की
....
या केवल व्यथा मात्र, अन्तर्निहित, आत्मलीन .... ।"
--"शब्दंश" -- डा० जगदीश गुप्त, "आत्मनिषेध", पृ० २८
,, ,, "तूफान चाहता है", पृ० ४१ ।

अपने-आपको अभिव्यक्त कर सके, इस अभिव्यक्ति में कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अनुभूति धुंधली हो जाती है और कविता का बाह्य रूपाकार झूठा प्रतीत होने लगता है।[1] ऐसी स्थिति तभी उत्पन्न होती है जब व्यक्ति और समाज का द्वन्द्व बढ़ता जाता है, यद्यपि आज का युग विज्ञान का युग है, तर्क-वितर्क का युग है, लेकिन कविता विज्ञान से भी आगे की अवस्था है, क्योंकि विज्ञान के नियम गणित के सदृश हैं। उनका एक परम सत्य है और उस सत्य से साक्षात्कार हो जाने पर विज्ञान भी रूढ़िग्रस्त होने लगता है, लेकिन कविता तो युग-बोध का वह यथार्थ है जो सत्य के बाद सत्य की खोज में सदा अन्वेषण रहता है। कविता न तो दर्शन है न तत्ववाद ही, उसका सीधा सम्बन्ध व्यक्ति से है, समाज से है और यथार्थ युग-बोध से है। अतः नयी कविता को केवल ऊपरी तौर से देखकर ही यह आक्षेप कदापि नहीं लगाया जाना चाहिए कि वह असामाजिक भाव-बोध का परिवहन करती है। केदारनाथ सिंह यह मानते हैं कि कला के लिए जो संघर्ष होता है, वह वास्तव में आत्मा का ही संघर्ष है, क्योंकि कविता तो व्यक्ति का उस चेतना में विस्तार पाता है, अभिव्यक्ति पाती है, जिसका सीधा सम्बन्ध समाज की इकाई चेतना के रूप से होता है। आज नयी कविता जिस किसी भी भावना से सम्बन्धित होकर रचना-क्षेत्र में अवतीर्ण हुई है, उसके पीछे सृजनात्मक चेतना का सामूहिक विस्तार पाने का ही प्रयास है। बाह्य रूपाकार में कविता की भावना यद्यपि

---

१. 'रातों में कई मकान
मकानों के पास सरक आते हैं
इन मकानों की
न नींव होती है न छत.... ।'
'धर्मयुग' -सम्पा० धर्मवीर भारती
'रात में मकान' -- इब्राहीम शरीफ

नितांत व्यष्टिनिष्ठ लगती है, लेकिन उसकी आत्मा का संघर्ष कला के लिए है और कला का प्रतिपादन-सृजन व्यष्टिगत भाव-भूमि से उठती हुई समष्टिगत चेतना में समाप्त होना चाहती है[1]।

आज नयी कविता की प्रवृत्ति एक गैर मामूली या मामूली, स्थूल अथवा सूक्ष्म उन सभी तत्वों को अपनी चेतना में समेटे हुए है, जिनकी सर्जना पूर्ववर्ती रचनाओं में नगण्य है। अपने आस-पास दिखने वाली वस्तु-अनुभूति और अपने अन्तर्मन में उद्घाटित होने वाली भावानुभूति उसकी चेतना के विषय हैं। अशोक वाजपेयी की अधिकांश कविताएं प्रणय सम्बन्धी हैं, उनमें से कुछ में प्रेम-विषयक भावना का उत्कृष्ट एवं अभिनव रूप देखा जा सकता है तो कुछ में निम्नस्तरीय हल्कापन। लेकिन प्रायः लोग ऐसी कविताओं को देखते ही नाक-भौं चढ़ाने लगते हैं और कविता को अस्वाभाविक घोषित कर देते हैं। लेकिन क्या प्रेम-भावना सार्वभौम नहीं है, प्रेम का सम्बन्ध केवल युगल प्रेमी तक ही सीमित अर्थ रखता है, प्रेम तो वह उत्कृष्ट और विलक्षण भावना है, जो न केवल मनुष्यमात्र का विषय है, बल्कि समस्त चेतन के साथ जड़ पदार्थों (छायावादियों की प्रकृति के प्रति रहस्यात्मक आस्था भाव) में भी व्याप्त है। प्रेम-भावना विलक्षण भावना है।

नगरीय अनुभव : तीक्ष्ण प्रतिक्रिया

आज समाज में फैली सारी खिन्नता, आक्रोश, कुंठा, अवसाद, निराशा, बिखराव आदि के कारण रूप में दो घातक विश्व-युद्धों की ही भूमिका है। भारतीय परिवेश में भी अभी हाल में दो छोटे-मोटे युद्धों का प्रभाव मनःस्तापों का कारण बना है। चूंकि संस्कृति, सभ्यता और ज्ञान-विज्ञान सभी के विकास का केन्द्र नगर ही होते हैं, भौतिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक

---

१ "......... कला का संघर्ष एक तरह का आत्म-संघर्ष होता है। विशेषरूप से एक नये कवि के लिए...... ।"

'तीसरा सप्तक' — सम्पा० अज्ञेय

'वक्तव्य' — केदारनाथ सिंह, पृ०११८

सभी क्षेत्रों का विस्तार नगर के द्वारा ही होता है, किसी भी देश की चेतना, जागृति नगर के माध्यम से ही विस्तार पाती है । अत: सारी विषमताएं और समस्यायें नगर के धरातल में ही आँखें खोलती हैं । आज नगर में जितनी विषमताएं,समस्याएं हैं, क्या उतनी ग्रामों में भी देखी जा सकती हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि जहां चिन्तन है,तर्क है और बौद्धिकता है,वहां समस्यायें अधिक हैं और उनको हल करने का प्रयत्न भी है, लेकिन ग्रामीणों का मानसिक ,बौद्धिक विकास अभी भी उस चरम तक नहीं पहुंच पाया है कि वे अपने आस-पास फैली विषैली अव्यवस्था के प्रति विद्रोह कर सकें, उचित-अनुचित की ओर अपनी चेतना को रुख दें। लेकिन इसके स्थान पर नगरों में आज जो विषमताएं उठ खड़ी हुई हैं, उनसे व्यक्ति भावनात्मक, संवेदनात्मक सभी रूपों में बिखराव अनुभव करता है । प्रत्येक क्षेत्र में संघर्ष की स्थिति का सामना करना पड़ता है । फलस्वरूप व्यक्ति, व्यक्ति का शत्रु बन बैठा है । वास्तव में विचारणीय है कि विष का स्रोत क्या है-- विष के दंश का अनुभव युद्धों की भयंकर प्रतिक्रिया से उत्पन्न मनो-विकारों ,भय,त्रास,पलायन,अविश्वास,टूटन,निराशा आदि से होता है, अत: यह आक्षेप लगाना कि ये सभी अनुभूतियां नितान्त व्यक्तिपरक हैं, कदाचित् न्यायसंगत नहीं है[१] । यह बात और है कि यह सामाजिक-दायित्व की भावना सभी कवियों में समानरूप से नहीं पाई जाती है ।

१-- "मानव व्यक्तित्व को इतना अधिक महत्व किसी युग में नहीं मिला और न इसके आगे मानवता के सामूहिक निर्माण और विनाश का प्रश्न ही इससे अधिक उग्र होकर आया है ..... ।"

--'नयी कविता: स्वरूप और समस्यायें'-- डा० जगदीश गुप्त

'नयी कविता नया सम्मूल्यन',पृ० १८०-१८१ ।

व्यक्तिवादिता की परिणति सामाजिकता में

प्रत्येक दृष्टिकोण से नयी कविता को नितांत व्यष्टिपरक चेतना से आपूरित नहीं कह सकते हैं, क्योंकि जो रचना भावानुभूति बाह्यरूप में 'स्वान्तः सुखाय' प्रतीत होती है, उसका अन्तिम लक्ष्य परान्तःसुखाय ही है। व्यक्तिगत चेतना के द्वारा वह अपने को प्रकाशित करता है, उसका आत्म-प्रकाशन जब पाठकों में भी वही प्रकाश जगा पाता है तो उसकी सम्वेदना उसकी अनुभूति सामूहिक चेतना में विस्तृत हो जाती है[1]। इस प्रकार व्यक्तिपरता का आरोप लगाने वालों को कदाचित् यह स्वीकार करना पड़ेगा कि व्यक्तिगत चेतना से सम्बन्धित अनुभाव भी क्रमशः सामूहिक अर्थ से सम्बद्ध हो जाता है। कविता का बाहरी रूप चाहे जैसा परिलक्षित होता हो, लेकिन उसका मूलस्वर सामूहिकता का ही स्वर है।

कहीं-कहीं नयी कविता का रूप छायावादी कविता सा व्यक्तिपरक और प्रकृतिपरक दिखाई देता है, तो कहीं शिल्प की दृष्टि से उत्कृष्ट रूप धारण करके अवतरित होता है, इन सभी रूपों में कवि का व्यक्तित्व मुखर रहता है। उसका व्यक्तित्व और उसकी चेतना समष्टि की चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। क्योंकि आज की विषम, जटिल परिस्थितियों में संघर्षरत कवि नितान्त काल्पनिक नहीं हो सकता और न ही सर्वसाधारण ही हो सकता है। वह परिस्थितियों के हाथ नचाया जाने वाला पुतला नहीं बन सकता,

---

१ '...आज व्यक्ति की, समाज की और जीवन की सीमायें विस्तार पा रही हैं। विश्वचेतना की अभिव्यक्ति आज जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनैतिक आन्दोलनों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है..... ।'

—'नये प्रतिमान पुराने निकष': लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० १९४ ।

वह तो सम-सामयिक द्वन्द्वों से टकराता, अपने लिए मार्ग बनाता, संघर्षरत, जीता-जागता, द्वेष-राग आदि सभी मानवीय गुणों से युक्त प्राणी है। वह अपने आस-पास की पीड़ा, विषाद, टूटन, बिखराव, अनिश्चयता, संदिग्धता में अपनी अनुभूति द्वारा, संवेदना द्वारा अपना मार्ग ढूंढ़ता है, अनेकों मनोविकारों से ग्रस्त हो अपने को हर सम्भव साधनों से अभिव्यक्ति देना चाहता है, कुंठा-विषाद विवशता की स्थितियों से उभरना चाहता है[1]।

छायावादियों की भाँति प्रकृति के माध्यम से कवि अपनी पीड़ा, अपने विषाद, अपनी कुंठा और अपनी निराशा के गीत नहीं गाना चाहता। वह इन असहनीय मनोविकृतियों से मुक्त होना चाहता है, लेकिन उसकी यह चेष्टा व्यष्टिनिष्ठ होते हुए भी समष्टि का समर्थन करती है[2]।

इस प्रकार सभी दृष्टियों से नये कवियों की चेतना व्यष्टिनिष्ठ चेतना का रूप धारण करके समष्टिनिष्ठ चेतना के आयामों से

---

१. "दान करो।
दान करो।।
कुंठा का दान।।
पीड़ा का दान।।"
—'नयी कविता' अंक-४ — सं० डा० जगदीश गुप्त, 'कविताएँ'-मलयज, पृ० १२।

२. "कलात्मक अनुभूति व्यक्तिसत्य से सार्वभौम सत्य की ओर उन्मुख होती है। कलाकार अपनी पीड़ा और अपनी वेदना को एक व्यापक धरातल पर लाकर उसके माध्यम से सार्वभौम विश्व-चेतना का साक्षात्कार करता है। यह सत्यबोध की वस्तुपरक प्रक्रिया है। लेकिन इस प्रक्रिया में न तो वह एकांततः वस्तुपरक ही रहता है, न एकांततः आत्मगत ही। व्यक्तिसत्य का ही साक्षात्कार वह व्यापक विश्वस्तर पर भी करता है। व्यक्तिसत्य के साक्षात्कार के समय भी व्यक्तित्व और यथार्थ की संवेदनाओं की चेतना-सम्पृक्तता है, उसमें लीन होकर विसर्जित नहीं हो जाता।"
—'नये प्रतिमान पुराने निकष' — लक्ष्मीकान्त वर्मा
'अनुभूति एवं बोधपक्ष', पृ० २४५।

सम्भव है । यह बात और है कि कभी-कभी कवि अपने कवि-कर्म को भूलकर या कुछ हल्के-फुल्के के लोभ में ऐसी रचना करने लग जाता है कि एक बार सोचना पड़ जाता है कि ये कवि महोदय किस चेतना के वशीभूत होकर अपना दायित्व निभा रहे हैं[1] । लेकिन ऐसे कवि दो-चार ही हैं, वह कभी-कभी गणमान्य कवि भी ऐसी रचना करते हुए देखे गये हैं । शायद इसके पीछे जो बोध होगा वह परिस्थितियों की गम्भीरता से कुछ समय के लिए हल्का अनुभव करने से ही सम्भव होगा ।

कवि नितान्त सामाजिकही प्राणी नहीं है, उसका कला के प्रति भी कुछ उत्तरदायित्व है, अपने प्रति भी कुछ अधिकार है । अतः इन सब परिस्थितियों से अवगत होता हुआ कवि कभी समष्टि में व्यष्टिनिष्ठ भावों और कभी व्यष्टि में समष्टिनिष्ठ भावों का रोपण करता हुआ कवि-कर्म में संलग्न होता है । अतः कविता कभी-कभी बाह्य रूपाकार में व्यष्टिगत चेतना से आपूरित लगती है तो कभी कभी समष्टिगत चेतना से । अतः यह आरोप लगाना कि नयी कविता का स्वर असामाजिकता का स्वर है, कविता समाज-विरोधी है, उसीप्रकार है, जैसे आंख पर पट्टी बांधकर विभिन्न रंगों की पहचान करना । कविता कवि के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है अतः हमें भी कविता को समझने के लिए, कविता से तादात्म्य स्थापित करने के लिए, उसके गुण-दोष का निर्देश करने के लिए अपने अन्तर में सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों को जगाना पड़ेगा, उस सीमा तक कवि की चेतना में अपनी चेतना का समाहार करना होगा, जिस परिणति पर कवि की चेतना अभिव्यक्त हुई थी । तब ही हम कविता की आत्मा को समझ पायेंगे, और उसके कुछ तत्त्व से परिचित हो पायेंगे,

---

१ ... 'अस्पताल, थाना, न्यायालय
ताड़ी, मकान, फ्राक, कमीजें
कुर्सी, पंखा, जेब कतरे ...'
--'तीसरा सप्तक, आत्मनिवेदन — प्रयागनारायण त्रिपाठी
पृ० ५ ।

ऐसी परिस्थितियों से गुजरने के बाद ही हम नयी कविता के बारे में किसी तरह की घोषणा कर सकते हैं । नयी कविता में व्यष्टिगत चेतना के पोषक समष्टिगत चेतना हीनता का आरोप लगाते हैं और समष्टिगत चेतना के पोषक व्यष्टिगत चेतना का, जब कि नयी कविता में दोनों प्रवृत्तियां एक-दूसरे के पूरक रूप में प्रयुक्त हुई है । समर्थन रूप में हम कवि लक्ष्मीकान्त वर्मा की दृष्टि देख सकते हैं ।[१]

अत: यही मानना उचितलगता है कि नयी कविता में व्यष्टि और समष्टि चेतना के स्वर एक-दूसरे के पूरक के रूप में विकसित हुए हैं । कहीं-कहीं कवि व्यष्टिनिष्ठ स्वर तीव्रता से उभरा है तो कहीं-कहीं समष्टिनिष्ठ स्वर । दोनों चेतनाभाव सूक्ष्मरूप में या गम्भीर रूप में अभिन्न हैं, पृथक अस्तित्व नगण्य है ।

-0-

---

१. "वैयक्तिक अनुभूति पर सामाजिक छाप न होकर सामाजिक प्रक्रियाओं पर वैयक्तिक छाप नये युग सत्य के रूप में विकसित हो रही है.... ।"

—"नयी कविता के प्रतिमान" — लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ५१ ।

पंचम परिच्छेद
-o-

आत्मगत चेतना के नये आयाम

(क) नयी कविता में चेतना के नये पार्श्वों या आयामों का जन्म
युग चेतना की जागृत अभिव्यक्ति : संघर्ष की अनिवार्यता ।

(ख) वैयक्तिक स्वतन्त्रता--
नयी कविता की मांग : व्यक्ति स्वातन्त्र्य, व्यक्ति इकाई की महत्ता,
व्यक्ति-स्वातन्त्र्य: सामाजिक परिवेश, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य में समष्टि
स्वातन्त्र्य, व्यक्ति स्वतन्त्रता संकुचित दृष्टि ।

(ग) परम्परा से विनिर्मुक्तता : आधुनिकता के सन्दर्भ में --
संवाद, नयी कविता के भावपक्ष की नयी परम्परा, सत्य का
परिवर्तित रूप, शिव का परिवर्तित रूप, सुन्दर का परिवर्तित अर्थ,
आदर्श और यथार्थ का नया अर्थ, परम्परित मूल्यों का तिरस्कार ।
नयी कविता का नया शिल्प पक्ष, कवि परम्परा की प्रतिमा से
विनिर्मुक्तता रूपविधान में कमनीयता या रसपूर्णता की परम्परा से
विनिर्मुक्तता, नये शब्द रूप, नये उपमान, छंदराहित्य, अर्थ की लय
इत्यादि की नयी परम्परा नये उपमानों की सर्जना, छंदराहित्य,
शब्द की लय की परम्परा से विनिर्मुक्तता अर्थ की लय ।

(घ) यथार्थवादी चेतना -- यथार्थ चेतना : बौद्धिक सन्तुलन, यथार्थ चेतना :
व्यक्ति और समाज की सापेक्षता ।

(ङ०)मानव-विशिष्टता एवं उसकी प्रतिष्ठा-- स्वातन्त्र्योत्तर परिस्थितियां:
मानव-समस्यायें, नये मानव की कल्पना ।

(च) क्षणानुभूतियों की पकड़ -- क्षणानुभूतियों का महत्व,चेतना का
परिष्कार,साधारण क्षणों से लगाव, क्षण में शाश्वतता का आभास ।

(छ) बौद्धिकता -- बौद्धिक विशिष्टता और भावाभिव्यंजन, बुद्धि और हृदय का
समन्वय, अति बौद्धिकता : एकांगिता ।

(ज) सौन्दर्य-बोध युक्त नवीन चेतना -- नवीन सौन्दर्य बोध : दोषपूर्ण
व्याख्या, सौन्दर्य-बोध : प्रकृति चित्रण के सन्दर्भ में ।

-o-

पंचम परिच्छेद

-०-

आस्थागत चेतना के नये आयाम

(क) नयी कविता में चेतना के नये पार्श्वों या आयामों का जन्म

नयी कविता मनोवैज्ञानिक मन्थन की प्रतिक्रिया है । इससे पूर्व जो भी काव्य-धारायें साहित्य-जगत् में प्रवाहित हुईं, उनमें एक ओर युग-बोध का हल्का-सा प्रभाव तो था, परन्तु दूसरी ओर उनमें कोई विशिष्ट जागृति की झलक नहीं दिखाई दी । घिसी-पिटी परिपाटी में रूढ़ियों से बंधे हुए प्रतिमानों से कविता अपने को सर्वथा मुक्त नहीं कर सकी । ऐसा नहीं माना जा सकता कि बिना नवीनता या विशिष्टता के ही कोई नयी धारा किसी वर्तमान धारा को अपदस्थ कर देती है, क्योंकि जब कुछ विशिष्ट एवं आकर्षित करने वाला समक्ष नहीं प्रस्तुत होगा तो उसकी ओर ध्यान ही क्यों जायगा ? इस दृष्टि से देखें तो पिछली सभी धाराओं में अपनी पूर्ववर्ती धाराओं से कुछ-न-कुछ भिन्नता एवं मौलिकता अवश्य दिखाई देगी । प्रत्येक युग में प्राय: युग-बोध के अनुसार ही साहित्य-धारा अनुप्राणित होती हैऔर यह भी सत्य है कि प्रत्येक युग में किसी-न-किसी तरह का संकट, उथल-पुथल अवश्य ही रहती है, चाहे वह युद्धों की भयंकरता से उद्भूत हो अथवा सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक राष्ट्रगत समस्याओं से । रीतिकाल से द्विवेदीयुग, से द्विवेदीयुग से छायावाद, छायावाद से प्रगतिवाद और प्रगतिवाद से प्रयोगवाद तथा प्रयोगवाद से नयी कविता तक में अपने-अपने युग का संघर्ष

परिलक्षित होता है । यह बात और है कि नयी कविता की अपेक्षाकृत अन्य धाराओं में चेतना का इतना विस्तार एवं जागृति नहीं दृष्टिगोचर होती । छायावाद में व्यक्तित्व के सूक्ष्म अंशों में पर्याप्त मौलिकता देखी जा सकती है, प्रगतिवाद में सामाजिकता (चाहे जिस रूप में हो) तथा प्रयोगवाद में वैयक्तिक स्वातन्त्र्य आदि कुछ ऐसे तथ्य हैं, जिन्हें उपरोक्त धाराओं के नये पार्श्व कहा जा सकता है । लेकिन दो-चार विशेषताओं से युक्त किसी काव्य-धारा से युग-बोध के दायित्व को पूर्णतया नहीं निभाया जा सकता है ।

छायावाद और प्रगतिवाद के ह्रास के साथ जो धारा प्रयोगवाद के नाम से सन् १९४३ में 'तारसप्तक' के रूप में प्रकाशित रूप में साहित्य-जगत् में अवतरित हुई वह तो उनका पिछली सभी विधाओं के रूप-तत्व से भिन्न सर्वथा प्रयोगवादी थी । प्रयोगवादी इस अर्थ में भी कि पुरानी परम्पराओं के विरुद्ध नवीनता का प्रयोग भी था । अन्य युगों की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक प्रतिष्ठा मिली, लेकिन दिन-प्रति-दिन जटिल होती जन-जीवन की स्थिति का सही निदान नहीं हो पाया । स्वाभाविक संबंध तो तोड़ने का काम तो शुरू हुआ, लेकिन उसकी आत्मा में संवेदनात्मक अनुभूति पक्ष को व्यापक परिवर्तन होने चाहिए थे, उसके प्रति किसी ने भी अपना दायित्व नहीं समझा । कविता का बाह्य शृंगार ही होता रहा । 'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक' के रूप में सात-सात कवियों के हस्ताक्षर और सामने आ गये । 'दूसरा सप्तक' १९५१ ई० तथा 'तीसरा सप्तक' १९५९ में निकला परन्तु इसी के बीच सन् १९५४ में नयी कविता का प्रथम संकलन रूप 'नयी कविता' अंक-१ के रूप में डा०जगदीश गुप्त तथा डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी के प्रयास से साहित्य-जगत् में सामने आया, जिसने पूर्ववर्ती सभी मानदण्डों के स्थान पर नवीन चेतना, नये प्रतिमान की मांग सामने रखी ।

प्रश्न उठता है कि क्या इससे पूर्व ऐसी कोई चेतना नहीं थी ? चेतना तो थी, परन्तु उसकी अवहेलना की गई । साम्राज्यवाद ने जो दो भयंकर युद्ध छेड़े उसका प्रभाव प्रत्यक्षरूप से तो भारत पर नहीं पड़ा, लेकिन प्रकारान्तर से उसका प्रभाव भारतीय मनो-मस्तिष्क पर भी अपनी कुछाया पड़ने से नहीं रोक सका । धीरे-धीरे यह महसूस होने लगा कि युग-युग से जो सांस्कृतिक मर्यादाओं में जीवन जकड़ा हुआ है, जो अंध परम्पराओं में हमारी आस्था अपनी जड़ें फैला चुकी है, उनके सहारे नये युग में पैर नहीं बढ़ाये जा सकते । अत: ऐसे तत्व की खोज निकालने की आवश्यकता हुई, जो पिछली काव्य-धाराओं में शायद थी या नहीं । यदि थी तो उसको अपेक्षित महत्व नहीं मिला । कविता में उस जागृत चेतना की आवश्यकता थी जो आगत युग के मनोमन्थन से उद्भूत सम्वेदनात्मक अभिव्यक्ति को सहज और सत्य के धरातल पर बिना किसी बाधा के अभिव्यक्ति दे सके और नयी कविता के तरुण क्रान्तिकारी (साहित्यिक क्षेत्र के क्रान्तिकारी) कवियों ने अपने कदम उस मार्ग पर बढ़ा ही दिये ।

वैसे भी कविता के द्वारा मानवीय चेतना को सबसे पहले अभिव्यक्ति मिलती है, क्योंकि कविता द्वारा मानव जीवन के गहनतम, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पक्षों का उद्घाटन सम्भव है । अत: इस अर्थ में नयी कविता ने पिछली सभी काव्य-विधाओं से अपने को सर्वथा नये रूप में युग-बोध की अखण्ड मांग के रूप में प्रस्तुत किया ।[1] चेतना की परिधि का विस्तार

---

१ मैं कविता को मानवीय चेतना की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति का श्रेष्ठतम रूप मानता हूं । इसे मनुष्यमात्र की मातृभाषा कहा गया है । जीवन के गहन से गहन पहलुओं तक इसकी व्याप्ति है । इसलिए जीवन की अतल गहराइयों में होने वाले परिवर्तनों की छाया साहित्य में सबसे पहले कविता पर ही पड़ती है । युग-मानस के सूक्ष्मतम आवर्तनों-विवर्तनों का परिचय शब्दों, वर्णों, भावों और विचारों के नये संतुलन से मिलता है । कविता ऐसे प्रत्येक संतुलन के साथ नयी होती रही है... ।
नयी कविता, अंक १---डा० जगदीश गुप्त
'नयी कविता का नया सन्दर्भ' --- डा० जगदीश गुप्त, पृ० संख्या ।

मन के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावों के उद्घाटन में भी सक्रियता प्राप्त करने लगा । युद्ध की कुत्सित छाया से अतृप्त टूटते हुए मन की भावनाओं को समझने के लिए किसी शिथिल रहस्यवाद या सैद्धान्तिक मत का प्रश्रय नहीं लिया गया, बल्कि युग के बिखराव, मनोमंथन से उद्भूत विभिन्न भाव-भूमियों पर नवीन चेतना को यथार्थ के धरातल पर विचरण करने के लिए बाध्य होना पड़ा । इस प्रकार कविता में चेतना के नये आयाम विकसित हुए । नवीन चेतना के विस्तार में जीवन और जगत् की आप-बीती के गहरे-हल्के, दार्शनिक-शाश्वत, अनेक पार्श्व देखे जा सकते हैं । युगीन परिस्थितियों की टकराहट में आज की युग-चेतना को प्रतिरोधों और संघर्षों का सामना करना पड़ा, उसकी चेतना विभिन्न दिशाओं में भटकी है और इस भटकाव में उसने कुछ पाया है, कुछ खोया है, यही खोने-पाने की प्रक्रिया नवीन पार्श्वों या आयामों को विकसित करती है ।

<u>युग-चेतना की जागृत अभिव्यक्ति: संघर्ष की अनिवार्यता</u>

नयी कविता की पृष्ठभूमि में कुछ ऐसे विचारक और आकर्षित करने वाले तत्वों की छाया है, जिसके कारण नयी कविता अपनी पूर्ववर्ती सभी धाराओं से अलग-थलग नये रूप में अपने पैर जमा चुकी है । साम्राज्यवाद के दोनों विश्व-युद्धों की छाया क्रमशः एक देश से होते हुए अपने देश में भी पड़ी । युद्धों की प्रतिक्रिया से उत्पन्न अमानुषिक व्यवहार, दासता, बर्बरता, भीषण रक्तपात ने जन-जन के तन-मन को घोर निराशा, उदासी और अत्यधिक दुःख से भर दिया । इससे पूर्व की रचनाओं में परम्परा का निर्वाह, प्रशस्ति गीत, नख-शिख, प्रेम-विरह गीत आदि की ही प्रमुखता रही थी, जब कि साहित्य की कोई भी विधा हो वह देश की सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया होती है ।

सन् १९३६० के आस-पास पंत और 'निराला' की क्रमशः जो रचनायें 'सरस्वती' और 'मतवाला' में निकल रही थीं, उनमें युग की मांग के अनुसार कुछ विशिष्ट जन पहले की धारा को अलग हटा

दिखाई दिये । परन्तु वादों के सन्दर्भ में इनकी गणना होने लगी ।

१९३६ई० में 'प्रसाद' की 'कामायनी' यद्यपि एक ओर छायावाद के अन्त के रूप में सामने आयी, परन्तु गहराई से देखने पर 'कामायनी' ऐसे तत्वों को लेकर सामने प्रस्तुत होती है, जिनमें युग के अनुसार अधिकारों की माँग, आक्रोश, संघर्ष तथा मर्यादित राज्य-व्यवस्था की स्थापना हुई है । अतः विस्तृत दृष्टिकोण से 'कामायनी' में भी नयी कविता की चेतना के कुछ अंश परिव्याप्त हैं ।

इसके साथ-ही-साथ १९३६ की राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थिति अत्यन्त शोचनीय थी । व्यक्ति जिस मानसिक यन्त्रणा से गुजर रहा था, उसका कारण अंग्रेजों की शोषण-नीति, कुटीर उद्योग-धन्धों को हटाकर नवीन औद्योगीकरण आदि था । इसके साथ-ही-साथ विभिन्न टैक्स, मालगुजारी आदि ने जनता को टूक-टूक कर दिया था । बेकारी की समस्या दिन-प्रतिदिन अपना मुख खोलती जा रही थी । अधिकारों की अवहेलना बेईमानी, चोरबाजारी सर्वत्र त्रस्त-व्यस्ततामयी कविता की पृष्ठभूमि में सशक्त बीजों का शनैः-शनैः रोपण करने लगे । यदि यह कहें कि किसी युग की समाप्ति और नये युग के आगमन की भूमिका वस्तुतः निश्चित अवधि के पूर्व ही पड़ चुकी होती है तो अनुचित न होगा । १९२०ई० में 'निराला' के 'मतवाला' और पंत के 'सरस्वती' में कुछ परिवर्तन तो दिखाई दिये । लेकिन कविता की धारा में एक आमूल परिवर्तन नहीं हुए । इसके बाद आती है 'कामायनी', जिसमें कुछ नवीनता के दर्शन होते हैं । परन्तु कुल मिलाकर ऐसी चेतना का प्रभाव नहीं दिखायी दिया जिसे पिछली परम्परा, रूढ़ियों और कविता के प्रतिमानों से अलग मानकर देखा जा सकता ।

सन् १९३९ई० के द्वितीय विश्व-युद्ध की भी वैसी तीव्र प्रतिक्रिया साहित्य में होनी चाहिए थी, वैसी न हो सकी । सन् १९४३ई० में अज्ञेय के प्रतिनिधित्व में सात कवियों की फुटकर रचनाओं के साथ 'तार सप्तक' प्रकाशित हुआ । लेकिन तात्कालिक बोध अर्थात् क्रान्तिकारी आत्मोन्मेष किसी

में भी तीव्रता के साथ नहीं दिखाई दिया । जब कि साहित्य की प्रत्येक विधा पर कुछ विशेष जिम्मेदारियां, विशेष समस्यायें आ पड़ी थीं, उस समय छायावाद के कवि तो प्रकृति में रम गये, या प्रेम-विरह के गीत गाते एकान्तवासी बनने में कविता का दायित्व समझने लगे या फिर प्रयोगवादी अदम्य यौन-भावना से आक्रान्त, पश्चिम के `फ्रायड` द्वारा अन्वेषित यौन विषयक कुंठाओं का समूह ले, साहित्य प्रयोगों में लगे थे । लेकिन सबसे अधिक संघर्ष नये कवियों को ही करना पड़ा, क्योंकि नयी कविता में शब्द-तत्व और वस्तुतत्व दोनों ही नये रूप में सामने आये । एक ओर विषयवस्तु पहले की अपेक्षा नितान्त परिवर्तित थी, तो दूसरी ओर शिल्प तत्व भी परिष्कृत था । हालांकि कुछ को नया व्यामोह सताने लगा और वह प्रयोग का अर्थ इतने हल्के रूप में लेने लगे कि आड़ी-तिरछी लाइनों, कामा, विराम से कविता की रेखा बनाने लगे जिसका कोई गम्भीर एवं सार्थक अर्थ नहीं लिया जा सकता ।

लेकिन फिर भी प्रयोगवाद में कुछ ऐसा था कि जिसके कारण उसको पहले की कविता विधा से अधिक प्रतिष्ठा और सम्मान मिला । इसके बाद ही सन् १९५४ में नयी कविता का प्रथम अंक डा० जगदीश गुप्त और डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी के प्रयास से निकला । इसकी काफी गहरी प्रतिक्रिया हुई । आलोचनायें-प्रत्यालोचनायें प्रकाशित हुईं, फलस्वरूप स्वयं डा० जगदीश गुप्त ने लिखा है कि किस तरह उन्हें अलभ्य कीर्ति मिली[1] । किन्तु इस---------

----

१ भोर का तारक प्रायः लुप्ता ।

सकल मोहल्ला सुप्ता ।

उठी घोबाइन, निकली नाइन,

कुछ को नया गाली गुप्ता ।

जय जगदीश गुप्ता ।।

-- नयी कविता स्वरूप और समस्यायें -- डा० जगदीश गुप्त, पृ०२

बिहार से निकलने वाली किसी पत्रिका में ऐसी ही एक अन्य विचित्र कविता को बहुत्यार से पंक्ति के बाद बना कर छापा गया था ।

— डा० जगदीश गुप्त,पृ०२

अंक के निकलने के पूर्व अन्य नये तरुण तथा क्रान्तिकारी कवियों की रचनायें नयेपन के साथ निकल रही थीं । सर्वेश्वर जी की कवितायें 'परिमल' तथा अन्य आस-पास के साहित्यकारों को आकृष्ट कर रही थीं । कारण पिछले सभी प्रतिमानों की अवहेलना कर यह वर्ग कुछ नया, कुछ यथार्थ और कुछ युग के अखण्ड बोध को प्रस्तुत करना चाहता था । यह वर्ग अधिक संवेदनशील था, उसकी चेतना, प्रताड़ना, प्रतिकार , अंधी-अंधाई जिन्दगी से घबड़ा उठी और उसकी यथार्थ चेतना के साथ अभिव्यक्त हुई । अपनी भावना की अभिव्यक्ति द्वारा दूसरों से मांग की कि सब अपनी सुप्त चेतना को जगाने का प्रयास करें, क्योंकि अब क्रान्ति का समय आ गया है । पुरानी मध्ययुगीन मूल दृष्टि, भावुकतापूर्ण रोमानियत, कल्पना प्रधान सांस्कृतिक भाव-बोध, धरातलीय, अभिव्यक्ति के स्थान पर युग के अखण्ड भाव-बोध की स्थिति तथा वस्तु के प्रति सच्ची ,गहरी और विवेकपूर्ण दृष्टियां आ चुकी हैं । इस प्रकार पुराने घिसे-पिटे जीवन मूल्यों के स्थान पर नये भाव-बोध, नयी व्यंजना, यथार्थवादी दृष्टि, भाव-बोध के साथ कलापक्ष की सुनियोजित योजना आदि ने नयी कविता में नये पार्श्वों या आयामों को जन्म दिया । यह अन्तर सन् १९३५ से १९४५-६० की किसी भी रचना के तुलनात्मक अध्ययन से देख सकते हैं ।

---

१ .... मैं कहना चाहता हूं --
यह कायरों का देश है,
जहां लोग देखने को आगे देखते हैं...
चलने पर पीछे चलते हैं...
जिसमें जितना ही रस होता है
वह उतना ही निःशब्द झुकता है...
फिर भी मैं साहस का
एक गीत गाना चाहता हूं.... ।
'बांस का पुल' --सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
'फिर भी मैं' --, पृष्ठ ।

सबसे मुख्य बात नयी कविता युग-बोध की जागृत अभिव्यक्ति है, एक युग के समाप्त होने की सूचक तथा नये युग के प्रारम्भ का पहली सशक्त कड़ी है, जिसका विस्तार,प्रसार और प्रगति दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही जाता रही है न कि अवरोधित हो रही है । अत: आज नयी कविता का स्वभाव और स्वरूप दोनों ही बदल गया है । युग-युग से चले आ रहे काव्य-प्रतिमानों, परम्पराओं,रूढ़िगत भाव-बोधों एवं थोथी कल्पना-शक्ति के स्थान पर जो कुछ आया वह सब कवि का स्वयं का देखा समझा और भोगा था ।माध्यम और उपकरण के स्थान पर सहज अनुभूति का सहारा लिया गया । व्यक्तिगत चेतना को समष्टिगत चेतना से सम्बद्ध किया गया । नितान्त छोटी तथा गैर मामूली लगने वाली भी भावस्थितियों को महत्व दिया गया । वस्तुस्थिति से अनुभूति पक्ष तक होने वाले सभी मानसिक और बौद्धिक परिवर्तनों को प्रस्तुतीकरण में भाषा को और सशक्त बनाया तथा कहां-कहीं नये शब्दों की भी रचना की । संवेदना को सीमित और वर्गीकृत न मानकर व्यक्ति के नितांत अन्तरंग आत्मानुभूत छोटे-से-छोटे भाव-बोध को मूल्यवान् माना गया तथा आत्मानुभूति के अनावलोकित पक्ष का भी उद्घाटन हुआ ।

झूठी प्रशंसा, झूठी कल्याणकारिता के स्थान पर खरी तथा मानवोचित कल्याण की आवाज आई । सच को झूठ से निकालने की मनोवृत्ति साफ दिखायी देती है । इस तरह नये कवियों ने नये पथों में, नयी दिशाओं में सोचना प्रारम्भ किया । छंद,लय,अलंकार की सीमा को तोड़ नये प्रकार के सन्तुलन में कविता को बांधा । अर्थात् गद्य में भी पद्य-सा भाव निरूपण तथा/लय और गति विस्तार, सुखानुभूति के अनुरूप नये भाव-बोध ,नयी अभिव्यंजना, सच्ची अन्तरंग अनुभूति के लिए शब्द-भाण्डार में भी व्यापक परिवर्तन किए तथा नये मुहावरों, उपमानों,प्रतीकों तथा नयी बिम्ब योजना प्रस्तुत की ।

भावुकता की पराजय ने नये कवियों को यह सोचने के लिए मजबूर कर दिया कि मानव-व्यक्तित्व ही अधिक श्रेष्ठ एवं

मूल्यवान् है । मानवता के सामूहिक विनाश और निर्माण का प्रश्न उग्र रूप में उठाया गया । अपने अधिकारों के प्रति हो रही अवहेलना और बर्बरता से उसकी चेतना जाग उठी और उसने अनुभव किया कि ईश्वर या कोई अन्य श्रेष्ठ व्यक्ति उसके भाग्य का निर्माता नहीं है, बल्कि वही अपने भाग्य का निर्माता है[1] ।

नकली शुभाशंसा तथा झूठी मांगलिकता के स्थान पर जीवन के श्लील-अश्लील, शिव-अशिव सभी तक उसकी पैनी दृष्टि उतर जाती है । उसमें ऐसे संस्कार विकसित हो रहे हैं कि वह अपने लिए नहीं, समाज के लिए जीता है । उसके सुख-संभव के सारे साधन व्यर्थ हैं, उनका तिरस्कार करना चाहता है । सब के लिए कवि पथ खोजना चाहता है । समस्त मानव-चेतना में नव-जागृति, नव मंत्र फूंकना चाहता है । वह नहीं चाहता कि वह सुख-साधन में लिप्त रहे और उस मानवता की जरा भी चिन्ता न करे जिसकी वह सूक्ष्म इकाई है । अत: वह जन-जन के कल्याण हेतु

---

१ 'आज जो सन्तुलन घटित हो रहा है वह अब तक होने वाले सन्तुलनों की अपेक्षा अधिक तलस्पर्शी और अधिक मौलिक है, क्योंकि मानव-व्यक्तित्व को इतना अधिक महत्त्व किसी युग में नहीं मिला और न इसके आगे मानवता के सामूहिक निर्माण और विनाश का प्रश्न ही इतने अधिक उग्र होकर आया । किसी बाह्य शक्ति के स्थान पर अपना भाग्य-विधाता वह स्वयं है और उसके निर्णयों के साथ समस्त मानवता का भविष्य जुड़ा हुआ है । इस बोध ने उसे नया व्यक्तित्व प्रदान किया है और मन के सूक्ष्म स्तरों तक ले जाकर कदाचित् इसी बोध ने व्यक्ति-व्यक्ति के बीच दूरी को भी बढ़ा दिया है... ।'

— नयी कविता, अंक २, सं० डा० जगदीश गुप्त, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी
'नयी कविता नया संतुलन', पृ० [illegible] ।

और मुक्ति की बात करता है[1]।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जिस प्रकार की शासन-व्यवस्था की थी तथा गांधीवादी विचारों की सम्भावना थी, वैसा न हो सका। स्वतन्त्रता को इतने हल्के अर्थों में लिया गया कि सर्वत्र बेईमानी घूसखोरी, चोरी, प्रताड़ना, व्यक्तिगत स्वार्थों, अकर्मण्यता आदि ने व्यक्ति को घोर अवसाद, पीड़ा तथा मानसिक रूप से दासता में जकड़े रखा। व्यक्ति स्वतन्त्रता की झलक नहीं दिखाई दी। देश-स्वतन्त्रता की स्थिति पर तो आ गया पर मानसिक दासता से निवृत्ति नहीं मिल सकी। चारों ओर घोर निराशा, भाग्यवादी प्रवृत्ति, कुंठा, अविश्वास, भय और संत्रास आदि का ही वातावरण बना रहा है। जब एक युग संक्रान्ति के दौर से गुजर रहा होता है तो नये युग के घर बनाने के लिए नवीनता का आश्रय लेना होता है और यह नवीनता सभी अर्थों में जागृति का सन्देश लेकर नयी कविता में आयी। व्यक्ति की प्रतिष्ठा के साथ-साथ मानव-मन के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अन्तर्मन के देखे-अनदेखे सभी पक्षों के उद्घाटन के लिए चेतना का नवीन विस्तार हुआ। जब एक धारा अपना प्रभाव युग-युग से जमा चुकी होती है तो उसका रुख मुड़ने और मोड़ने में कितना परिश्रम, कितना विरोध, कितना संघर्ष करना पड़ता है, यह नयी कविता के सर्जक ही समझ सके हैं। नयी कविता के सर्जकों ने यह

---

१ ... मेरा झुका हुआ यह मस्तक
जब तक ऊपर को नहीं उठेगा,
मेरे भटके चरणों को जब तक
पथ इंगित नहीं मिलेगा
~~[illegible]~~
जब तक मुझको शक्ति नहीं
इस जीवन के सारे बन्धन
तब तक मुझे तोड़ना होगा
बार-बार माँ की मिलन-मन...
'झुके हुए आसमान के नीचे' — कीर्ति चौधरी, पृ० १

समझ लिया था कि आज के युग-बोध, दिन-प्रति-दिन जटिल होती परिस्थितियों का निदान करना ही होगा, उसके लिए मार्ग में आये सभी जटिल,दुर्बोध,विरोधों,संघर्षों को झेलना ही होगा । क्योंकि कविता 'मानवीय चेतना की अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति है ।' इसलिए जब चेतना ही कुंठित होती जा रही है, सर्वत्र निराशा और तंद्रा का वातावरण छाता जा रहा है, तब कविता की गति भी शिथिल होती जायगी और कविता की मृत्यु सम्भावित है । अत: संघर्ष की अनिवार्यता हो गयी । और इसके लिए नयी कविता के कवियों को व्यंग्य,हास्य और विरोधों का तीव्र प्रहार झेलना पड़ा ।

नयी कविता से पूर्व जो भी काव्य-धारा में साहित्य-जगत में विशेष चमक और आकर्षण के साथ उठी उनकी चमक स्थायी और विशेष नहीं थी,हालांकि पिछली कविता परम्परा से भिन्नता लिए हुए तो थी, परन्तु उसका कोई ठोस यथार्थवादी धरातल नहीं था । कभी चेतना का विस्तार अमूर्तता के रूप में हुआ , जैसे छायावाद में या फिर प्रतिक्रिया के रूप में । इन सबसे हटकर व्यक्ति की प्रतिष्ठा का रूप प्रयोगवाद में दिखाई दिया । लेकिन नवीनता का व्यामोह कविता को कविता के अर्थ से हटाकर कृत्रिमता की ओर अनायास घसीट ले गया, जिसका फल यह हुआ कि कविता अपने दायित्व से हटकर, आत्मा की अवहेलना कर रूप के शृंगार में ही निमग्न हो गयी । आज का युग अपनी विविधताओं और अनेकमुखी समस्याओं के कारण अत्यधिक जटिल तथा दुर्बोध हो गया है, मानस-जगत पर अनेक प्रकार की समस्यायें आ पड़ी हैं, उसकी बोधवृत्ति अधिक जागृत और विस्तृत हो गयी, उसकी संवेदना ,अनुभूति पिछली संवेदना और अनुभूति से अधिक विशिष्ट और विस्तृत हो गयी है । इसके लिए जिस तरह की जागरूकता की आवश्यकता थी, जिस तरह के अभिव्यक्ति के माध्यमों को अपनाना था, खोजना था, यह काम अत्यधिक कठिन और जोखिम भरा था,क्योंकि पहले की कविता का मार्ग सीधा सादा और पूर्व निर्धारित जीवन-मूल्यों से प्रभावित था । इसके लिए किसी

भी प्रकार के दुस्साहस की आवश्यकता नहीं पड़ा, मानव-मन सामान्य था, अतः नयी कविता का मार्ग किसी भी दृष्टि से सरल और सहज नहीं था । उसको निकालने और अपनाने में अनेकों आक्षेपों का सामना करना पड़ा । प्रयोगवाद में अपनी बात मनवाने का पूर्वाग्रह दिखाई देता है, जब कि नयी कविता किसी भी ऐसे पूर्वाग्रह से आक्रान्त नहीं लगती, वह तो युग-चेतना की जागृत अभिव्यक्ति है । एक ओर नवीनता, परम्परा से निर्बद्धता, मुक्तता है तो दूसरी ओर मानव-मन की अनुभूति का यथार्थपरक विश्लेषण भी । कल्पना-लोक को छोड़कर युग के कठिन यथार्थ धरातल पर चलने का प्रयास कुछ कम प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता, अपने में यह एक कठिन दुस्साहस का प्रतीक था । परन्तु युग-चेतना की जागृति अभिव्यक्ति नयी कविता के सशक्त पक्ष से सम्बन्धित है । यदि यह पूछा जाय कि वह चेतना क्या थी, किस रूप में थी ? तो उसके लिए अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं । कवि जान लेता है कि बड़ी-बड़ी बातें करने वाले क्या हैं और वे कहां पर खड़े हैं ? जिस खोखली नींव पर खड़े हैं वह कभी भी टूट कर धंस सकती है । अर्थात् चारों ओर अंधेरा है, इस अंधेरे को दूर करने के लिए जन-जन के मानस में चेतना का मन्त्र फूंकना है, उसको लील लेने वाले सर्वत्र फैले अंधकार से परिचित कराना है । यदि चेतना का जागरण नहीं होता तो एक दिन अन्धकार सबको लील लेगा[1] । क्योंकि महायुद्धोत्तर विश्वमन:स्थितियों के धीरे-धीरे हमारे देश के

---

१ ... अंधेरा यहां नहीं जहां सूरज है
किन्तु
जहां सूरज है वहां हम नहीं हैं
जहां हम हैं वहां अंधेरा है
अंधेरा ही अंधेरा है ।'
'नयी कविता' अंक ८ सं०-डा० जगदीश गुप्त, विजयदेवनारायण साही
हरी ठाकुर : तीन कविताएं, पृ० १९८-१९९

चरित्र को भी प्रभावित किया तथा उनमें अनेकों विकार तथा मनोग्रन्थियां पैदा कर दीं । जिसका परिणाम बहुत ही भयानक सिद्ध हुआ । सर्वत्र जिस प्रकार का वातावरण फैल चुका था, उसमें व्यक्ति संत्रास, मजबूरी, घुटन, अविश्वास, कुंठा, अकर्मण्यता आदि से अछूता नहीं था । संवेदना के नाम पर खोखली तथा नितांत बाह्य जगत् की ही ओर दृष्टि का विस्तार था । मानसिक पीड़ा के आरोह-अवरोह के स्वर किसी के भी कंठ तक अपनी व्यथा नहीं कह सके । ऐसे में चेतना का जो जागरण बहुत पहले (स्वतन्त्रता के बाद ही) हो जाना चाहिए था, जागृति की उस वीणा को नये कवियों ने उठाया । स्वतन्त्रता हो जाने के बाद भी व्यक्ति का व्यक्तित्व कितने जटिल बन्धनों में जकड़ा है? इस जकड़न का, इस पीड़ा का क्यों नहीं निदान हो पाता[१] ।

और वह जानता है कि आज के युग में जिस पथ को, जिस चरित्र को, जिस मनोबल की आवश्यकता है, उसके लिए नवीन जागृति की आवश्यकता है, नये चेतना-बोध तथा साधना की आवश्यकता है ।

इस प्रकार जिस तरह की चेतना की आवश्यकता नयी कविता के कवियों ने समझी, वह आज के विशृंखलित होते हुए मानव - व्यक्तित्व को जोड़ने के लिए अत्यधिक आवश्यक थी । जब चारित्रिक पतन होने

----

१ चलने वाले की यह कैसी मजबूरी है
पथ है-- प्रकाश है
दूरी फिर भी दूरी है

....
इनमें भी कोई ज्योति साथ ले जायेगी ?
क्या राह यहां पर आकर भी मिल जायेगी ?
--खुले हुए आसमान के नीचे-- कीर्ति चौधरी
"दर और बिखर गेलीं", पृ० १४ ।

लगता है तो साहित्य क्या देश का पतन हो ना निश्चय होता है, ऐसे संक्रांति के मोड़ पर खड़ी नयी कविता ने चेतना को जैसा झकझोरा, वह पिछले सभी धाराओं से सर्वथा भिन्न तथा महत्वपूर्ण था । मनुष्य ने व्यक्ति के मन की बात समझ ली, उसने यह भी जान लिया कि व्यक्ति के दुःख-सुख का वह समान भागीदार है । व आज मनुष्य के मनोमन्थन को यदि वह नहीं समझेगा, उसमें चेतना की जागृति नहीं कर सकेगा, तो व्यक्ति टूट कर समाप्त हो जायगा । वह व्यक्ति में फैले तनाव को अपने में अनुभव करता है और उस तनाव को संतुलित करने का प्रयास भी करता है[1] । इस सब के लिए संघर्ष की अनिवार्यता नयी कविता की चेतना से उद्भूत है । यही चेतना समस्त सुप्त मानवता के विचारों, बुद्धि, संवेदना तथा अनुभूति में क्रान्ति ला देना चाहती है । इसके लिए चेतना के जो नये आयाम नयी कविता में स्पष्ट एवं विकसित हुए हैं, उसे युग-चेतना की जागृत अभिव्यक्ति ही कह सकते हैं ।

-o-

---

१ मेरी इन व्याधियों का
    ओ मानव ! अनाम में भी निदान निश्चय...
    मेरे मन बुद्धि में
        उतरे चलते हैं, इन्हीं संकल्पों में
            मेरे ही देश क्षण, ... ।
        —"अतिक्रान्त पुरुष" — केदार , पृ० १२

(ख) वैयक्तिक स्वतन्त्रता

नयी कविता को यदि नितान्त वैयक्तिक स्वतन्त्रता का काव्य कहा जाय तो अनुचित तथा आश्चर्य की बात न होगी। क्योंकि नयी कविता से पूर्व जो काव्यधारायें बड़े ज़ोर-शोर से उठीं,उनमें व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का स्वर अधिक तीव्रता से उभरा । प्रगतिवाद में जिस व्यक्ति-स्वतन्त्रता की बात की गई,वह कोरा प्रलाप तथा प्रतिक्रियावादी स्वर ही सिद्ध हुआ, उसका व्यक्ति की गहनतम समस्याओं से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था । छायावाद के कवि व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की बात तो दूर रहे,एकान्तप्रिय,रहस्यात्मक भाव-बोध में अकड़े, कल्पना की ऊंची-ऊंची उड़ानें भरते, प्रेमवासना तथा विरह के गीतको ही कविता का साधन समझने लगे ।

इसके बाद आयी एक और नयी और तीव्र काव्य-धारा `प्रयोगवाद`, जो अपने रूप,वस्तु तथा शिल्प तीनों में ही परि-वर्तित तथा कुछ अलग-थलग सी दिखाई दी । इन कवियों में जैसे अपनी बात मनवाने का व्यामोह-सा था । हालांकि व्यक्ति स्वातन्त्र्य की बात तो यहां से कुछ अधिक स्पष्ट-सी लगने लगी थी,क्योंकि द्वितीय विश्वयुद्ध की कठिन परिस्थितियों का सामना मध्यवर्ग को ही पहले करना पड़ा । युद्धोत्पन्न विभिन्न विकारों तथा समस्याओं का प्रभाव उसी पर सबसे अधिक पड़ा । युद्ध से पूर्व जो मनोबल या चरित्र बाह्य रूप से परिलक्षित होता था, वह युग की मांग में भावावेश के रूप में ही था, उसका स्वतन्त्रता के बाद असली रूप सामने आया ।

नयी कविता की मांग : व्यक्ति-स्वातन्त्र्य

स्वराज की समस्यायें—चोरी,बेईमानी,घूसखोरी आदि का व्यक्ति को सामना करना पड़ा, तो वह अपनी बात तक कहने में असमर्थ साबित हुआ । उसके मन में, मस्तिष्क में तूफान भरा था, लेकिन उस

तूफान से वह किसी को परिचित नहीं करा सका । ऐसे समय में ही कवियों ने व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की मांग की । उसने अपने अनुभूत सत्य से सबको परिचित कराया, उसने पाठक,आलोचक -- सब को यह मानने के लिए बाध्य किया कि अनुभूति का छोटे-से-छोटा रूप भी कवि की चेतना का अंग हो सकता है और उसके लिए महत्वपूर्ण हो सकता है । हो सकता है कवि की आत्मा में उसका उद्घाटन विद्युत-छटा की तरह हुआ हो । कवि की चेतना, उसके व्यक्तित्व के विकास तथा स्वतन्त्रता का प्रभाव कविता पर पड़ता है । इसलिए नयी कविता में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की बात उठाई गई है । व्यक्ति ने एक-दूसरे के दु:ख की भावना को समझा और अपनी भावना को उसकी भावना में समाहित कर देना चाहा है । वह स्वीकार करता है कि आज जिस स्थिति में व्यक्ति सांसें गिन रहा है, उसका कारण व्यक्ति व्यक्ति का शत्रु है । उसने युग की परिस्थितियों को भोगा है, झेला है । वह मानवता का अर्थ सच्चे अर्थों में लेता है । वह पथ-निर्देश करना चाहता है । लेकिन उसके बाद भी वह चाहता है कि उसकी स्वतंत्रता मानव-स्वतन्त्रता के रूप में फलित हो [1] ।

नयी कविता में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का स्वर किसी भी प्रकार की जकड़ता,अनुशासन के बीच नहीं बौना चाहता था । वह तो युग-युग से जकड़े बौनेपन[2] से छुटकारा पाना चाहताथा । आज युद्धों की कलुषित छाया

१.. जिस तरह हम बोलते हैं
उस तरह तू लिख ,
और उसके बाद भी
हमसे बड़ा तू दिख... ।
—'दूसरा सप्तक'—भवानीप्रसाद मिश्र
'कवि से',पृ०६ ।

२.. हम सब बौने हैं
मन से, मस्तिष्क से भी
भावना से, चेतना से भी,
बुद्धि से विवेक से भी
....
'जो बंध नहीं सका'—
गिरिजाकुमार माथुर
'बौनों की दुनिया',पृ० ६ ।

ने जो दुष्परिणाम दिये हैं, उसका वह खुलकर विरोध करता है । वह जानता है कि इतिहास के हाथों वह `साधारण` की परिभाषा से बंधा हुआ है, परन्तु उसमें चेतना का संचार हो गया है, इसलिए वह इस साधारणता से मुक्ति चाहता है । वह अपनी नियति को बदल देना चाहता है,क्योंकि साधारण की परिधि में जकड़े रहने से हमारी चेतना का अस्तित्व प्रकाश में नहीं आ सकता और हम अपूर्ण रहेंगे । अत: वह व्यक्ति स्वातन्त्र्य की मांग करता है ।

व्यक्ति-इकाई की महत्ता

वह अपनी चेतना के प्रवाह में श्लील-अश्लील, शुभ-अशुभ कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं मानता, महत्वपूर्ण मानता है तो अपनी अनुभूत संवेदनात्मक चेतना की सत्य अभिव्यक्ति को जो काव्य के धरातल पर कवि के व्यक्तित्व को प्रस्तुत करती है । उसकी आत्मा में दु:ख परिव्याप्त है,उसकी संवेदना संत्रस्त हो गयी है, परन्तु अपने मन-मस्तिष्क में उठते तूफान को वह अब छुपाना नहीं चाहता, वह उसके परिष्करण की बात करता है । वह नहीं चाहता कि उसकी आकांक्षायें,भावनायें बार-बार प्रवाहित होती रहें, उसको महत्वहीन समझा जाये। वह व्यापक समूह से हटकर व्यक्ति - स्वातन्त्र्य की मांग करता है । अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए वह अपने अनुसार भाषा-बिम्ब,प्रतीक की संयोजना करता है और निर्भीकता से अपनी बात कह देता है । समाज में फैले दोषों तथा मनोबल अथवा चारित्रिक कमज़ोरी को वह साफ-साफ बता देना चाहता है[1] । वह साफ-साफ बता

१.. हम सब
आधे रास्ते की ज़िंदगी जी रहे हैं...
हम जीवन को सम्पूर्ण जीने से
डरते हैं कतराते हैं...
अधूरी दृष्टि
अधूरे विचार...
अपनाते हैं
और उन्हें भी पूर्णता की खोज में
लावारिस मुखौटे मिल जाते हैं
आधे रास्ते लौटा देते हैं..।

`बांस का पुल`—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
`आधे रास्ते`, पृ० २७ ।

देना चाहता है कि वह मनुष्य है और उसकी भावनायें,उसके चेतना-बिम्ब कि घिसी-पिटी मर्यादाओं,सिद्धान्तों की ठेक ठोक नहीं घोट सकते । वह व्यक्ति-विशेष है जो कभी प्यार के गीत भी गा सकता है , कभी कुंठा और अविश्वास से ग्रस्त अपनी झुंझलाहट भी व्यक्त कर सकता है, तो कभी किसी अत्यधिक साधारण लगने वाली वस्तु में भी रम कर आनन्द उठा सकता है । व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की मांग के पीछे नयी कविता के कवियों में एकाएक जग उठा--स्वाभिमान/अहं का प्रश्न है। इसलिए वह अपने अधिकारों की बात उठाता है । वह न्याय और सच्चाई के पथ पर चलकर अपनी घुटी-घुटी संत्रस्त,बेडौल जिन्दगी से छुटकारा चाहता है ।

अपनी बात पर अत्यधिक आत्मविश्वास ही व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की मांग है । वह छायावादियों की तरह दिग्भ्रमित नहीं होना चाहता और न ही प्रगतिवाद की तरह कोरा नारेबाज ही बनना चाहता है, वह तो अपने व्यक्तित्व की एक-एक पर्त खोलकर अपने अधिकार की, अपने सम्मान की बात करता है । आज की परिस्थितियों से ऊबा,घबराया, वह स्वयं खीझता है,झल्लाता है । इस प्रकार की कम मनोवृत्तियां से उसके मन में विकार उत्पन्न होता है । वह समाज से अलग कटकर एकान्तप्रिय हो जाता है । अपने आस-पास के परिवेश से वह इतना सम्पृक्त हो जाता है कि उसके आत्मविश्वास की भी डोर छूट जाती है । यही अनुभूति नयी कविता के कवियों की हो गयी है,जिसके लिए व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का प्रश्न अपने में महत्वपूर्ण हो उठा है । क्योंकि परिस्थितियों से उन्मुक्त सामाजिक,साम्प्रदायिक चित्र को वह पचा नहीं पाता और इसके लिए वह जो भाषा अपनाता है, वह उसके व्यक्तित्व की आवाज होती है । वह अपनी भावनाओं को यों ही बिखरते

नहीं देख सकता[१]। अपने अन्दर सुलगती हुई आग को बर्षों से वह सह रहा है। लेकिन वह आग को अब और अधिक नहीं सुलगने देगा, इसके लिए वह अपनी भावनाओं को, अपनी संवेदनाओंको व्यक्त करना चाहता है[२]। वह मानव को अविभाज्य रूप में देखना चाहता है और मानव का विशिष्टता के साथ उसकी स्वतन्त्रता की बात करता है। उसकी आत्मा ने जिन चोटों को सांस-सास लिया है, उसको वह सबके सामने प्रस्तुत करना चाहता है, चाहे इसके लिए उसकी यात्रा का अन्त मृत्यु में ही हो, पर वह अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता का आग्रह करता है। इसके लिए वह परम्परा,शास्त्रीय

----

१ `आदमी आज सीफता है, थकता है, टूटता है, बनता है, और इन परिस्थितियों में वह अपने और अपने से बाहर विषाक्त वातावरण से जूझता है। इस जूझने में, इस टूटने में, इस सीफने में और थकने की प्रक्रिया में निश्चय ही उसका आत्मविश्वास भी विकसित होता है। सम्प्रदायों के विष को आज के मानव ने काफी भेला है, इसलिए वह आज अपनी भाषा में बोलना चाहता है, अपनी शैली में कहने के लिए आग्रह करता है। यही उसकी विशेषता है।`

—नयी कविता के प्रतिमान`—लक्ष्मीकान्त वर्मा
`मानव विशिष्टता और आत्मविश्वास के आधार`,पृ० १५४।

२ `... मैं इस आग को चुपचाप
किसी दरिया के हवाले कर देना चाहता हूं,
ताकि
कोई यह न जाने
कि यह आग मुझमें सुलगी थी।
और इस जहर को
छुरी तरह
थूक देना चाहता हूं
ताकि
कोई यह न समझे
कि कभी मुझमें कुछ जमा था...। —नयी कविता, अंक-,सं०डा०जगदीश गुप्त,
वि०दे०नारायण साही-एक आत्मकथा
मानवीय रचना,पृ०१०६-११०

विधान की परवाह भी नहीं करता । क्योंकि जो कुछ उसने इस विषम परिस्थिति में स्वयं साक्षी के रूप में देखा है, भोगा है, उसको तो वह अवश्य व्यक्त कर देना चाहता है । उसकी स्वतन्त्रता का प्रश्न जीवन-मूल्यों से बंधा हुआ है । आज वह जो कुछ भी अघटनीय घटित होते देख रहा है, उसका वह सामना करना चाहता है ।

व्यक्ति-स्वातन्त्र्य : सम-सामयिक परिवेश

नयी कविता के व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का आशय मूल रूप से तात्कालिक प्रवृत्तियों तथा युग-बोध को सही अर्थों में जीवन के निकट ले आने से है, क्योंकि तभी वह वास्तविक अर्थों में सम-सामयिकता के निकट आ पायेगा । जब समस्यायें सुलझने के स्थान पर दिन-प्रतिदिन जटिल होती जाती हैं, तो व्यक्ति अपनी सम्वेदना, अपनी शैली, अपनी भाषा और अपनी भावनाओं की स्वतन्त्रता की मांग करता है । आज जन-जीवन, युग की समस्यायें असीमता की ओर अग्रसर हो रही हैं, जिनका समाधान वास्तविक सम्वेदना तथा मुक्त भाव-बोध की अभिव्यक्ति से शायद ही हो सके । नयी कविता में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की मांग एक प्रकार से क्रान्तिकारी प्रयास है, क्योंकि अब समय आ गया है कि हाथ-पर हाथ रखकर बैठने के स्थान पर आत्मप्रकाश के द्वारा व्यक्तित्व का विस्तृत विकास किया जाय । अपने युग की समस्याओं, विसंगतियों के चक्रव्यूह में घिर कर वह अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करते-करते हर आघात को सहने के लिए कटिबद्ध है, इसलिए अन्त तक युद्ध करना चाहता है । जहां एक ओर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की बात है, वहीं कितनी बड़ी जिम्मेदारी का भी अहसास है । उसने समझ लिया है कि युग उसका है और युद्ध भी उसका, अतः संघर्ष भी उसे ही करना होगा । यदि वह हाथ-पर-हाथ रखे अपने को पहचानने के

स्थान पर छिप कर बैठा रहेगा तो, आखिर कब तक दूसरे उसका कवच बनते रहेंगे[1] ।

जहां तक नयी कविता में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की मांग का प्रश्न युग-बोध की जागृत अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक समझा गया, वहीं उसका गलत अर्थ भी लिया गया । कुछ कवियों ने स्वतन्त्रता का अर्थ मर्यादित तथा विस्तृत अर्थों में नहीं लिया । कवि की चेतना, उसकी संवेदना आस पास के तत्वों-विषयों से प्रभावित होती हैं और कवि उसका अनुभव तथा प्रकाशन कविता की भाषा में करता है । पर उसका काव्य साहित्य में एक निश्चित तथा साहित्यिक अर्थ भी होता है । नयी कविता के उत्तरदायियों ने व्यक्ति-स्वतन्त्रता के नाम पर उच्छृंखलतापूर्ण अनुभूति का परिचय दिया । यहां तक श्लील-अश्लील के प्रश्न को नये युग-बोध के सन्दर्भ में विस्तृत अर्थ में लेने का दावा तो भरा, लेकिन उनके चरित्रों की अभिव्यक्ति में वह संयम और सन्तुलन अपना साथ छोड़ बैठे । प्रेम एक सार्वभौमिक भावना है, उसका सम्बन्ध सीधा हृदय के सम्वेदनात्मक पक्ष से होता है । उस पवित्र भावना का चित्रण यदि सीमा में हो तो वह यथार्थ के निकट और सम्प्रेषणीय तथा सुखकर होगा। अशोक वाजपेयी की कृति `शहर अब भी सम्भावना है` में प्रणय सम्बन्धी अनेकों रचनायें हैं, लेकिन उनमें कुछ स्वस्थ प्रेम की प्रतीक हैं तो कुछ अनुशासन की सीमा से बाहर । एक रचना `कहां होता है दुनिया` में कवि की पंक्तियां `अपने शरीर के उस विह्वल गुम्फन में` तथा अनेकों अन्य कवितायें अनुशासन की सीमा से

---

१ ... कौन बन सकेगा कवच मेरा ?
युद्ध मेरा, मुझे लड़ना
इस महाजीवन समर में अन्त तक कटिबद्ध.... ।`
—चक्रव्यूह —कुंवरनारायण , [illegible], पृ० १०३ ।

हटकर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य पर उच्छृंखलता की छाप लगाती हैं ...[1]।

अशोक वाजपेयी की कई प्रेम-विषयक रचनायें सुन्दर एवं स्वस्थ दृष्टि प्रदान करती हैं। स्वस्थ एवं कलात्मक प्रेम की अभिव्यंजना दर्शनीय है। चुम्बन का एक छोटी-सी कविता में अत्यधिक कलात्मक एवं मानसिक भाव-बोध दर्शनीय है[2]। भाषा खुली होकर भी मर्यादा का निर्वाह करती है। वास्तविकता यह है कि आज व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का अर्थ गलत अर्थों में लिया जाने लगा है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की भावना का मानवता से जुड़ी होने का सन्दर्भ लुप्त होता जा रहा है। प्राय: व्यक्ति स्वतन्त्रता की भावना का अर्थ निजी अर्थों में लगाने लगे हैं। आज के जीवन की जो मूलभूत समस्या है, उसके गर्भ में जाने में कवि एक झिझक, एक डर का अनुभव करता है, क्योंकि युग की परिस्थितियां हलचल की स्थिति में हैं, अनेकवाद, सम्प्रदाय, अपना-अपना राग अलाप रहे हैं। ऐसे में कवि को डर है कि कहीं वह अपनी

१.. कहां होती है दुनिया उस समय
   जब मैं तुझे सारे अंगों से थाम लेता हूं ...
   एक उजाड़ दोपहर में
   अपने शरीर के निश्छल गुम्फन में :
   `शहर अब भी सम्भावना है`--अशोक वाजपेयी
   `कहां होती है दुनिया`, पृ० २७।

२ एक जीवित पत्थर की दो पत्तियां
   रक्ताभ, उत्सुक
   कांप कर जुड़ गयीं,
   मैंने देखा :
   मैं कुछ लिख सकता हूं... ।
   `शहर अब भी सम्भावना है`--अशोक वाजपेयी, `पहला चुम्बन`, पृ० १८

बात कहता-कहता इन विभिन्न वादों, सम्प्रदायों से न जोड़ दिया जाय[1] । अतः वह अपनी बात खुलकर ठीक-ठीक अभिव्यक्त नहीं कर पाता है ।

व्यक्ति-स्वातन्त्र्य में समष्टि-स्वातन्त्र्य

नयी कविता में व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अर्थ समाज के प्रत्येक सदस्य की स्वतन्त्रता से है । वह जहां अपने विचार, अपनी धारणा को व्यक्त करने में स्वतन्त्र है, वहीं वह दूसरों के विचार, दूसरों की भावनाओं को भी पूरी आन्तरिक स्वतन्त्रता के साथ अभिव्यक्त होने देना चाहता है । इस प्रकार यह स्वतन्त्रता एक प्रकार से उत्तरदायित्व के प्रश्न से जुड़ी हुई है । व्यक्ति अपने विचारों का स्वामी है और उसके चिन्तन तथा उसकी अनुभूति पर उसका पूरा अधिकार है । इसलिए एक-दूसरे को दूसरों की भावनाओं का समादर करना, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का अर्थ है । जिस गतिशील समाज की स्थापना की गयी है, उसमें वैयक्तिक स्वतन्त्रता की स्थिति मानवता की स्वतन्त्रता से सम्बद्ध है । अतः वैयक्तिक स्वतन्त्रता के प्रति उदासीनता या किसी भी प्रकार का पूर्वाग्रह नहीं रखना चाहिए, क्योंकि दायित्व और स्वतन्त्रता

१ ... व्यक्ति स्वतन्त्रता की बात तो करते हैं लेकिन वह जिस मानवीय लक्ष्य आदर्श के लिए होता है या होना चाहिए, वह अपनी शून्य रिक्तता के धुएं में खो जाता है । आज के जीवन के जो बुनियादी तथ्य हैं, उनके वास्तविक तर्क संगत निष्कर्षों और परिणामों की ओर जाने में हमें डर मालूम होता है । कहीं हमें कोई राजनैतिक न कह दे, कहीं कोई हमारी कविता को गद्यात्मक न कह दे । ...... तरह-तरह के इन आत्म-निषेधों के फलस्वरूप अनुभवात्मक ज्ञान-व्यवस्था को हम विकसित नहीं कर पाते, ऐसी ज्ञान-व्यवस्था जो कि स्वानुभूत जीवन-तथ्यों की दृढ़ पीठिका पर खड़ी हुई हो ।'

-- नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध --'मुक्तिबोध' पृ०१२ ।

का नयी कविता के नये प्रतिमान में समान अर्थ दृष्टिगोचर होता है । यदि नयी कविता के उत्तरदायी वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अर्थ संकुचित दृष्टिकोण[1] लेकर न चले तो नयी कविता मानव-स्वतन्त्रता की सच्ची अभिव्यक्ति होगी ।

इस प्रकार नयी कविता के कवियों को सत्य, यथार्थ और आन्तरिक भावों के प्रकाशन के लिए वैयक्तिक स्वतन्त्रता की पद्धति का सहारा ही लेना पड़ेगा, क्योंकि वैयक्तिक स्वतन्त्रता मानवता की स्वतन्त्रता के प्रश्न से जुड़ी हुई है ।

नयी कविता का कवि जहां एक ओर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की बात करता है, वहीं वह दूसरों को अपनी तरह सोचने-विचारने के लिए विवश नहीं करता, क्योंकि वह तो वैयक्तिक स्वतन्त्रता में सब को

---

१ `नये प्रतिमान के रूप में स्वीकृत वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अर्थ है समाज के प्रत्येक व्यक्ति की मुक्ति । इस स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों की मुक्ति में अपनी मुक्ति को पा सकेगा । ऐसे समाज में प्रत्येक व्यक्ति यह प्रयत्न करने के बजाय कि दूसरे व्यक्ति उसका मत स्वीकार करें, उसके विचार को ग्रहण करें, उसका अनुकरण करें, अथवा उसके प्रभाव में रहें । उसका प्रयत्न होगा कि प्रत्येक दूसरा व्यक्ति स्वयं स्वतन्त्ररूप से सोच-समझ सके, निर्णय ले सके और स्वयं अपना स्वधर्म निर्धारित करने में समर्थ हो सके । व्यक्ति अपने विचार में स्वतन्त्र है, अतएव प्रकट करने में उस सीमा तक स्वतन्त्र रहेगा, जिस सीमा तक दूसरों की विचार करने की पद्धति को कुण्ठित न करे ।.....

वस्तुत: जिस गतिशील समाज की स्थापना की गयी है, उसमें समष्टिगत भावना के साथ वैयक्तिक स्वातन्त्र्य की यह निर्विरोध स्थिति सम्भव है, क्योंकि दायित्व(स्वधर्म) के रूप में वह स्वत: मानवता का मौलिक प्रतिमान है, जिसमें विरोध की सम्भावना नहीं है । इस प्रकार दायित्व और स्वातन्त्र्य एक ही प्रक्रिया की (अथवा मूल्य की) दो स्थितियां मात्र हैं... ।

--`दायित्व का नया परिप्रेक्ष्य': डा० रघुवंश

`दायित्व और स्वातन्त्र्य : अविच्छिन्न मूल्य, पृ०३४-३५ ।

स्वतन्त्रता का स्वागत करता है । परन्तु वह अपने भावों की, अपनी संवेदनात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति में पूरी स्वतन्त्रता चाहता है । वह नहीं चाहता कि उसके सोचने-विचारने की रीति में किसी और के विचार,बुद्धि तथा परम्परा का दबाव हो । आज परिस्थितियां पूर्णतया परिवर्तित हैं एवं उथल-पुथल की अवस्था में हैं, ऐसे परिवेश में व्यक्ति की चेतना-शक्ति उसकी आन्तरिक सम्वेदनात्मक अनुभूति से निर्देशित होती है । अत: वह यह दावे के साथ कह देना चाहता है कि अपनी अनुभूति का वह मालिक है और वह जो कहना चाहता है, वह उसका आत्मसत्य, अनुभूत सत्य है । पाठक या आलोचक उसकी भावनाओं,उसकी अनुभूतियों के विषय में अपने अनुसार विचार बनावे, इस पर कवि का कोई भी आग्रह नहीं है । वह अपनी चेतना,अनुभूति की स्वतन्त्रता की मांग कर सकता है । परन्तु दूसरों की चेतना, दूसरों की सम्वेदना को अपने अनुसार नहीं ढालना चाहता । इस प्रकार से देखा जाय तो व्यक्ति स्वतन्त्रता में समष्टि की स्वतन्त्रता की छुपी मांग नयी कविता का एक सशक्त और सर्वथा नवीन आयाम है ।

व्यक्ति स्वतन्त्रता : संकुचित दृष्टि

व्यक्ति-स्वतन्त्रता की मांग कहीं-कहीं इस सीमा तक उच्छृंखलता का रूप धारण कर लेती है, कि काव्य अनुशासन तथा मर्यादा से हीन हो जाता है । व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि अपनी भावनाओं को तथा सम्वेदनाओं को किसी काल्पनिक तथा असंगत स्तर तक उतार दे कि काव्य, काव्य न होकर गाली गलौज का माध्यम बने ।यदि हमें कोई बात कहनी है, कोई सत्य सामने लाना है तो उसे पूरे साहस तथा ईमानदारी से अभिव्यक्ति देनी चाहिए । अभिव्यक्ति की इतनी तीव्र प्रक्रिया होनी चाहिए कि कोई ठोस परिवर्तन सामने आ सके । खाली व्यक्ति स्वातन्त्र्य के नाम पर मनमानी भावनाओं का चित्रण-आरोपण काव्य के लिए अहितकर सिद्ध होगा । काव्य की तथा साहित्य की कोई भी निजी मर्यादा और आदर्श

रहित होकर कोई भी उपलब्धि नहीं कर सकता, यह बात और है कि हर युग में रुचि, दृष्टि और बोध के अनुसार काल की सापेक्षता में, इनका अर्थ परिवर्तित और विस्तृत होता जाता है । आज काव्य जिस विघटित परिस्थितियों से गुज़र रहा है, उसमें ऐसा नहीं है कि बिल्कुल आदर्श हीन तथा अनुशासन हीन बनने की आवश्यकता है । आज की कविता में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की भावना मानवीय भावना से जुड़ी हुई है, इसलिए इतने बड़े उत्तरदायित्व के लिए सुनिश्चित मर्यादा और अनुशासन की आवश्यकता है ।

कहीं-कहीं व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का अर्थ इतना गलत लिया जा रहा है, कि प्रेम जैसी सार्वभौमिक तथा पवित्र भावना को वासना तथा अदमित यौन भावना के रूप में नंगा किया जा रहा है[1] । व्यक्ति का अपनी अनुभूति, अपने विचार पर पूर्ण अधिकार है, लेकिन अनुभूति का इतना छिछलापन काव्य को किस पंक्ति में ला खड़ा करेगा, यह कहने की आवश्यकता नहीं ।

इसलिए यदि व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की भावना को मानवता के सन्दर्भ में लाकर विश्वव्यापी स्तर पर अभिव्यक्ति दी जाय तो शायद व्यक्ति-स्वातन्त्र्य वृहद् अर्थों में मानव की स्वतन्त्रता और उसकी भावनाओं की यथार्थ अभिव्यक्ति से सम्बद्ध हो सकेगा ।

-o-

---

1 कमल पंखुरी से ओठों पर
   छलक गये
   मधु कण
   कुम्हला रहीं चाँदनी
   बार-बार
   बार-बार
   सिकुड़ मुँह टेढ़ा कर
   सौरभ की चाह !
'नयी कविता', अंक ८, सं० डा० जगदीश गुप्त, विजय देवनारायण साही
   'अनुशासन' -- गिरधर राठी, पृ०७१

(ग) परम्परा से विनिर्मुक्तता

~~ऐतिहासिक~~:आधुनिकता के सन्दर्भ

नयी कविता का संघर्ष परम्परा से विनिर्मुक्तता का संघर्ष है । नयी कविता को उचित स्थान सामने आने से पूर्व वादों की लम्बी परम्परा सामने थी । मध्ययुगीन सारा काव्य, गुरु प्रशंसा, नख-शिख, साहित्य-सिद्धान्त, छंद तथा अलंकार आदि की परम्परा से प्रभावित था । उनकी स्वतन्त्र चेतना इस सीमा तथा सिद्धान्तों के नियम में बद्ध थी कि उसका पृथक् कोई अस्तित्व ही नहीं था । अतः समीकृत नीरस, ऊबा देने वाला, पुरातन काव्य ही उलट-फेर के वाग् कौशल के साथ प्रस्तुत होता रहा । इसलिए मध्यकालीन काव्य में युग-बोध के दर्शन नाममात्र को भी नहीं हुए ।

इसके बाद आधुनिक काव्य छायावादी काव्य की परम्परा की लीक पीटता हुआ उदित हुआ । सभी कवि एकान्तवास के अवसाद में से भरे गीत गाने में निमग्न हो गये । सारा काव्य विरह-प्रणय का तथा यौन भावना से आक्रान्त था । या यों कहें कि छायावादियों ने प्रकृति में काल्पनिक एवं सूक्ष्म सम्बन्धों की स्थापना की रहस्यात्मक, काल्पनिक अलौकिक विचारों की स्थापना की । बाह्य जगत से मुँह फेर ये कवि न जाने अपने अन्तर्मन में क्या देखना चाहते थे, ये वे ही समझ सकते हैं । `कामायनी` के प्रकाशित होते-होते यह वाद भी अपनी परम्पराप्रियता के बोझ में स्वयं दबकर अपना अस्तित्व खो बैठा ।

इसके साथ ही सामाजिक अव्यवस्था, अराजकता, अनीति के वातावरण से राष्ट्रीय चेतना का जागरण प्रगतिवाद के नाम से हुआ । परन्तु यह धारा भी कोरे नारेबाजी के शोर में विलीन हो गई । केवल व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक स्थिति में सुधार की बात उठाई गयी, लेकिन अव्यवस्था के चक्र में पिसती-टूटती मानसिक अस्त-व्यस्तता के लिए फिर कोई प्रयत्न गम्भीरता से नहीं किया गया । सारा काव्य सुधारवादी दृष्टि से संचालित

र हो रहा था ।

इसके बाद सप्तकों के रूप में परम्परा से बंधा एक और इस्तादार प्रयोगवाद के नाम से आया । हालांकि अज्ञेय ने प्रयोग का अर्थ प्रयोगशीलता से लगाया[1], तथापि ये कवि विषय-तत्व की दृष्टि से कमजोर, शिल्प तत्व के प्रवर्तक थे, यह मानने में ज़रा भी मुझे संकोच नहीं होता । ये पाठक आलोचक वर्ग पर एक प्रकार से रौब-गालिब करना चाहते थे । सभी अहं में डूबे 'मैं-मैं' की दुहाई देने लगे थे । कुछ तो लेखक इस सीमा तक स्वतन्त्रता के पक्षपाती थे कि उनकी चेतना-दृष्टि,उनका भाव-बोध समय की मांग के आगे केवल रचनाकार की मांग पूरी कर रहा था । ऐसी बेसिर-पैर की निरर्थक कविता से वे अपने को पिछली काव्य-परम्परा से अलग दिखाने का मिथ्या प्रयास कर रहे थे । इसके अतिरिक्त कुछ कवि पाठकों को भ्रमित करने के लिए आड़ा-तिरछी,छोटी-बड़ी,खड़ी बैंड़ी, डाशनों,कामा, फुलस्टाप के गोरखधंधे में अपने भावों के छिन्न-भिन्न रूप को व्यक्त कर अनुचित कौशल का सिक्का जमानेके का प्रयासकर रहे थे । ऐसे कवियों की रचना-कुशलता तो दृष्टिगोचर होती थी, लेकिन भावानुभूति,संवेदना अभिव्यक्ति के धरातल पर आते-आते अपना रूप, अपना सत्य खो बैठती थी । इस तरह की कविता-रचना से आज की संक्रमण-कालीन परिस्थितियों को समाधान नहीं मिल सकता था । कविता रूपवादी (फार्मलिस्ट) होती जा रही थी । उसके विस्तार की सीमा-परिधि संकुचित होती जा रही थी ।

आज की कविता की चेतना समाज के छोटे-से-छोटे प्रबुद्ध-साधारण, निम्न-उच्च सभी जाति वर्गों की उस विषम परिस्थिति से संचालित होती है,जिन परिस्थितियों में व्यक्ति नैतिक पतन की ओर जा

---

१ 'वे प्रयोग का कोई वाद नहीं है । हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं ।
प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य नहीं है... ।'
'तार सप्तक' -- अज्ञेय,'वक्तव्य',पृ०७६ ।

रहा है, सारी व्यवस्था, सारी सभ्यता विषमता ग्रस्त है । लूट-खसोट या यों कहें शोषण-उत्पीड़न सर्वत्र व्याप्त होता जा रहा है । यहां तक कि एक वर्ग में भी कई वर्ग होते जा रहे हैं । शिक्षक वर्ग की ही बात लें तो हम देखते हैं कि विश्वविद्यालय की श्रेणी के शिक्षक से लेकर प्राथमिक स्कूल के शिक्षक तक में धरती और आकाश का सा भेद दिखाई देगा । सरकारी पदों में भी वैषम्य की खाई खुदती जा रही है । मजदूर से लेकर पूंजीपति सेठों के साथ जिस प्रकार की दूरी है, वह ध्रुव-नालिक के समान है । मानव सम्बन्ध भावनाओं की दृष्टि से इस सीमा तक टूट गये हैं कि सर्वत्र क्षोभ, क्रोध, निराशा, उत्पीड़न, विसंगति के साथ-साथ एक घने अवसाद की लहर छा गयी है । इस तरह के वातावरण में प्रयोगवादी जिस मुख्य प्रवृत्ति से आक्रान्त लगते हैं, वह है उनकी रूपवादिता तथा अपने को व्यक्तिगत स्तर पर सब कुछ समझने की प्रवृत्ति । इस विचार से नयी कविता को जिन खुरदुरे यथार्थ की पगडण्डी पर चलना पड़ा, वह थी आज की मानवता की टूटती-फूटती भावनात्मक पगडंडी । स्वतन्त्रता के बाद तो मानव की स्थिति और भी शोचनीय हो गयी, जिस प्रकार की व्यवस्था सुधार की आशा की गयी थी, जैसी सुरक्षा और सम्पन्नता की आशा की जाती थी, उसकी बिल्कुल उल्टी परिणति हुई । व्यक्ति और समाज दोनों की स्थिति दिन-प्रतिदिन अधिक दयनीय होती गयी । नये कवियों ने सजग होकर अपने युग के अखण्ड बोध को, उसकी जटिलताओं को समझा और उसके लिए उनकी चेतना नवीन धरातल पर नये भाव-बोधों के साथ अवतरित हुई ।

इसके लिए नये कवियों ने समस्त रूढ़ियों, परम्पराओं से विनिर्मुक्तता का आग्रह किया । मानव के अन्तर्मन में उठते-मचलते भावनाओं एवं सम्वेदनाओं की उथल-पुथल को उसके अन्तर्मन में पैठकर, अपनी चेतना के साथ सम्पृक्त करके अभिव्यक्ति दी । जीवन-मूल्य इस तीव्रता से परिवर्तित हो रहे हैं कि उनके लिए चेतना को कलीभूत रूप में अभिव्यक्ति दे पाना सम्भव नहीं । नयी कविता

के कवि का संघर्ष यथार्थ का संघर्ष है । वह किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह या आदर्श या सिद्धान्त की आड़ में अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति नहीं देता । उसकी सम्वेदना मानवीय यथार्थ से संचालित होती है । उसके लिए शिव-अशिव सत्य-असत्य का प्रश्न गौण हो गया है । चेतना बिम्ब का प्रत्येक अंश जो अपने में सत्य है, युग की टकराहट से उद्भूत है, वही उसकी संवेदना, उसकी भावना के रूप में अभिव्यक्ति पाता है ।इसीलिए नयी कविता की चेतना,रचनात्मक कम युगीन यथार्थ के बीच संघर्षरत दृष्टिगोचर होती है । आज की समस्या इतनी कठिन हो गई है कि मानव-मूल्य,आस्था-विश्वास के स्वर झटके से टूट रहे हैं । इसलिए आज के कवियों की समस्या का विषय कोई काल्पनिक मानव,या किसी प्रकार की यश-लोलुपता से उद्भूत चेतना नहीं है,बल्कि आज का संघर्ष उस मानव के लिए है, जो तिल-तिल करके घुट रहा है । सर्वत्र उत्पीड़न,आशा-निराशा, आत्मसंघर्ष,विद्रोह,व्यंग्य,विद्रूप,अनास्था और विडम्बना के दृश्य ही दिखाई देते हैं । ऐसी विषम परिस्थितियों में कवि ने जो कुछ भोगा-सहा,उसकी अभिव्यक्ति के लिए पुराने शब्द,पुराने प्रतिमान,भाषा , सब कुछ अल्प थे । उसके लिए कवियों ने समस्त छन्द अलंकार के बन्धनों से भाषा को मुक्त किया तथा जिस भाषा-शैली को अपनाया वह आधुनिकता की मांग के आगे नंगी और तेज भाषा के रूप में सामने आयी ।

परम्परा से विनिर्मुक्तता के लिए कवियों ने सर्वप्रथम आत्मानुभूति के लिए व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की मांग की । यह व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की मांग प्रयोगवाद में उठाई तो गई,लेकिन आज के युग की मांग में उसकी पूर्णाभिव्यक्ति हुई । यही नयी कविता का व्यक्ति स्वातन्त्र्य व्यक्तिगत सीमा से होता हुआ समष्टिगत भावना में विस्तार पाता है । इसीलिए कविता पर आज जो उत्तरदायित्व आ पड़ा है, उसके लिए पुरानी परम्परा, पुराने मूल्य, पुराने बिम्ब, पुराने प्रतीक अधूरी बदल परिस्थिति की ,वासनाओं को,संवेदनाओं की उथल-पुथल के संघर्ष को भली भांति नहीं चित्रित कर सकते हैं । इसीलिए नयी

कविता की जो आधुनिकता है, वह परम्परा से निर्मुक्तता की मांग करता है[१]। वह आपसी सम्बन्धों की आड़ में हो रहे अमानवीय व्यवहार को तोड़ देना चाहता है। नयी मानवीय मूल्यों की सर्जना करना चाहता है । इसके लिए वह यह स्वीकार करता है कि आज के अखण्ड युग-बोध को अभिव्यक्ति पुरानी परम्पराओं, मान्यताओं की दृष्टि से नहीं हो सकती । क्योंकि बार-बार 'बर्तन घिसने' पर उसकी चमक घिस जाती है । आज व्यक्ति के भिन्न अन्तर्मन के टूटते-बिखरते संघर्ष में निरत व्यक्ति की मानसिक सम्वेदना के तनाव का चित्रण करना है, विचार और वितर्क के नये बोध उभारने की आवश्यकता है । इसके अतिरिक्त नयी कविता का कवि अधिक सम्वेदनशील तथा सचेता है । इसलिए वह किसी भीप्रकार के सैद्धान्तिक पक्ष को बिना विचार के नहीं स्वीकार करता । उसकी चेतना का प्रवाह युग की समस्याओं से आगे बढ़ता है । एक ओर वह अधिक संवेदनशील, समस्त समाज के संघर्ष को अपने में झेलता हुआ कुछ-कुछ एकान्तप्रिय होता जा रहा है तो दूसरी ओर युग की सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक समस्याओं से अपने को अलग नहीं कर पा रहा है । इस प्रकार की सन्तुलित -असन्तुलित भावनाओं को बंधी-बंधाई परिपाटी में अभिव्यक्ति दे पाना सम्भव नहीं और न ही इस तरह आज के मनुष्य का अपनी विषम परिस्थितियों से लड़ने का, टूटने का संघर्ष ही भली भांति प्रकट हो सकता है ।

---

१ .... कि कविता पर कवि के व्यक्तित्व का कहीं हल्का कहीं गहरा रंग चढ़ा रहता है । पर परवर्ती कविता, धर्म, नीति और दर्शन आदि के अंकुश से बंधी रही है । लेकिन नयी कविता का गठबन्धन इस प्रकार की किसी मतवादी विचारधारा से नहीं हुआ है । फिर भी वह सर्वतंत्र स्वतन्त्र और निरपेक्ष नहीं है । वह बंधी है तो नये मानव मूल्यों से ।` ....
'आधुनिक कविताएं- विवेचन तथा संकलन' सं०-रणधीर सिंहा पद्मनारायण, पृ०६२

इसलिए सभी परम्परित सम्बन्धों को तोड़ कर मानव-सम्बन्ध की स्थापना करना चाहता है ।

आज की कविता कवि के आत्मपरक अनुभूति की नींव पर खड़ी है, उसके लिए कुछ भी अवहिष्कार्य या वर्जनीय नहीं है । उसकी चेतना आज छोटे-से-छोटे अत्यधिक साधारण लगने वाले पदार्थों के उद्घाटन की भी मांग करती है, जिन पदार्थों पर या तो कवि की दृष्टि गयी नहीं थी, अथवा उसकी सम्मति में ये पदार्थ कविता के विषय नहीं समझे गये थे । आज मानव -मन और मानव-समाज पुराने ज़माने से बहुत आगे निकल आया है[१] । इसलिए उसकी नयी व्याख्या होनी चाहिए । उसके लिए कवि की चेतना का समग्रता के साथ अभिव्यक्त होना चाहिए । इसके लिए वह भाषा का नवीकरण कर सकता है, नये उपमान, नयी बिम्ब योजना और नये प्रतीक का उपयोग कर सकता है । हो सकता है, प्रारम्भ में पाठक-आलोचक कवि को इस सर्वथा परिवर्तित विचार-धारा से तादात्म्य न स्वीकार कर पाये, लेकिन नयी नयी कविता यद्यपि आज के मानव के विघटन, टूटन के संघर्ष की अभिव्यक्ति है, इसलिए उसके लिए पाठक या आलोचक वर्ग को यह आक्षेप नहीं लगाना चाहिए कि नयी कविता उच्छृंखलता की ओर बढ़ रही है तथा सहज बोधगम्य नहीं है । क्योंकि विचारों की ऊंचाई और गहराई के

---

१ मानव समाज और मानव-मन अरस्तू या मम्मट के ज़माने से बहुत आगे निकल आया है व इसलिए विशुद्ध रसवादी और शाश्वत कलावादी भी चीन के आक्रमण के बाद युग-धर्म की बात करने लगे हैं और पग-पग पर मार्क्स का नाम जपने वाले रस-तरंग लिखने लगे हैं... ।

मेपल-- प्रभाकर माचवे (भूमिका), पृ० १०

लिए पाठक और आलोचक में भी वैसी गहराई और ऊंचाई की आवश्यकता होगी[१]। जिस तरह माध्यम और उपकरणों की संकीर्ण रूढ़ियों को तोड़कर सहज अनुभूति का चित्रण किया गया है, वैसा ही पाठक अथवा आलोचक वर्ग भी करे।

अहंवाद

नयी कविता ईश्वरवाद के आगे अहं का उद्घोष करती है। आज मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है। कहीं-कहीं वह ईश्वर की शक्ति के आगे अपनी शक्ति का परिचय देता हुआ ईश्वरवाद की परम्परा का खण्डन करता है, कहीं-कहीं वह अपना सत्ता का उद्घोष ईश्वर की सत्ता के अन्तर्गत करता है। जिस अहं का वह उद्घोष करता है, वह पहले की कविता में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता है। लेकिन उसका अर्थ यह नहीं लगाना चाहिए कि कविता में अहंवाद का रूप विकृत हो गया है। आज के युग में उसका जीवन मूल्य के सन्दर्भ में कुछ अर्थ नहीं बल्कि आज की कविता में युग-विशेष की टूटती हुई व्यवस्था और उभरती हुई अराजकता के बीच नये मानव-मूल्य सहज अंगड़ाई लेते हुए प्रतीत होते हैं। यह स्थिति नयी कविता में संवेदनशीलता और स्व-चेतना की अधिकता के कारण आ सकी है। तभी कवि कहता है कि मैं केवल

१..... `कवि के लिए कुछ भी वर्जनीय या बहिष्कार्य नहीं। न कोई वर्जित अनुभूति, न किसी भाषा के शब्द, न कोई राजनैतिक-सामाजिक मत-वाद, न कोई दर्शन आम्नाय.... शर्त इतनी ही है कि वह सब खाद है जिससे एक नया अंकुर पनपता है, जिसे कहते हैं कविता।`

-- मेपल-- प्रभाकर माचवे (भूमिका), पृ०६

ईश्वर से छोटा और सबसे बड़ा हूं।[1]

नयी कविता ने सभी परम्पराओं और रूढ़ियों को अपदस्थ करके नया यथार्थपरक भाव-भूमि पर संचरण किया। इसीलिए उसका कोई वाद नहीं कहा जा सकता। आधुनिकता के बोध की अभिव्यक्ति नयी कविता में हुई है। नयी कविता के लिए यह अत्यधिक गौरव की बात कही जा सकती है कि इसने मानव-मन को उस गहराई के साथ जिया है, भोगा है, उसकी समस्याओं के संघर्ष को, उसके तनाव को अभिव्यक्त किया है, उसकी चेतना-परिधि का विस्तार इतना विशाल और विस्तृत है कि नयी कविता का कोई रूप निश्चित कर पाना इतना सरल नहीं है। आज मानव मन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं और वर्गगत विषमताओं से इस तरह उद्वेलित हो उठा है कि उसकी अभिव्यक्ति को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता है। इसीलिए नयी कविता का आग्रह भाषा, छन्द, लय, को और न होकर समय के अखण्ड-बोध की ओर है[2]। नयी कविता के लिए यह बात अत्यधिक

---

१ भगवान
तुम सबसे बड़े हो
मैं तुमसे छोटा हूं
बाकी लोग मुझसे छोटे हैं...
--धुएं की लकीरें--संयुक्तांक लक्ष्मीकान्त वर्मा, विपिन अग्रवाल
प्रार्थना-विपिन कुमार अग्रवाल, पृ०१

२ पिछले कुछ वर्षों से आधुनिक कविता में विवाद का विषय उसका रूप(फार्म) या कह कि, उसकी तथाकथित रूपहीनता(फार्मलेसनेस) रही है। अपने संकीर्ण अर्थ में रूप का, तात्पर्य छन्द और पदों के विशिष्ट पैटर्न से लगाया जाता है, विस्तृत अर्थ में यह कविता में प्रयुक्त बिम्बों और लय सम्बन्धी अन्य समस्त विशिष्टताओं के लिए काम में आता है। अपने संकीर्ण और प्राचीन अर्थ में 'रूप' का उपयोग आज कोई मायने नहीं रखता .... ।'

--'युगचिन्तन'-- शरद देवड़ा
'नयी कविता के पक्ष में एक वक्तव्य'-- मार्कण्डेय राघवेन्द्र ,पृ०७२ ।

स्पष्टरूप में स्वीकार की जानी चाहिए कि जब कविता मानव-प्रतिष्ठा के महान् प्रश्न से जुड़ी हुई है तो व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य की बात का उठना उतना ही स्वाभाविक था, जितना अन्धकार लुप्त हो जाने के बाद दिन के आगमन की स्वाभाविकता ।क्योंकि क्योंकि जब कवि आज के समाज में फैली विसंगतियों,अत्याचार, से विघटित होते मानव की यथार्थपरक चेतना, संवेदना के साथ अपने में नहीं पियेगा तो वह उसे मानव के मन के उद्वेलन को पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत नहीं कर सकेगा । इसलिए बहुत अर्थों में व्यक्ति स्वातन्त्र्य के साथ परम्परा से निर्मुक्तता का प्रश्न जुड़ा हुआ है । क्योंकि आज जिन परिस्थितियों में व्यक्ति जी रहा है, उसको प्रस्तुत करने के लिए कल्पना या भावुकता से काम नहीं लिया जा सकता । उसके लिए नये नये सिद्धान्त,नये विधान गढ़ने होंगे । पुरातन परम्परा आज के भाव-बोध की गहनता को,उसकी विवशता का सही चित्रांकन नहीं कर सकेगी। इसलिए कवि का प्रयास आज की स्थिति को उभारने के लिए आधुनिकता की ओर है, वह अपनी चेतना को विभिन्न मनःस्थितियों से गुजार कर व्यक्ति के अन्तर्मन के उद्वेलन को सही दिशा में अभिव्यक्त करना चाहता है । इसलिए इस प्रकार के प्रयास के प्रति किसी प्रकार की उच्छृंखलता का भाव जुड़ा नहीं समझना चाहिए ।

मानव-मन को जितना महत्व मिला उतना किसी युग में नहीं मिला । आज वह जिन समस्याओं से गुजर रहा है, उसकी अभिव्यक्ति के लिए परम्परा से चिपक कर नहीं रहा जा सकता, इसलिए वह परम्परा के प्रति, इतिहास के प्रति आक्रोश के भाव प्रदर्शित करता है । उसका इशारा उस ओर है जहाँ सम-सामयिक परिवर्तित युग-बोध में इतिहास, पुरानी मान्यताओं तथा जीवन-मूल्यों का अस्तित्व निरर्थक सिद्ध होने लगा है । उसकी चेतना नये युगबोध

से संचालित होना चाहती है[1]। कवि चेतना के आयाम उन धरातलों का संस्पर्श करना चाहते हैं, जहाँ से वह 'गलत परिणतियों', 'क्रमनिबद्ध', व 'सन्निपातावस्था' में सन्लिप्त संस्कृति से अपने को एक झटके में चाहे न तोड़ पाये, लेकिन सत्य के चरण को छूने की सर्जनात्मक पीड़ा को अपने में अनुभव कर सके। हर पुरातन पद्धतियों, सिद्धान्तों का घटन, उपयोग नवीन-युग-बोध के सन्दर्भ में निरर्थक, प्रभावहीन सिद्ध हो चुके हैं, इसकी सत्यता को आज की परिस्थिति ने कवि को समझा दिया है[2]।

इस तरह यह मानने में मुझे तो किंचित् भी संकोच नहीं कि आज नयी कविता में जिस परम्परा से विनिर्मुक्तता की बात की जा रही है, उसकी पृष्ठभूमि में मानवता की प्रतिष्ठा का महत् उद्देश्य छिपा है, युग के बोध का प्रश्न छिपा है। अत: यह कहना दोषपूर्ण न होगा कि व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की माँग परम्परा से विनिर्मुक्तता की ओर भी एक इशारा है, और इन दोनों भाव-बोधों के पीछे छिपा है, मानवता की प्रतिष्ठा का महत् उद्देश्य।

---

१ बदसूरत पर्दों
बेहूदी घटनाओं
अनचाहे योगों का
एक बड़ा फूहड़ सा लोंदा गढ़ गया है
(जीवन में)
हम अन्ध जिसके भीतर घुमड़ रहे
लोंदे की शिला में डूबते रहे . . . ।
-- 'संक्रान्त' -- कैलाश वाजपेयी
'इतिहासबद्ध', पृ०१२

२ परिणतियाँ गलत सभी
क्योंकि मूलत: [illegible]
संस्कृति का सारा क्रम
क्रम-निबद्ध सन्निपात
आदमी : [illegible]
सत्य : भीड़ का नारा
हर व्यक्ति
एक बहुत गहरे कुएँ का मेढक ।"
'जो बंध नहीं सका' -- गिरिजाकुमार माथुर
इतिहास— एक असंभव स्थिति, पृ० [illegible]

साहित्य की प्रत्येक विधा जब किसी पूर्ववर्ती विधा को कुछ नवीन तत्त्वों से अपदस्थ कर देती है तो वही विधा नयी लगने लगती है, पूर्ववर्ती विधा कमजोर और पुराना । नयी कविता के साथ भी यही हुआ, नयी कविता ने परम्परावादिता से हटकर कुछ नया देने, कुछ नया कहने का साहस किया । परम्परा से हर युग में विद्रोह रहा है । छायावाद ने सूक्ष्म तत्वों का सहारा लिया, मन के सूक्ष्म अंशों को उद्घाटित किया । स्थूलता से सूक्ष्मता की यह प्रगति मध्ययुगीन तथा बाद में द्विवेदी युगीन काव्य से नितान्त बदले हुए रूप में थी । यह सूक्ष्मता प्रगतिवाद तक में बहुत पीछे छूट गयी । उसके स्थान पर यथार्थपरक दृष्टि हो गयी । इसलिए परम्परा से हटकर कुछ देने की प्रवृत्ति तो हर युग की काव्य-विधा में स्पष्ट दिखाई देती है ।

यहां मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि चाहे हर युग में पिछली परम्परा के प्रति विद्रोह की प्रवृत्ति रही हो और उसने विद्रोह के द्वारा उस पूर्ववर्ती परम्परा को अपदस्थ करके नयी परम्परा विकसित की हो, पर नयी कविता का परम्परा के प्रति विद्रोह व्यापक और विस्तृत अर्थों में मात्र पुरानी जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं से ही नहीं था,बल्कि कविता का विद्रोह तो आज की सम-सामयिकता में धराशायी होते जीवन मूल्य, सत्यं शिवं सुन्दरं आदर्श-यथार्थ की परम्परा तथा सामाजिक सम्बन्धों की परम्परा के प्रति था । आज युग जिन परिस्थितियों से गुजर रहा है उसमें हर प्रतिष्ठित पूर्ववर्ती मान-प्रतिमान आज के सन्दर्भ में अर्थहीन लगते हैं । इसलिए नयी कविता ने काव्य के भावपक्ष का तो नवीनीकरण किया ही, साथ-साथ काव्य के शिल्पपक्ष के विस्तार को भी नया मोड़ दिया ।

नयी कविता के भाव पक्ष की नयी परम्परा

सत्य का परिवर्तित रूप:-

काव्य के शिव तत्त्व में नयी कविता ने 'सत्य शिव सौन्दर्य' की परम्परा को नितान्त नवीन तथा परिवर्तित रूप में

स्वीकार किया है । मनुष्य एक सचेतन प्राणी है, वह अपने चारों ओर के परिवेश से सम्पृक्त रहता है, इस स्थिति में वह सत्य-असत्य को अनुभव करता रहता है । किसी वस्तु को यदि अपने बाह्याकार में सत्य की प्रतिष्ठा भी प्राप्त है, तो आवश्यक नहीं कि, कवि के लिए भी वह सत्य सत्य ही माना जाय । वस्तु की सत्यता कवि की अनुभूति की आंच में तप कर सत्य और असत्य कही जा सकती है । अनुभव से अनुभूति तीव्र और गहरी स्थिति है, जिसमें व्यक्ति बौद्धिकता के स्तर से होते हुए सत्य और असत्य को परखने की स्थिति में पहुंचता है । काली रात अपने कालेपन में दु:खमय लगती है, और सवेरा समस्त जागृत चेतना के साथ सुखमय । लेकिन कालेपन की दु:खमयता तथा सवेरे की चेतन सुखमयता की सत्यता कवि के लिए निश्चित सत्य नहीं हो सकते । उसके अनुभूति के क्षणों में हो सकता है काली रात भी आनन्द मय हो जाय, और सवेरा भयानक, डरावना । इसलिए नयी कविता पुराने सत्यों की परम्परा पर विश्वास न कर आत्मानुभूति की सत्यता को महत्वपूर्ण मानती है । आत्मानुभूति से सत्य का विवेचन उसी स्थिति में उचित और पूर्ण माना जा सकता है । जब वह सत्य व्यक्तिगत सीमा से उठकर समष्टिगत सीमा में विस्तार पा सके । अनुभूति में भी इतनी क्षमता, बौद्धिकता और आलोचनात्मकता होनी चाहिए कि जिस सत्य को वह खोज निकाले, वह सत्य असत्य की अवहेलना करके न उद्भूत हुआ हो, बल्कि एक नया, कवि मन का आत्मअनुभूत सत्य हो, जो व्यापक स्तर पर जन-जीवन का सत्य बन सके । कहीं-कहीं पर ऐसे सत्यों की अवतारणा हुई है, लेकिन जहाँ कवियों ने ऐसे भी सत्यों की अवतारणा की है, वो नितान्त प्रत्युत्क ही सिद्ध हुए हैं । लेकिन नयी कविता के सन्दर्भ में यह तो स्वीकार ही किया जायगा कि नये कवियों ने सत्य की पूर्व परम्परा का निषेध कर सत्य और असत्य को परखने की नयी दृष्टि दी है, नया सत्य खोजा है । सत्य की प्रस्तुती की एकांगिता के स्थान पर असत्य का भी खुलकर

चित्रण किया है[१]।

शिव का परिवर्तित रूप

सत्य से जुड़ा हुआ दूसरा तत्व है `शिव`। नयी कविता यह नहीं स्वीकार करता कि साहित्य केवल शिव-तत्वों की सृजन की अनुमति देता है। जीवन मात्र सत्य-शिव-सुन्दर हो नहीं हो सकता प्रत्येक वस्तु के, प्रत्येक स्थिति के सदैव दो पक्ष होते हैं। यदि एक पक्ष सुन्दर, प्रभावशाली और कोमल होगा तो दूसरा विकृत, प्रभावहीन तथा परुष। किसी भी वस्तु के एक अंश का, एक पक्ष का चित्रण वस्तु की समग्रता को प्रस्तुत नहीं कर सकता। भारतीय साहित्य में तो सत्य, शिव सुन्दर की कल्पना असत्य अशिव, असुन्दर का निषेध करके ही की गयी थी। लेकिन जो वस्तु सुन्दर है, वह सर्वयुगीन सुन्दर नहीं हो सकती और जो शिव है वह सदैव शिव नहीं हो सकता। जीवन-क्रम में काल, रुचि और बोध के अनुसार सदैव मूल्य बदलते रहते हैं, आज के युग-बोध में केवल शिव तथा सुन्दर तत्वों की कल्पना युग के गहरे जटिल भाव-बोध के उत्तरदायित्व को व नहीं सम्हाल सकती है। युग जिन स्थितियों में गुजर रहा है, वहां सत्य-असत्य, शिव-अशिव, सुन्दर-विकृत का भेद खोलकर रख देना होगा। शिव की समग्रता में कितने गुणों का समाहार है। शिव केवल निर्माता ही नहीं संहारकर्ता भी है। यदि सदैव निर्माण-हो-

---

१ ... प्रेम क्या वह है जो गन्दे नालों से
लाशों से खींचकर निकाला है और फिर
पुलिस ने पहुंचकर पंचनामा किया है... ।
--`नयी कविता`, अंक-८, सं०- डा० जगदीशगुप्त, विजय देव नारायण साही
`प्रेम` — विष्णु खरे, पृ० १३६।

निर्माण होगा तो पृथ्वी की क्या स्थिति हो सकती है, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है । नये कवियों की दृष्टि में भी शिव की कल्पना इसी रूप में होनी चाहिए । अशिव की कल्पना सृजनात्मकता के लिए होनी चाहिए न कि विध्वंसात्मकता के लिए । हाँ अशिव का चित्रण यदि शिव को दृष्टि प्रदान करता है तो वह अशिव भी शिव ही माना जायगा । किसी हठवादिता आक्रोश या भावावेश में आकर प्रत्येक वस्तु में अशिव तत्वों को देखना, आज की कविता की दृष्टि नहीं होनी चाहिए, बल्कि अशिव तत्वों के उद्घाटन से शिव-अशिव में एक भेद-दृष्टि का निरूपण होना चाहिए । सृजनात्मकता तथा अनुभूति के क्षणों में केवल शिव तत्व ही उद्घाटित होते हैं ऐसा किसी भी आधार पर नहीं माना जा सकता । इसलिए किसी भी रचना की सार्थकता में शिव-अशिव तत्व उतना महत्व नहीं रखते, जितना उस रचना का अनुभूत सत्य होता[1] । इस प्रकार नयी कविता में शिव तत्वों की कल्पना ने शिव के विषय में प्रचलित पूर्व परम्परा का निषेध कर शिव और अशिव तत्वों को काव्य के लिए अनिवार्य माना है । लेकिन केवल अशिव तत्वों को उद्घाटित कर देने मात्र से ही काव्य का उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता, कवियों का उत्तरदायित्व पूरा नहीं हो जाता । जब समुद्र मन्थन का साहस किया है तो निश्चय है कि उसमें अनमोल रत्न भी होंगे, विष भी होगा । लेकिन जब मोती और विष दोनों को सहर्ष स्वीकार किया है तो उस विष को पीकर पचाने का काम भी करना होगा । केवल अशिव तत्वों को खोलकर रख देने से समस्या का निदान नहीं हो

---

१. 'प्रत्येक रचना अथवा कलाकृति की सार्थकता अनुभूत सत्य होता है न कि शिव होना । मेरा तो व्यक्तिगत मत यह है कि प्रत्येक अनुभूत सत्य की उपलब्धि अपने-आप में ही शिव है । यदि वह कुछ किसी सच्चे कलाकार को छू लेता है तो उस कलाकार की व्यक्त अनुभूति पवित्रता और शिव भावना से ओत-प्रोत होगी ।' — 'नये प्रतिमान पुराने निकष' — लक्ष्मीकान्त वर्मा, 'साहित्य में शिव की कल्पना', पृ०७०-७१ ।

सकता , बल्कि अशिव जब शिव की दृष्टि प्रदान करेगा तभी अशिव के चित्रण की सार्थकता हो सकती है । नये कवियों में अभी ऐसे शिव की आवश्यकता है, जो समाज में, देश में व्याप्त अशिव तत्वों के विष को सहज पचा भी सके, ऐसी केन्द्रीय दृष्टि दे सकें जो अशिव तत्वों के निरूपण के मोह को सार्थक कर दे ।

सुन्दर का परिवर्तित अर्थ

सत्य, शिव से जुड़ी तीसरी परम्परा सुन्दर की परम्परा है । कोई भी वस्तु देश, काल की सीमा में सर्वत्र सुन्दर नहीं कही जा सकती । प्रकृति का अनुपम खजाना यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है, उस खजाने में मोती भी है और कंकड़ भी । लेकिन यह कहां तक तर्कसंगत और औचित्यपूर्ण है कि हम केवल मोती-मोती ही चुन लें, कंकड़ की अवहेलना कर दें, मोती तो कंकड़ पत्थर में ही पनपते हैं । ठीक यही दृष्टि काव्य में भी होनी चाहिए । जो तत्व हमारी दृष्टि को हमारी रुचि को आकृष्ट और तुष्ट करते हैं, वही सुन्दर है, लेकिन जो तत्व हमें न तो आकृष्ट करते हैं और न किसी प्रकार की दृष्टि प्रदान करते हैं, वे तत्व सर्वथा नगण्य नहीं माने जा सकते हैं । नयी कविता में सुन्दर के विषयमें भी यही धारणा है , किसी वस्तु का स्वाद कवि की अनुभूति को कैसा लगा, और उसकी अभिव्यक्ति कितनी सम्प्रेषणीय है यह है किसी तत्व की सुन्दरता और असुन्दरता । मात्र सुन्दर वस्तुओं से संसार नहीं भरा पड़ा है, सुन्दरता की पहचान असुन्दरता की तुलना में ही हो सकती है । जन-जीवन के टूटे-फूटे चित्र, मनःस्थितियों के सही चित्रण में, कवि को पूरी ईमानदारी के साथ पूर्ण आत्माभिव्यक्ति का परिचय देना होगा । जिन तत्वों से समाज की, देश की चेतना की कमजोरी है, उन तत्वों को ज्यों-का-त्यों उभारना होगा । समाज में व्याप्त विषमता, विशृंखलता, मानव-मन के टूटने-बिखरने की परिस्थिति में काव्य यदि केवल सुन्दर तत्वों का ही निरूपण करेगा तो न तो कविता सुग्राह्य होगी और न कवि दायित्व वाहक । नयी कविता ने अपने युग को अच्छी तरह से

समझने की कोशिश की है, उसके शिव-अशिव, सत्य-असत्य,सुन्दर-असुन्दर पक्षों को अपनी अनुभूति द्वारा सत्य और यथार्थ के धरातल पर उतारा । काव्य की पुरानी परम्परा कि काव्य केवल सत्य-शिव-सुन्दर की दृष्टि से लिखा जाना चाहिए, की दृष्टि एकांगिता की दृष्टि है, जीवन की एक-पक्षीय व्याख्या है । जितना जन्म लेना सुन्दर है,सत्य है, शिव है उतनी मृत्यु भी सुन्दर हो सकती है । बस अन्तर दृष्टि का है । इसलिए नयी कविता ने `सत्य शिव सुन्दर` की परम्परा को एक नये अर्थ में स्वीकार किया है,उसकी चेतना,उसकी बौद्धिकता तथा दृष्टि का विस्तार इतना व्यापक है कि वह किसी भी तत्व, किसी भी भाव-बोध,किसी भी परिस्थिति से अपने को असम्पृक्त नहीं रख सकता[1] ।

---

१ मैं एक ऐसे शहर में आ गया हूं
जहां और कुछ नहीं,
केवल सड़कें हैं ।.....
ये सड़कें नहीं
ये बड़े-बड़े नाग और लोग मंग-चढ़ा
लेटे हैं.....
जिनकी फुनगियों पर कौवे
`एक साथ बैठ
विष्टा कर रहे हैं--
यह सब देख सुन कर मैं
कै कर बैठा हूं.... ।
-- `नयी कविता` अंक ८ सं०डा०जगदीश गुप्त, विजय दे०ना०सा०
`कौवे का प्रतीक्षा -- अजितसिंह , पृ०५५-५६ ।

आदर्श और यथार्थ का नया अर्थ

जिस प्रकार नये कवियों ने 'सत्य शिव सुन्दर' की परम्परा को नितान्त नये सन्दर्भ में स्वीकार किया, उसी प्रकार आदर्श और यथार्थ को भी नये सन्दर्भ में स्वीकार किया । युग जिस मोड़ पर आ गया है, वहां किसी भी आदर्श का सहारा लेकर नहीं गुजरा जा सकता है। आदर्श तो तब महत्वपूर्ण माने जा सकते हैं, जब परिस्थितियां सामान्य हों, जीवन का प्रवाह सामान्य हो, आज तो विषमता, विद्रोह और क्रान्ति का युग है उसमें आदर्शवादी परम्परा को लेकर नहीं चला जा सकता है । यही आदर्शवादी दृष्टि काव्य के भावपक्ष के लिए स्वीकार्य थी, कविता का एक निश्चित, मर्यादित रूप होता था, आज की कविता जन-जीवन की कविता है, युग की कविता है, इसलिए कवियों ने कविता की सहज अभिव्यक्ति के लिए आत्मानुभूति को आदर्श माना है । यथार्थ से संचालित अनुभूति ही आदर्श है । काव्य की सृजनात्मकता किन्हीं पूर्ववर्ती आदर्श के द्वारा प्रतिपादित होने पर निर्भर नहीं करती, बल्कि आज का आदर्श व्यक्ति और समाज के बीच से विकसित होता है । यही दृष्टि यथार्थ के प्रति भी है । बाह्य से जो यथार्थ है (चाहे जिस रूप में हो) वह कवि का भी यथार्थ है, लेकिन उस यथार्थ को कवि उसकी आन्तरिकता में ग्रहण करता है । यथार्थ को भोगता, झेलता, उसकी तर्क बुद्धि द्वारा परीक्षा करके अभिव्यक्ति देता है । जो यथार्थ कहा जाता रहा है, वह वास्तव में कवि के लिए यथार्थ अनुभूति के क्षणों में ही यथार्थ बन जाता है । ऐसा नहीं है कि यथार्थ केवल आनन्ददायक, सुन्दर ही हो सकता है, यथार्थ यदि गंदला और कुत्सित है तो उसकी अनुभूति कवि के लिए भी गंदली और कुत्सित ही होगी[1], पर नयी कविता तो अभिव्यक्ति की

---

१ नये कवियों में यथार्थ को बढ़ा-चढ़ा कर देखने की प्रवृत्ति भी कम है । यथार्थ को कुत्सित और गंदला करना उनका अभिप्रेत नहीं है । यदि यथार्थ स्वयं ही कुत्सित और गंदला है तो उसे और कुत्सित करने की क्या आवश्यकता? यही नये काव्य की मर्यादा है, जिसके साथ वह यथार्थ को स्वीकार करता है । --'नयी कविता का स्वरूप विकास'--प्रो० श्यामसुंदर घोष 'नयी कविता और यथार्थ', पृ०५१-५२ ।

सहज-सत्यता में विश्वास करती है, आत्मानुभूति पर किसी आदर्श का ठप्पा नहीं लगा सकती, यही नयी कविता की परम्परा कही जा सकती है । आक्रोश,विद्रोह को प्रकट तो करना सत्य है,लेकिन उस अभिव्यक्ति में भी ऐसी दृष्टि का संकेत होना चाहिए,जो आक्रोश विद्रोह के कारण को जाने,उसकी विषमता को समाप्त करे । यथार्थ के नाम पर खुला चित्रण मर्यादाहीनता की स्थिति में उचित नहीं माना जा सकता । यौन विषयक कवितायें आज जिस सीमा तक खुला प्रदर्शन का माध्यम बनी हुई हैं, उनमें यथार्थ का कौन सी दृष्टि निहित है, समझ में नहीं आता । यथार्थ की दृष्टि में भी बौद्धिकता, तर्क-विवेचना और सन्तुलन के तत्व होने चाहिए । यह तो माना जायगा कि नयी कविता ने शिल्प तत्व में आदर्श और यथार्थ को पूर्व परम्परा से निर्मुक्तता देकर नये यथार्थ और नये आदर्श को काव्य के लिए उचित माना है ।

परम्परित मूल्यों का तिरस्कार

आज के सन्दर्भ में मूल्यों का अर्थ ही बदल गया है । प्रत्येक युग में मूल्य मानवीय मूल्यों से बंधे होते थे, चाहे वे नैतिक मूल्य हों, चाहे सामाजिक । पूर्व प्रतिष्ठित मूल्यों की कसौटी पर आज का युग-बोध खरा नहीं उतर सकता, सर्वत्र जिस प्रकार का हाहाकार मचा हुआ है, मनुष्य-मनुष्य का शोषक बन बैठा है, वर्गभेद, जाति-भेद,साम्प्रदायिकता ने जीवन-मूल्यों को बदल दिया है । इस प्रकार के उखड़े-उखड़े युग में न तो जीवन-मूल्य ही खरे कहे जा सकते हैं और न नैतिक मूल्य ही। मानवता की हार का सबसे बड़ा कारण नैतिक-चारित्रिक पतन ही है । सामाजिक-व्यवस्था इस सीमा तक पंगु हो गयी है कि कहीं भी समानता के दर्शन नहीं होते, कहीं न्याय नहीं है, कहीं अधिकार नहीं है न अस्तित्वबोध है, बिना पतवार की नाव की तरह सभी त्रस्त हैं,दुःखी हैं ,पराजित हैं, ऐसे में नये कवियों ने नये मूल्यों की स्थापना का

प्रयास किया है । ये मूल्य किसी-न-किसी अर्थ में मानवीय मूल्य हैं । मानवीय मूल्य इसलिए भी हैं,क्योंकि किसी भी युग में मानवता की इस सीमा तक अवहेलना नहीं हुई है । मानव-मूल्य मानव-प्रतिष्ठा से जुड़े हुए हैं । नये मूल्यों की समस्या ने आज के युग को एक व्यापक दृष्टि से अवलोकन करने का,समझने का और व्याख्या करने का अवसर दिया है । स्वतन्त्रता के पूर्व भी देश की कम से कम ऐसी स्थिति तो नहीं थी कि व्यक्ति को रोजी-रोटी के लिए इतना अधिक संघर्ष करना पड़ता हो, आज तो सारा युग स्व-कल्याण की ओर इतनी तेजी से लपक रहा है कि मारो-लूटो के अतिरिक्त कुछ भी सुनाई नहीं देता है । प्रश्न उठता है कि नैतिक मूल्य कहां विलुप्त हो गये, व्यक्तिगत आचरण की महत्ता कहां चली गयी? समाज में जो व्यक्ति किसी भी स्थान पर होते हैं, वह समाज-सुधार की, व्यक्तिगत आचरण की ,नैतिकता की बड़ी-बड़ी दुहाई देते हैं , मौके-बे-मौके झूठा विरोध करते हैं और जब ऐसे सुधारक व्यक्ति स्वयं उच्च पदासीन हो जाते हैं तो खुले आम वहीं कुकृत्य स्वयं ही करते हैं । क्योंकि जब अवसर हाथ आ गया है तो मौके का लाभ तो उठाना ही चाहिए । सच पूछा जाय तो ऐसी स्थिति में ही आकर पशु और मनुष्य एक स्तर हो जाते हैं । व्यक्तिगत आचरण कहां विलुप्त हो जाता है, सामाजिक दायित्व की भावना कहां विलुप्त हो जाती है । विचारणीय है, ऐसे अवसरवादिता के युग में पुराने मूल्यों कीपरम्परा की लीक कब तक साहित्य के उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकती है । नये कवियों ने इसीलिए मानवीय मूल्य को आज के युग की मांग में समझा है।ब सारे मूल्य किसी -न-किसी अर्थ में मानवीय मूल्य से जुड़े हैं । मानवीय मूल्य अपने पूर्ण रूप में स्वीकार्य नहीं है, कारण स्थिति इस सीमा तक बदल गयी है कि उसमें चोरी, हुंकार,तपन है,आग,असन्तोष,विरोध और न जाने क्या हो जाने की सम्भावना है, लेकिन होता कुछ नहीं, केवल मुर्गे ऐसा लगता है कि "गला काट देने पर" "मुर्गा तड़पता है" और लगता है अभी कुछ होगा"

लेकिन कुछ नहीं होता ,क्योंकि `थोड़ी देर में मुर्ग मर जाता है[1]।` ऐसी ही स्थिति आज के युग में है, नैतिकता कहां, जब साहस ही नहीं है, ईमानदारी ही नहीं है तो नैतिकता कहां से होगी ? इन्हीं अर्थों में सामाजिक सम्बन्धों की परम्परा को भी नयी कविता में नये अर्थों में स्वीकार किया गया है । आज समाज की व्यवस्था इतनी बिगड़ चुकी है कि कोई किसी की नहीं सुनता, सब अपनी-अपनी में लगे हैं, ज्यादा हुआ तो टूटते-टूटते ये उद्भावनाएं दे जाते हैं कि ` न मैं औरों का खून कर सकता हूं न आत्महत्या[2]` केवल इस तरह के कथन से आज की परिस्थिति का सामना नहीं किया जा सकता है।सामाजिक सम्बन्धों की पुरानी परम्परा अब नयी कविता को स्वीकार्य नहीं, वह तो ऐसे समाज की व्यवस्था करना चाहता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति स्वातन्त्र्य और स्वाभिमान का अर्थ समझे,क्योंकि ये भावनायें उसमें ऐसे समाज के प्रति लगाव उत्पन्न करेंगी,जिसमें सब व्यक्तियों को समान अधिकार,समान महत्त्व,समान अस्तित्व मिलेगा, न कोई `महामानव` होगा न लघु मानव बल्कि देश काल की सीमा से परे `सहज मानव` मानव होगा[3]। `सहज` शब्द मेरे लिए इसलिए

---

१ गला काट देने पर
मुर्ग तड़पता है
साफ़ लगता है
अभी कुछ होगा
थोड़ा देर में
मुर्ग मर जाता है । --`मछली घर`--विजयदेवनारायण साही
`अभी कुछ होगा`,पृ० १११ ।

२ न मैं आत्महत्या
कर सकता हूं
न औरों का
खून । --`मायादर्पण`--श्रीकान्त वर्मा,`अंतिम वक्तव्य`,पृ०१२६ ।

३ ... मेरी धारणा है कि मानव मूल्यों का आधार लघु की अपेक्षा सहजमानव की मान्यता अधिक युक्तिसंगत है। कारण यह है कि सहज मानव ही विशिष्ट स्थितियों में उसके विभिन्न रूपों में लक्षित होती है... ।`
--`नयी कविता स्वरूप और समस्यायें`--डा० जगदीश गुप्त
`मानव मूल्य और साहित्य`,पृ०६६ ।

उपयुक्त है,क्योंकि इसमें एक स्वाभाविकता का भाव है, सहज मानव,गुण-दोष से युक्त मानव होगा, उसमें किसी प्रकार का विशेष तत्व नहीं जुड़ा होता ।

नयी कविता ऐसे ही मानव-मूल्य को प्रतिष्ठापित करना चाहती है, समाज की विशृंखलता को भावनात्मक एवं संवेदनात्मक स्तरपर जोड़ना चाहती है । जिस तरह के मानवमूल्य की बात नयी कविता में उठाई गयी है, उसमें रूढ़िवादिता का आग्रह नहीं है । मानव-मूल्य के रूप में ऐसे व्यक्ति की प्रतिष्ठा का प्रश्न उठाया गया है, जो स्वतन्त्र चेता हो, तथा उसमें समाज के उत्तरदायित्व की भावना स्वयं उद्भूत हो। स्वाभिमान और अधिकार की भावना न केवल उसके अन्दर विकसित हो,बल्कि समाज के एक-एक व्यक्ति में इन भावनाओं का विकास हो । व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना समष्टिगत कल्याण में परिवर्तित हो जाये, मानव हर रूप में मानव हो, वह न तो किसी वाद से जुड़ा हो न किसी देश,युग से । ऐसे समाज की व्यवस्था का भार नयी कविता ने उठाया है । सामाजिक व्यवस्था की जो चेतना नयी कविता में जगी है, वह पहले कभी इतने जोर-शोर से नहीं उठाई गई । लेकिन मात्र किसी समस्या को उठाकर उसे उघाड़ कर रख देने से ही ऐसे समाज की व्यवस्था नहीं हो सकती, समाज तो व्यक्तियों के समूह से बनता है, अतः समूह के सुधार के लिए व्यक्तिगत आचरण की ओर ध्यान देना होगा । प्रत्येक में ऐसी चेतना की जागृति करनी होगी,जो स्वयं एक स्वस्थ,सुदृढ़ सामाजिक व्यवस्था ला सके ।

नयी कविता का नया शिल्पपक्ष

कवि-प्रतिभा की परम्परा से विशृंखलता

नयी कविता का जब जो रूप परिलक्षित होता है वह मध्ययुगीन कविता से तो नितान्त परिवर्तित है ही साथ ही साथ बहुत कुछ अपनी आस-पास की कविताओं से भी परिवर्तित रूप में परिलक्षित होता है । नयी कविता में इसके मुख्य चार मोड़ जो लगते हैं, वह है कवि-प्रतिभा को

परम्परा से विनिर्मुक्तता तथा नितान्त नये भाव-बोधों के साथ सम-सामयिकता का प्रस्तुतीकरण । आज नयी कविता को किसी भी पूर्ववर्ती आदर्श या सिद्धांत के माध्यम से अभिव्यक्ति पाने की अभिलाषा नहीं है और न तो आज के कवि कविता की अभिव्यक्ति के लिए छंद, अलंकार, रस तथा चमत्कारिक भाषा की अनिवार्यता को ही स्वीकार करते हैं । सम-सामयिकता के बोध ने कवि की प्रतिभा को नई दिशा में मोड़ दिया है । आज कविता की श्रेष्ठता की परीक्षा छंदों, अलंकारों की गुरु-गम्भीरता के सन्दर्भ में नहीं की जा सकती । नयी कविता तो सहज सरल मानव-मन की अभिव्यक्ति में विश्वास करती है । यही कारण है कि आज नयी कविता में कवि की प्रतिभा को युग-बोध की दृष्टि से आंका जाता है । कवि अपने चारों के परिवेश की उथल-पुथल से हर क्षण प्रभावित होताहै, उसकी विषमता को, उसकी असंगति को अपने में अनुभव करता है, यही अनुभव जब उसके लिए अनुभूति बन जाते हैं, तो कवि की प्रतिभा सृजनात्मकता की ओर अग्रसरित होती है । आज नये कवियों को अपनी प्रतिभा की कड़ी परीक्षा देनी पड़ी है । अपने चारों ओर की चिंतनो को अपने में लेकर, उसको वैज्ञानिक आधार पर समझा तथा अपने अनुभव-अनुभूति को इसी सन्दर्भ में समाहित करके अपनी कला-भावना को जगाना पड़ा है । अगर कलाकार में इतनी प्रतिभा नहीं होगी तो वह न तो उन्हीं सन्दर्भों के को पूरी समग्रता के साथ अपनी अनुभूति में उतार सकेगा, और न ही उसकी पूरी कलात्मक अभिव्यक्ति ही दे सकेगा । अपनी कला-चेतना को जगाकर यथार्थ और सौन्दर्य की ईमानदारी के साथ कला में उतारने जाने में कलाकार की प्रतिभा का योग होता है । हर युग के बोध से कविता प्रभावित हुई है, इसलिए नयी कविता ने आज जो कवि-प्रतिभा की परम्परा से निर्मुक्तता ले ली है, उसका कारण आज के युग की सम-सामयिक यथार्थपरक दृष्टि ही है । आज जिस प्रतिभा से,

जिस कौशल से कवि समस्त विसंगतियों को काव्य के रूप में ढाल कर अभिव्यक्ति के धरातल पर उतार देता है, वह आज की कविता के लिए कम महत्वपूर्ण नहीं है । कोई भी कलाकृति अभ्यास और प्रतिभा के बिना नहीं रची जा सकती, इसलिए आज कवि की प्रतिभा की कड़ी परीक्षा हो रही है, उसे तो पूरे युग की संरचना का कार्य सम्पन्न करना है, मानव, महामानव, लघु मानव नहीं पूर्ण मानव की संरचना करनी है, जो समाज, देश, काल विशेष का मानव नहीं बल्कि पूर्ण मानव हो । कहना न होगा कि आज कवि-प्रतिभा का अर्थ पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं से नितान्त भिन्न है ।

<u>रूपविधान में कमनीयता या रस-प्रवणता की परम्परा से विनिर्मुक्तता</u>

जिस प्रकार नयी कविता ने कवि-प्रतिभा की परम्परा से निर्मुक्तता ले ली, उसी प्रकार काव्य के विषय में प्रचलित अलिखित कमनीयता तथा रसप्रवणता की अनिवार्यता से भी मुख मोड़ लिया है । आज जिस ऊबड़-खाबड़ जन-जीवन के धरातल पर कविता की अवतारणा हो रही है, उसमें कमनीयता तथा रस जैसे विषय की खोज करना सर्वथा अनुचित लगता है । जीवन के प्रति दृष्टिकोण इतना बदल चुका है कि आज मनुष्य की मनःस्थिति इतनी आन्दोलित हो उठी है कि वह न तो अपने को पूरी तरह अभिव्यक्त कर पाता है और न सारी गिला शिकायत को अपने अन्तर्मन में समेटे ही रह पाता है । इसलिए आज की कविता निराशा-घुटन तथा आक्रोश की कविता है । अपनी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक विषमताओं से, विसंगतियों से कवि की चेतना इस सीमा तक झकझोर दी गयी है कि वह विद्रोही हो उठी है, उसे जो कुछ भी अपने प्रतिकूल, समाज के प्रतिकूल लगता है, उसका वह प्रतिकार कर उठता है, उसको अपनी यथार्थ दृष्टि से अवलोकन करके ज्यों-का-त्यों अभिव्यक्ति दे देता है । इसलिए आज के काव्य में कमनीयता खोजना सम-सामयिक नहीं लगता है । इन्हीं

अर्थों में रस-प्रवणता की बात भी ले सकते हैं । नयी कविता में रस जैसे प्रश्न को उठाना उचित नहीं । आज की कविता युग की संक्रमणता के अंक में पनप रही है । सर्वत्र विघटन, विशृंखलता के चित्र दिखाई दे रहे हैं, कविता का उत्तरदायित्व बढ़ गया है । विघटित व्यक्तियों के अन्तर्मन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तर्विरोधों को कविता में व्यक्त किया जा रहा है । सर्वत्र विरोध-आक्रोश का वातावरण तैयार हो रहा है, इस वातावरणमें व रची गयी कविता में कमनीयता तथा रस जैसे विषयों की कल्पना कविता के लिए अहितकर सिद्ध होगी । कविता का रूप आज जिस यथार्थवादी बौद्धिकता के धरातल पर विकसित हो रहा है, उसमें रस का अर्थ सम्प्रेषणीयता से लेना चाहिए । नयी कविता आज के युग को प्रभावित करती है । सम-सामयिकता की पद-चाप नयी कविता में साफ सुनाई देती है । रस-प्रवणता और कमनीयता की परम्परा नयी कविता में सर्वथा भिन्न रूप में है । ऐसा नहीं कहा जा सकता कि नयी कविता में कमनीयता है ही नहीं । नयी कविता ने जिन परिस्थितियों में जैसी अनुभूति की उसके अनुसार अभिव्यक्ति दी है । इसीलिए अधिकतर कविता कठोर गद्यमय तथा मुंह फटों की कृति लगती है । लेकिन कहीं-कहीं अनुभूतियों की इतनी सूक्ष्म अभिव्यक्ति के भी दर्शन होते हैं, जहां यह कह सकना असंभव लगता है कि नयी कविता ने काव्य का मुख्य गुण कमनीयता को ठुकरा दिया है । प्रकृति-वर्णन, प्रेम प्रसंगों तथा कहीं-कहीं अन्य सन्दर्भों में भी अभिव्यक्ति में प्रचुर कमनीयता परिलक्षित होती है ।

यहां मैं रस की चर्चा करने से पूर्व कुछ अनुभूति की चर्चा करूंगी । रीतिकाल में काव्य में साधारणीकरण के प्रश्न को बहुत मुख्य माना जाता था । काव्य का लक्ष्य और उसकी श्रेष्ठता बहुत कुछ साधारणीकरण पर निर्भर करती थी । चूंकि रीतिकालीन सारा काव्य गुरु-गम्भीर छंदों, अलंकारों से भरा था, इसलिए प्रायः वह सबको ग्राह्य नहीं हुआ, इस कारणसे छंदों, अलंकारों से काव्य नीरस, बोझिल एवं दुरूह भी हो गया था । क्रमशः काव्य के ये बन्धन छूटते गये, लेकिन नये कवियों ने एक नयी तरह

की समस्या खड़ी कर दी-- वह समस्या है काव्य के दुरूह, अस्पष्ट एवं अतिबौद्धिकता के विषय में । नये कवियों के मतानुसार बौद्धिकता के आवेग में रस तो छूट ही गया अब साधारणीकरण की समस्या भी सह-अनुभूति से हल करने का प्रयास किया जा रहा है । चूंकि 'साधारणीकरण' शब्द रीतिकालीन है तो इसके स्थान पर नया शब्द बैठाया जा रहा है --सह-अनुभूति । सह-अनुभूति सामान्य की वस्तु नहीं हो सकती, क्योंकि जिस मतलब से 'सह-अनुभूति' शब्द लाया गया, उसका अर्थ साफ है कि सर्व सामान्य नयी कविता को समझे या न समझे अल्पसंख्यक तो सह-अनुभूति के आधार पर नयी कविता समझ ही लेंगे ।

डा० जगदीश गुप्त सह-अनुभूति को रसानुभूति के समकक्ष रखते हैं, क्योंकि रसानुभूति की तरह सह-अनुभूति में व्यक्तित्व और विवेक का परिहार होना आवश्यक नहीं है । कवि और भावक दोनों के व्यक्तित्वों के सह-अस्तित्व में अनुभूति की प्रेषणीयता सम्भव होने के कारण इसे सह-अनुभूति कहना न निराधार है न अनुपयुक्त[1]। यहां मैं सह-अनुभूति के प्रश्न को रसानुभूति के समकक्ष रख भी लूं तो यह तो मैं कदापि स्वीकार नहीं करूंगी कि नयी कविता सह-अनुभूति के आधार पर सहज ग्रहण की जा सकती है, क्योंकि बौद्धिकता के आवेग में नयी कविता से रस-प्रवणता का प्रश्न पहले ही हट चुका है, रस को भावात्मक प्रक्रिया मान कर बौद्धिकता और विवेक को नयी कविता में जब स्वीकार किया गया है तो सह-अनुभूति को रसानुभूति के समकक्ष रखना उसी तरह है जैसे पीतल पर स्वर्ण की परत चढ़ाना । नयी कविता को जबरन स्वीकार करवाने के लिए सह-अनुभूति का प्रसंग जोड़ा गया है । मात्र सह-अनुभूति

---

१ नयी कविता: स्वरूप और समस्यायें — डा० जगदीश गुप्त
'रसानुभूति और सह-अनुभूति', पृ०८५ ।

का सहारा लेकर नयी कविता की अति बौद्धिकता, नितान्त व्यक्तिपरक अनुभूतियों,स्वच्छन्द मन:स्थितियों की अतिवादी प्रवृत्ति को झुठलाया नहीं जा सकता । यह बात और है कि नये कवियों का यदि इरादा एक ऐसा वर्ग तैयार करने का है जो केवल सह-अनुभूति के आधार पर उनकी अनुभूतियों को स्वीकार करे तो शायद ऐसा अल्पसंख्यक वर्ग पाठक वर्ग में बने या न बने नये कवियों में तो मिल ही जायगा ।

जहां तक रस का प्रश्न है, नयी कविता की रस-प्रवणता दूसरे प्रकार की है । कवि जिन भाव-बोधों को अपना संवेदना अपनी अनुभूति में उतार लेता है, जब उनका प्रस्तुतीकरण जिस सीमा तक पाठक आलोचक की संवेदना तथा अनुभूति का विषय बन पाता है, यहीं आज की नयी कविता की रस-प्रवणता मानी गयी है । रस प्राचीन काल से काव्य का मुख्य लक्षण माना गया है--`वाक्यं रसात्मकं काव्यं' । लेकिन आज नयी कविता यदि रस की दृष्टि से खरी नहीं उतरती तो उसे काव्य न माना जाये ऐसा नहीं कहा जा सकता । कोई भी कृति सर्वथा दोषपूर्ण नहीं होती, नयी कविता भी सर्वथा दोषपूर्ण नहीं है । नयी कविता की तो `सजाने-संवारने एवं खराद पर चढ़ाने तथा मांजने से सहजता नष्ट होती है ।'[१] इस विचार से नयी कविता आज के युग की सहज-स्वाभाविक सच्ची एवं जागरूक अभिव्यक्ति है । जहां कवि की अनुभूति संवेदना तथा भाव-बोध

---

१ अलाप,प्रलाप और विलाप से नयी कविता काफी दूर हट गयी है । उसके सौन्दर्य-बोध में अन्तर आ गया है । अनगढ़ में ही वह निखरती है । सजाने-संवारने, खराद पर चढ़ाने और मांजने से उसकी सहजता नष्ट होती है ..... ।'

नयी कविता स्वरूप और समस्या-- डा० जगदीश गुप्त
`नयी कविता में रस और बौद्धिकता',पृ०१०५ ।

ईमानदारी के साथ अभिव्यक्तातुर हैं, वहां कविता ने पाठक-आलोचक को अवश्य प्रभावित किया है। इसलिए बौद्धिकता, यथार्थपरक चेतनादृष्टि के सन्दर्भ में इस पलायनता का प्रश्न आज के युग-बोध में महत्वहीन लगता है।

<u>नये शब्दरूप, नये उपमान, छंद रहितता, अर्थ की लय इत्यादि की नयी परंपरा</u>

नये शब्दरूप का प्रश्न भी आज की कविता के लिए बहुत विवाद का विषय बन गया है। नयी कविता के कवियों को आज जिन मन:स्थितियों से गुजरना पड़ रहा है, उसके लिए प्रचलित भाषा, प्रचलित उपमान, प्रचलित छंद तथा शब्द की लय की अनिवार्यता सटीक नहीं बैठती है। सारा युग एक प्रकार से जड़ समेत हिला दिया गया है, सर्वत्र समस्यायें, विसंगतियां, विघटन ही परिलक्षित होता है, ऐसे में भाषा का संकुचित भण्डार युग को सही अर्थों में नहीं दी सकता है। युग के विस्तृत परिप्रेक्ष्य में यथार्थ परक नयी दृष्टि, नयी चेतना, नये भाव-बोध भाषा की संकीर्णता को नहीं स्वीकार कर सकते। आज मनुष्य जिन जटिल संघर्ष मय मन:स्थितियों से गुजर रहा है, उसकी अभिव्यक्ति के लिए नये शब्दरूप, नये उपमान तथा छन्द रहितता को स्वीकार करना पड़ेगा। पुराने छंद, पुराने प्रतिमान तथा पुराने शब्दों की पुनरावृत्ति काव्य को न तो युग की सार्थकता में सफलता ही प्रदान कर सकती है और न कुछ नया ही दे सकती है। कुल मिलाकर काव्य नीरस लगने लगता है। इसके साथ-ही-साथ नये कवियों में नये भाव-बोधों के उद्घाटन नयी भाषा, नये प्रतिमान, नये बिम्ब की अवतारणा करने के लिए बाध्य करता है। `इसीलिए वे सतह की भाषा को तोड़ कर नये आसमान की खुली हुई भाषा की खोज करते हैं— ऐसी भाषा की खोज करते हैं, जिसमें `सूरज` — एक `भूरी आंखों वाला जंगली जानवर` है। `पेड़—भीड़ में छिपे हुए जासूस` हैं। और, `चांद` — एक `चतुर जंगलवाला` है। — ऐसी भाषा की खोज करते हैं जो अनुभव को ही नहीं, अनुभव परिदृश्य को व्यक्त कर सके— जिस

परिदृश्य में कहीं भीतर `छिपा हुआ औरांग उटांग` है कहीं आने वाली `घोर आपदायें` हैं, कहीं विलक्षण चोटियां हैं... ।`[1]

नये उपमानों की सर्जना

भाषा के अन्तर्गत ही नये उपमानों की भी अवतारणा की गयी । विषयवस्तु की व्यापकता पुराने प्रतिमानों में व्यक्त नहीं की जा सकती । उपमानों के नये-नये प्रयोग हमें छायावादी काव्य में ही दिखायी पड़ने लगते थे । प्रयोगवाद में तो `प्रयोग`के नाम से नये उपमानों का धूम ही मच गयी ।नयी कविता तक आते-आते भाषा का रूप सर्वथा परिवर्तित हो गया । यद्यपि नयी कविता में नये उपमानों की सर्जना तो हुई है, साथ ही साथ पुराने उपमानों कोभी नये सन्दर्भो में प्रस्तुत किया गया है । केदारनाथ सिंह की कविता `नये दिन के साथ` में प्यार के सन्दर्भ में लिखा हुआ नाम चिह्न `मोरपंखी` की तरह कहा गया है । `मोरपंखी` का प्रयोग स्मरण-स्मृति की तरह बहुत समय से किया जाता रहा है, लेकिन नये कवियों ने किस सूक्ष्मता से `नये दिन के साथ प्यार के पन्ने पर मोरपंखी सा लिखा नाम` पढ़ना चाहा है, यह द्रष्टव्य है[2] ।

---

१ `नयी कविता का परिप्रेक्ष्य`-- डा० परमानन्द श्रीवास्तव ,पृ० १२३-१२४

२ नये दिन के साथ
   एक पन्ना खुल गया कोरा हमारे प्यार का ।
   सुनो
   इस पर कहीं अपना नाम तो लिख दो--

   ....
   और जब जब हवा आकर
   उड़ा जायेगी अचानक बंद पन्नों को
   कहीं भीतर मोरपंखी की तरह रखे हुए उस नाम को,
   हर बार पढ़ूंगा ।
   `तीसरा सप्तक`--केदारनाथ सिंह, पृ० १३८ ।

नये आयामों की सर्जना नयी कविता में, चाहे सौन्दर्य सम्बन्धी कवितायें हों, चाहे जीवन की कठिन-से-कठिन परिस्थितियों का आकलन हो, सर्वत्र देखे जा सकते हैं । धर्मवीर भारती की कविता 'बरसाती झोंका' में मलय का एक सर्द झोंका मन की मुंदी मासूम कलियों को छेड़ता है उस छेड़ने से जो आनन्द उत्पन्न होता है, उससे कुंकुम की भांति हृदय का सारा दर्द बिखर जाता है । शायद ऐसे सुन्दर उपमान पहले नहीं देखे जा सकते हैं[१]।

छंदरहितता

नयी कविता जीवन की सहज और जागृत अभिव्यक्ति है । अपने बाह्य रूपाकार में गद्यमय दिखाई देने वाली नयी कविता ने छन्द, लय, तुक-तुकान्त की परम्परा को बहुत पीछे छोड़ दिया है । नयी कविता युग की सहज और सच्ची अभिव्यक्ति में विश्वास करती है, इसलिए वह छंदों की अनावश्यकता स्वीकार करती है । सहजता में वह किसी भी प्रकार का आरोपण स्वीकार नहीं करती । आज नयी कविता का शृंगार छंदों की स्वीकृति में नहीं सम्भव है, बल्कि नयी कविता तो अनगढ़ता में सजती है, उसमें बनावट, सजावट की प्रवृत्ति कविता की मूल भावना, सम्वेदनीयता, सम्प्रेषणीयता पर कृत्रिमता ला देती है । छंदों की निर्मुक्तता के विषय में एक बात और महत्वपूर्ण है

---

१ झूलता आषाढ़ की पहली घटाओं को,
झूमता आता मलय का एक झोंका सर्द,
छेड़ता मन की मुंदी मासूम कलियों को
और कुंकुम सा बिखर जाता हृदय का दर्द ।
'दूसरा सप्तक' -- अज्ञेय
बरसाती झोंका -- धर्मवीर भारती, पृ० ११४ ।

कि जब नये कवियों ने काव्य की भाषा पूरी तरह गद्यमय कर दी तो छंद (मुक्तछंद) की अनिवार्यता ही समाप्त हो गयी । छायावाद में मुक्तछंद की परम्परा देखी जा सकती है, लेकिन नये कवियों ने तो मुक्त छंद की मांग को भी खारिज कर दिया है । सिर्फ कविता का रूप छोटी बड़ी शब्दों की पंक्तियों तक ही रह गया है । यदि सारी पंक्तियां गद्य लिखने की प्रणाली में लिखी जाय तो शायद नयी कविता और गद्य-कथन की पहचान का कोई भी प्रमाण नहीं रह जायगा । यहां शम्भुनाथ सिंह की एक कविता `पहाड़ी शाम` को पहले में उनके लिखे रूप में उद्धृत करूंगी, फिर गद्य रूप में लिखूंगी-मेरे कथन की सत्यता परिलक्षित हो जायेगी --

नयी कविता का रूप--

एक कुबड़ी जादूगरनी बुढ़िया
इन्द्रधनुषी मेहराबों के
नीचे से गुजरी ।
सहसा उसका कूबड़
और उठता -उठता
आकाश को छूने लगा ।

इसी का गद्य रूप देखिये --

एक व कुबड़ी जादूगरनी बुढ़िया इन्द्रधनुषी मेहराबों के नीचे से वह गुजरी । सहसा उसका कूबड़ ऊपर उठता-उठता आकाश को छूने लगा ।

इस तरह मुझे लगता है जब कि नये कवि सब कुछ पीछे छोड़कर नया देने के जोश में पुरानी परम्परायें तोड़ते भी जा रहे हैं और नवीन परम्परायें गढ़ भी रहे हैं, उनके इस परस्पर-विरोधी क्रम में नयी कविता देखना है कि कितने समय तक टिकी रह सकती है । उपरोक्त कविता में सिर्फ इतना ही अन्तर है कि पहाड़ी शाम का प्रतीक रूप में चित्रण हुआ है । वरना गद्य और

पद्य में मुझे तो कुछ भी अन्तर नहीं दिखाई देता ।

शब्द की लय की परम्परा से विनिर्मुक्तता : अर्थ का लय

छन्दों के सन्दर्भ में अर्थ की लय का प्रश्न जुड़ा हुआ है । नयी कविता ने सबसे अधिक क्रान्तिकारी परिवर्तन किया, काव्य की भाषा के रूप में । नयी कविता ने काव्य का पद्यमय रूप अस्वीकार कर गद्यमय रूप स्वीकार किया । इसीलिए नयी कविता अपने बाह्य रूपाकार में काफी चर्चा का विषय बन चुकी है । प्राचीन समय से साहित्य में काव्य और गद्य की भाषा पृथक्-पृथक् हुआ करती थी, इसीलिए जब नयी कविता ने गद्य की भाषा को अपनाया तो पूर्व परम्परावादियों ने नयी कविता को कविता न मान कर गद्य माना और कहा कि कविता की भाषा में जो कोमलता, स्निग्धता होती है, वह गद्य की भाषा में नहीं । नये कवियों ने गद्य-पद्य के भेद को मिटाकर कविता को विशुद्ध में प्रतिष्ठित किया, इसमें लय का भी बाह्य रूपमें नितान्त अभाव है । जहां तक लय का प्रश्न है, लय समस्त प्रकृति के में व्याप्त है, लय का अर्थ एक सुनिश्चितता, एक प्रवाह एक गतिशीलता है, और जब लयहीन कविता होगी तो काव्य लड़खड़ाता हुआ पंगु-सा लगेगा । नयी कविता में शब्द के लय की जगह अर्थ के लय का समावेश हुआ है । `शब्द` ब्रह्म है । शब्द का ही परिधान पहन कर विचार अभिव्यक्त होते हैं और उन विचारों में जो अर्थ निहित होते हैं, वह शब्दों की संयोजना में अभिव्यक्ति पाते हैं । यह तो स्वीकार ही किया जा चुका है कि नयी कविता शब्दों के लय में विश्वास नहीं करती वह विश्वास करती है तो अर्थ की लय में । लेकिन अर्थ की लय जिसे नये कवि स्वीकार करते हैं, वह बहुत ही सूक्ष्म तत्व है, उसकी सहज पकड़ सम्भव नहीं है । इसलिए नये कवियों का यह दावा करना कि वे शब्द की लय को अस्वीकार कर अर्थ की लय को मानते हैं —यह कुछ अनोखा और हास्यास्पद प्रयास ही कहा जायगा । मैं यह मानती हूं कि नयी कविता भावुकतापूर्ण अभिव्यक्ति में विश्वास नहीं करती, लेकिन

भावुकता से पृथक् हटी, चोट, व्यंग और सीधी अभिव्यक्तियां भी शब्द की लय के अनुसार की जा सकती हैं। यह दावा करना कि गद्यमय रचना को कविता कहा जा सकता है, सर्वथा उचित नहीं लगता। यदि गद्य-पद्य का विभेद ही मिटाना है तो कविता नाम ही मिटा देना चाहिए, क्योंकि कविता कहने से पद्यमय रूप का आभास होता है। मैं यह भी मानती हूं कि कभी-कभी नितान्त गद्यमय कविता इतनी सशक्त होती है कि उसका स्थान पद्यमय कविता शायद न ही ले सके। लेकिन गद्य-पद्य के विषय में हठवादिता अपनाकर अर्थ की लय जैसी बात पैदा करना मुझे तो उचित नहीं जान पड़ता, फिर अर्थ की लय कितने लोग समझ सकते हैं? सच तो यह कि लय का प्रश्न ही समाप्त कर देना चाहिए। क्योंकि जो चीज़ इतनी सूक्ष्म है कि उसे अनुभूति कर पाना प्राय: सम्भव नहीं है, उसे कहां तक घसीटा जा सकता है। अधिकतर कवि शब्दों के मिथ्या आडम्बर से कविता में जो लय उत्पन्न करना चाहते हैं वह शब्द की लय न होकर अर्थ की लय कही जाती है। जहां तक मेरा विचार है बिना शब्दों की परिकल्पना के लय का होना अनिश्चित है। संगीत में नाद के पीछे स्वर भी है जो उसमें लय की सृष्टि करते हैं। शब्दों के अर्थ में लय होना नितान्त कठिन ही नहीं, उचित भी नहीं लगता। आज के भाव-बोध में गीतात्मकता का सर्वथा अभाव है। विवेक, तर्क, सम्वेदना की सम्पृक्तता से कवि वस्तुस्थिति की जटिलता को समझने का प्रयास करता है। उस स्थिति में गीतात्मकता स्वयं विलीन हो जाती है। उसका स्थान सुनिश्चित, स्पष्ट, गद्यमय अभिव्यक्ति में ले लेती है।

पूर्ववर्ती परम्परा को तोड़ना कोई विशेष बात नहीं, विशेष बात है तो कुछ नया सशक्त और युग की मांग में देने की बात। नयी कविता में यह बात बहुत ही खटकती है कि कहीं-कहीं कवियों ने मुक्तछंद तो अपनाया है, लेकिन उसमें न तो उचित अनुशासन ही परिलक्षित होता है और न ही उचित प्रेषणीयता ही उत्पन्न हो पाती है। मुक्त छंद रचना

करना छन्दबद्ध करना से अधिक कठिन काम है[1]। आज के भाव-बोध में केवल अभिधात्मक पद्धति से काम नहीं चलाया जा सकता, चाहे हम मुक्त छन्द अपनायें चाहे शब्द की लय के स्थान पर/ अर्थ की लय को अपनायें पर हमें अपनी संवेदना को लक्षणा लय और व्यंजना से भी पुष्ट करना चाहिए। क्योंकि यदि गद्य कथन ही कविता है तो गद्य-पद्य में भेद ही क्या रह जायगा। इसलिए निर्विवाद यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि नयी कविता का पद्य से कुछ भी मतलब नहीं। नयी कविता में तो अब शैली की यही विशिष्टता परिलक्षित होती है कि बोलचाल की शैली में सारी रचनायें हो रही हैं, केवल पंक्तियां अवश्य छोटी-बड़ी हैं। किसी पंक्ति में दो शब्द हैं तो किसी में पांच या छः शब्द[2]। शब्द-शक्तियों में अभिधा,लक्षणा और व्यंजना तीनों का अपना-अपना महत्व है। किसी [illegible] वश लक्षणा, व्यंजना का तिरस्कार करना अप्रीतिकर है। आवश्यकतानुसार लक्षणात्मक शैली और व्यंजनात्मक शैली भी उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितनी सीधे कथन के लिए अभिधात्मक शैली। कभी-कभी नयी कविता वाह्याकार में सीधी-सादी गद्यमय लगती है परन्तु उसकी रचना किसी गम्भीर जटिल परिस्थितियों, मनःस्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए होती है। वहां गद्यमय कथन उचित जान पड़ता है।

---

१ कम कवि इस बात को महसूस कर पाते हैं कि मुक्त छंद लिखना छन्दबद्ध काव्य-रचना से कहीं अधिक कड़ा [illegible] अनुशासन मांगता है। कुछ कवियों के बारे में सन्देह होता है कि वे सम्भवतः अक्षमता के कारण छन्दबद्ध रचना की 'डिसिप्लिन' में गुजरे बिना ही मुक्तछंद लिखने लगे हैं ...।'
'नयी कविता' अंक-२,सं०-डा० जगदीश गुप्त,डा०रामस्वरूप चतुर्वेदी ,पृ०६।

२ फटेहाल देश की —
अजनबी भीड़ में मारा जाता हूं... ।
'संक्रान्त' — कैलाश वाजपेयी
'[illegible]', पृ० २१।

कहीं-कहीं कविताओं में शब्द के लय की भी व्यवस्था दिखायी देती है । लेकिन नये कवियों का इस ओर विशेष आग्रह नहीं है । स्वाभाविकता में शब्द की लय भी दिखायी पड़ सकती है, जैसे अर्थ की लय पर विशेष आग्रह दिखायी पड़ता है । इस सन्दर्भ में श्री राम की एक कविता `जीवनपंथ` का उल्लेख यहां करूंगी । `जीवनपंथ` में कवि अपने व्यक्तित्व के प्रति शंकित है । उसे यह समझ में नहीं आता कि वह आज के परिवेश में अपने व्यक्तित्व की संगति कैसे बैठाये ? पूरी कविता में कहीं-कहीं शब्द की लय तक की अवतारणा हुई है, पर पूरी कविता में जो भाव पैदा होते हैं, वे अर्थ की लय से सम्बद्ध हैं । इसलिए नयी कविता में मुख्य जोर शब्द की लय पर न होकर अर्थ की लय पर है । प्रथम पंक्ति में तो अन्त होता है `आजकल` पर , दूसरी पंक्ति में `बनानियां`, तीसरी पंक्ति में `आकाशवाणियां` फिर पांचवीं में `भेड़ियाधसान`, छठीं में वे `मसान`, लेकिन ऐसा क्रम आदि से अन्त तक नहीं है । यह तो संयोगवश ही हुआ जान पड़ता है,क्योंकि कवि की समस्या अन्त में `व्यर्थ जिऊं, मिट जाऊं` में स्पष्ट होती है[१] । इसी को कविता की अर्थ की लय मानना होगी । ऐसी अनेकों कवितायें मिल जायंगी, लेकिन नयी कविता का शब्द की लय से प्राय: कोई सम्बन्ध नहीं, उसमें तो अर्थ की लय का आग्रह है ।

-0-

---

१ पैरों के नीचे मसान है आजकल
पढ़ता रहता हूं नदियां, बनानियां
....
प्रश्न क्यों बनूं
व्यर्थ जिऊं, मिट जाऊं ?
'नयी कविता' अंक-८,सं०-डा० जगदीश गुप्त,विजय देव०ना०साही
`जीवनपंथ`, श्रीराम, पृ० ३०

(घ) यथार्थवादी चेतना

नयी कविता की चेतना यथार्थ के कंकरीले-पथरीले धरातल पर चढ़ने वाली चेतना है। यथार्थ की आंखों से सत्य-असत्य, शोभन-अशोभन की दृष्टि प्रस्तुत करने का साहस नयी कविता ने पहली बार किया। इसने अनेकों आक्षेपों, विरोधों और व्यंग्यों का सामना किया। लेकिन यथार्थ की दृष्टि का सहारा नहीं छोड़ा।

आज नयी कविता की स्थिति पूर्ववर्ती सभी काव्य-धाराओं से पूर्णतया बदली हुई अवस्था में है। आज जो विषम स्थिति स्वतन्त्रता के बाद देखने में आ रही है, उसका कौन जिम्मेदार है, यह कहना तो कुछ मुश्किल है, लेकिन जमींदारी चाहे समाप्त हो गयी हो, वर्ण-भेद (जाति-उपजाति) की समस्या चाहे कुछ कम हो गई हो, लेकिन एक नयी नौकरशाही शासन-व्यवस्था में व्यक्ति किस तरह पतन की ओर जा रहा है, यह तो साफ ही दिखाई दे रहा है। एक ही वर्ग के व्यक्तियों में भी भेद है। एक ही वर्ग के दो शिक्षकों जिनमें एक विश्वविद्यालय के पद पर हैं दूसरा प्राथमिक या कालेज (माध्यमिक स्तर) का अध्यापक है, उनमें किस सीमा तक दूरी है, यह स्पष्टतया देखा जा सकता है। उनकी प्रतिष्ठा में तो अन्तर है ही, उनके वेतन में भी अन्तर है। यद्यपि यदि एक विश्वविद्यालय के प्रोफेसर को माध्यमिक स्कूल में पढ़ाने के लिए नियुक्त किया जाय तो निश्चय ही वह पहले अपनी योग्यता के प्रति शंकित हो उठेगा, अन्तर चाहे वह अभ्यास और श्रम से अपनी स्थिति में सुधार कर ले। फिर भी व्यक्ति-व्यक्ति में अन्तर की खाई और चौड़ी होती जा रही है। यही स्थिति अफसर-क्लर्क की है, मजदूर-मालिक की है और अमीर-गरीब की भी। उनमें मन के प्रति किस सीमा तक अलगाव है, यह स्पष्टतया देखा जा सकता है। आज व्यक्ति-व्यक्ति का कोई सम्बन्ध अथवा महत्व नहीं है। सभी अपनी-अपनी व्यवस्था से असन्तुष्ट घुटते विघटित होते अपनी जिन्दगी के दिन पूरे कर रहे हैं। मनुष्य के अस्तित्व का प्रश्न यथार्थवादी दृष्टि ने उठाया है।

नये कवियों ने यह समझ लिया कि आज मनुष्य का अस्तित्व उसकी प्रतिष्ठा पद के द्वारा आंकी जा रही है । जो जितने ऊंचे पद पर आसीन है, जो जितना धनी है, वही समाज के लिए, देश के लिए महत्वपूर्ण है , बाकी लोग तो नगण्य हैं । चाहे उन ऊंचे पदासीन लोगों का अस्तित्व इन नगण्य व्यक्तियों के द्वारा ही दिखायी देता हो ।

इसी सम-सामयिक बोध से आज की नयी कविता व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की मांग करती हुई परम्परा से मुक्ति चाहती है, तथा अपनी नंगी आंखों से आज की परिस्थितियों का साक्षात्कार कर उसको अपनी चेतना, अपनी भावना में समाहित कर यथार्थपरक दृष्टि देना चाहती है । आज वह अचेतन की अवस्था से निकल कर पूर्ण जागृत अवस्था में आना चाहती है । कवि समझ गया है कि मानव- पशु नहीं है जो एक ही लकड़ी से हांक दिया जाय । प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार है, उसकी सम्वेदना, उसकी अनुभूति अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता चाहती है । अब वह स्थिति नहीं रह सकती कि व्यक्ति सारी विषमताओं, विसंगतियों से निराश पराजित तथा-हारा-सा पीड़ा और अवसाद के भंवर में डूबता-उतराता उसी में पड़ा रहे । आखिर मानव, मानव है, वह किस तरह जागते हुए भी अचेतन की स्थिति में पड़ा रह सकता है । केवल अचेतन स्थिति ही जिन्दगी को संचालित नहीं कर सकती मनुष्य दु:खमें पड़े-पड़े भिन्न-भिन्न रूपों में अपनी मनोवृत्तियों को केवल प्रकट करके ही सन्तुष्ट नहीं रह सकता । वह तो उनसे उभरना भी चाहता है । यही यथार्थ-बोध की दृष्टि प्रयोगवादी कवियों की दृष्टि से भिन्न है । प्रयोगवादी कवियों की दृष्टि पूर्ण तथा यथार्थ-परक नहीं थी, यह कहना न्यायसंगत नहीं , लेकिन जिस दृष्टि से जिस भाव-भूमि में कवि जी रहे थे, वह यथार्थ की अवहेलना की दृष्टि थी । कवि सामाजिक, आर्थिक विषमता से अपने मन को टूटने से नहीं बचा पाता । वह सामाजिक व्यवस्था में अपने अधिकारों , अपनी भावनाओं की तुष्टि नहीं कर पाता ।

इसलिए उसका विचलित होना स्वाभाविक है, और जब मन में उद्वेलन होगा तो आक्रोश, खिन्नता, निराशा, पराजय की मनोवृत्तियों का चित्रण करने में भी होगा, लेकिन इनके चित्रण में प्रयोगवादी कवि नितान्त व्यक्तिवादी और आत्मकेन्द्रित हो गये। इस आत्मकेन्द्रितता की स्थिति से नयी कविता ने व्यक्ति को उभारा, उसने केवल परिस्थिति की दुर्बलता से टूटने-विघटित होने की बात नहीं कही, बल्कि उसने तो साहस के साथ कविता में वह दृष्टि विकसित की जो यथार्थ के खुरदुरे धरातल से होती हुई आज की सभ्यता, आज की संस्कृति, आज की शासन-व्यवस्था की खुली तस्वीर उतारती है। उस खुलेपन में उसने विरोधों और आक्रोशों की चिन्ता नहीं की, बल्कि कविता के उत्तरदायित्व को युग-बोध की दृष्टि से देखा। यह बात और है कि उसकी दृष्टि केवल यथार्थ के माध्यम से समाज की, देश की आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों का क्षत-विक्षत स्थिति का परिचय तो दे सकी है, लेकिन उसका कोई सशक्त से क्रान्तिकारी हल नहीं ढूंढ़ सकी है। आज का यथार्थ युग-बोध से प्रेरित है। आज का कवि आदर्शवाद, नियतिवाद, सिद्धान्तवाद में विश्वास नहीं करता, बल्कि वह कर्मवाद में विश्वास करता है। इसलिए आज की कविता किसी-न-किसी प्रकार अपने परिवेश, अपनी परिस्थितियों के वैषम्य के विरोध में द्वन्द्व स्थिति में प्रकट होती है। अपने चारों ओर फैली भ्रान्तियों, बाह्याडम्बरों तथा बाधाओं से मुक्ति की मांग करती है। आज देश की स्थिति कितनी दयनीय हो गई है, जनसंख्या दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है, आर्थिक, सामाजिक यहां तक कि भावनात्मक स्तरों में गिरावट आ गयी है। लेकिन समाज की चेतना सोयी हुई है। जो उच्च स्तर के हैं, जो धनिक हैं, जो प्रतिष्ठित समझे जाते हैं, उनके प्रति ईर्ष्या-द्वेष के भाव जागृत हो गये हैं। हम एक प्रकार से हीनता के भाव तो बना सके हैं परन्तु उनके प्रति कोई क्रान्तिकारी

क्रान्तिकारी आवाज नहीं उठाते[1]।

विपिन अग्रवाल का 'नंगे पैर' में की कविता 'हुक-हुक-हुक' स्वतन्त्रता के बाद भारतवर्ष में जिस प्रकार की शासन-व्यवस्था की आशा थी, जैसा आदर्श-समाज बनाने का स्वप्न लोगों ने देखा, उसका कहां तक प्रतिफलन हुआ है, इसका सच्ची तस्वीर खिंचती है। देश उस समय चाहे भावनात्मक जोश में रहा हो लेकिन आन्तरिक रूप से उतना मजबूत और स्वस्थ नहीं था, जिसका परिणाम यही हुआ, जो आज दिखायी दे रहा है। लेकिन कवि ऐसा विसंगति में अपनी सम्वेदना को अभिव्यक्त किये बिना नहीं रह सकता। उसकी चेतना यथार्थ और अनुभूति के मध्य से विकसित होती है[2]।

स्वतन्त्रता के बाद युग-युग से होते आ रहे मानवता के प्रति अत्याचार और आतंक का प्रभाव एक ओर तो घटा है तो दूसरी ओर लोकों भिन्न-भिन्न रूपों में विकार-वैषम्य विघटन का बाजार गर्म हुआ है। एक ओर हम सभ्यता की सबसे ऊंची शिखा का स्पर्श करना, उसपर विजय प्राप्त करना चाह रहे हैं, दूसरी तरफ हम नितान्त छोटी और महत्वहीन वस्तुओं के लिए पिशाच भी होते जा रहे हैं। हमारी नैतिकता समाप्त हो गयी है, हम

---

१ .... एक है देश भारतवर्ष
लाखों हैं पैदा होते जहां हर वर्ष
जो जहां जन्मे वहीं रहे
चाहे भूमि हो बंजर पानी न मिले ... ।
--'नंगे पैर'--विपिनकुमार अग्रवाल, 'हुक-हुक', पृ० १४।

२ .... क्या करूं वहां तक पहुंच नहीं सकती
कम्बख्त जाता ने पटरियों के नीचे
पुरानी लकड़ी की पट्टियां लगवा दीं
पोस्टमैन ने मेरे शरीर में
फौलाद की जगह कोयला भर दिया
और सब पुर्जों को अब यहां
कोई दिव्य भाव भी नहीं रहा ... ।
'नंगे पैर'--विपिनकुमार अग्रवाल, 'हुक-हुक', पृ० १७।

जागते हुए सोने का बहाना कर रहे हैं । अपने स्वार्थों के लिए दूसरों का गला काट रहे हैं ,जिनकी सहायता से हम आज ऊंचे-ऊंचे पद पर आसीन हैं, मान-प्रतिष्ठा के अधिकारी हैं, उन्हीं के प्रति हीन दृष्टि रखते हैं । अपने अधिकारों के मद में उनको पीसते हैं । आदमी किस सीमा तक बदल गया है, कि उसके शक्ल की पहचान भी कठिन हो गई है । सर्वत्र एक मंथन है, उथल-पुथल है, युग-युग से चला आ रहा उसका पिछला सांस्कृतिक रूप आज के अमर्यादित परिवेश में बदशक्ल हो उठा है । चारों ओर के परिवेश से वह क्षुब्ध ,कटा-कटा, पराजित,भयाक्रान्त नैतिकता की दृष्टि से गिरा हुआ फिर से पशुत्व की ओर बढ़ता-सा जान पड़ रहा है । ऐसे संक्रमण के युग में कवियों का दायित्व बढ़ गया है । वह साहस के साथ इन सब परिस्थितियों को अपनी चेतना से, अपनी सम्वेदना से वश में कर लेना चाहता है । लेकिन उसका चाहना नहीं हो पाता,क्योंकि आज मानव के पास इतना साहस नहीं है , इतना तीव्र आक्रोश नहीं है कि वह एक प्रकार के विस्फोट से सब कुछ सामान्य,संगत और विशिष्ट बना दे[1] । वह अपनी चेतना को अपने चारों ओर के हो रहे उचित-अनुचित व्यवहारों से असम्पृक्त

---

१ .... मुझे बहुत डर था, जब मानो
कान खोले बराबर सुनता रहा
कब प्रबल धमाका विस्फोट होगा....
कब बगावत के हाथ उठेंगे .....
कब कोई बुरी खबर मिलेगी
पर
अब तक कुछ नहीं हुआ
न जाने कब कैसे
शायद पुराने पीले अखबारों में
अंधेरे में
चुप चुप
मेरे भैया
मेरा युग ... ।
-ऐसे मेरे — विपिनकुमार अग्रवाल ,'धुन्धोप',पृ०३७ ।.

नहीं रखना चाहता, वह तो खुलकर हर बात का प्रदर्शन करना चाहता है । कोई भी वस्तु अपने में पूर्ण शीलसौन्दर्यमय नहीं होती । प्रत्येक वस्तु का यदि एक पक्ष अच्छा है तो दूसरा पक्ष बुरा भी हो सकता है, उसमें दोष भी हो सकते हैं । आज मानवता जिस दौर से गुजर रही है, उसके केवल एक पक्ष का उद्घाटन करने से जीवन की उपेक्षा होगी । आज जो कुछ सत्य है, असत्य है, शिव है, अशिव है, सुन्दर है, विद्रूप है उसकी स्वीकृति खुलेआम होनी चाहिए न कि किसी आदर्श और सिद्धान्त के प्रभाव में दबकर जीवन के उस एक अंश का ही व्याख्या की जाय, जो शिव है, सुन्दर है, सत्य है ।

आज नयी कविता का स्वर यथार्थ से इसलिए भी अनुप्राणित होता है, क्योंकि कवि समस्त विरोधों को, विषमताओं को झेलता है और उससे उद्भूत पीड़ा के अथाह सागर में गोता खाता हुआ अचेतन की स्थिति में नहीं रहना चाहता। वह सत्य को समझ गया है । उसके तीव्र आघात को समझ गया है । सूरज के अस्त होने के बाद उसकी कालिमा को उसका प्रकाश कैसे माना जा सकता है । यह अचेतन की स्थिति तो प्रयोगवादियों की थी । वे आत्मकेन्द्रित हो, समस्त विषमताओं का पीड़ा में, विघटन में डूबते-उतराते प्रलाप करते रहते थे । नयी कविता का संघर्ष तो यथार्थ से सम्प्रेषित भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए है । अब समय भी आ गया है कि युग-युग से सिसकती मानवता के उसकी बेबसी, उसकी मजबूरी के चित्र उसके सामने खोल-खोल कर रखे जायं और उसके लिए उसकी मुक्ति और प्रतिष्ठा का मार्ग खोज निकाले जायं । इसलिए कवि का प्रत्येक प्रयास यथार्थबोध से संचालित होता है । उसके लिए वह किसी भी तरह अपने व्यक्तित्व पर कल्पना या रहस्य का आवरण नहीं डालना चाहता । जो कुछ सत्य है, जिसकी अनुभूति सबल है, जो इन आंखों से दिखायी देता है, वही जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति है । नयी कवि का युग-बोध के सम्बन्ध में उत्तरदायित्व है।

यही यथार्थ कवि की चेतना में जागृति भर देता है । वह अपने भावों को दूसरों के कल्याण हेतु कविता में व्यक्त करता है । वह जानताहै कि आज जिस तरह की व्यवस्था में आदमी पिस रहा है, टूट रहा है,उसका कारण वह स्वयं है । यदि वह स्वयं को, अपनी शक्ति को, पहचानने की कोशिश करे तो समस्यायें हल हो सकती हैं , एक सुदृढ़ समाज बन सकता है,मानव की प्रतिष्ठा की समस्या हल हो सकती है । लेकिन इसके लिए उसे विरोधों का डटकर सामना करना होगा । यहां दूसरों की चापलूसी,प्रशंसा करने वाले ही सफल होते हैं, बाकी स्वाभिमानी ,क्रान्तिकारी हैं,उनको बार-बार असफलता का सामना करना पड़ता है । इसलिए उस आन्तरिक शक्ति की आवश्यकता है जो व्यक्तिमें नयी चेतना का संचार करे ।

एक ओर सभ्यता अपनी पराकाष्ठा पर है , दूसरी ओर व्यक्ति पारस्परिक वैमनस्य,मनोमालिन्य में पड़ा हुआ है ।उसका स्वार्थ ,उसका प्रलोभन इस सीमा तक बढ़ गया है कि व्यक्ति-व्यक्तिका शत्रु बन गया है । व्यक्ति किसी भी क्षण अपने विष का प्रयोग कर सकने में हिचकिचाता नहीं है।जो बड़ा है, सम्पत्ति में, पद में, जनता की निगाह में वह अपने को ईश्वर मानता है, अपने को सर्वशक्तिमान् मानता है । जिसके कारण व्यक्ति-व्यक्ति में इतना भेद, इतना विघटन होता जा रहा है कि उसके निराकरण के लिए विश्व के आदर्श सिद्धान्त अक्षम हैं । चारों ओर जो वीभत्सता फैली हुई है ,उसका यथार्थबोध से समाधान नहीं होता । केवल वस्तुस्थिति का रूप प्रस्तुत होता है । यह बोध अगर किसी अन्य आन्तरिक बोध को जन्म दे सके, तभी समाधान सम्भव है । केवल तीव्र आक्रोश और व्यंग्य द्वारा नहीं ।

अब इस अन-सामयिक युग-बोध के सन्दर्भ में नये मार्ग को अपनायें, इसलिए कवि अपनी पुरानी राह को बदलने का अनुरोध करता है ,क्योंकि जिन्दगी अब दर्द से आगे बढ़ गई है, नई समस्यायें

नई जटिलतायें उठ खड़ी हुई हैं[1]। व्यक्ति जब समाज से,देश से असन्तुष्ट होगा तो उसके मन में, उसकी भावनाओं में उथल-पुथल होगी ही । कभी वह चिन्तित होगा, कभी निराश, कभी संतप्त होगा , कभी खिजेगा,क्योंकि व्यक्ति में एक सम्वेदनशील हृदय होता है और जब उसकी आत्मा में इस तरह के मन्थन पैदा करने वाले भाव उठेंगे तो वह कब तक उनपर विजय प्राप्त करता जायगा ? वह कोई महा मानव तो है नहीं कि समरसता की स्थिति में दुःख-सुख उसे कुछ भी प्रभावित नहीं कर सकेंगे, इसलिए उसके अन्तर्मन में एकालाप उठना स्वाभाविक है । लेकिन आज के युग में इस एकालाप में डूबे रहने से समस्या का निदान नहीं हो सकता, बल्कि दूसरों के अन्तर्मन में उठते मनो-भावों को अपने अन्तर्मन के एकालाप से सम्पृक्त कर समाज के सामने प्रस्तुत करने का साहस करना चाहिए । उसके निराकरण के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए ,क्योंकि आज के पतनोन्मुखी और मूल्य-विशृंखलित युग में कवि का उत्तरदायित्व यथार्थवादी दृष्टि के कारण बहुत बढ़ गया है । केवल मन में कुंठा,अवसाद, आत्मकेन्द्रितता का पर्दा डालने का समय नहीं है ,बल्कि उनके परिष्कार के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए । ऐसे ही प्रभाव की नयी कविता में अभिव्यक्ति मिली है[2]।

१... जिन्दगी अब दर्द से आगे
  बढ़ गई है..... ।
  `क्रान्त' -- कैलाश वाजपेयी , `स्थिति',पृ०८६ ।

२ .... इतना ही कहना चाहूंगा कि औरों की तरह मैंने भी भीतर कढ़ते हुए इस आन्तरिक एकालाप को पकड़ने की कोशिश की है जो आज के इस भौतिक और विशृंखल युग में बहुत बड़ी जिम्मेदारी की तरह महसूस होता है । यह एकालाप कविताओं का ही निर्माण करे, कवि के व्यक्तित्व का नहीं यही आदर्श मैंने अपने सामने रखा है ।....
`मछलीघर' --विजयदेव नारायण साही,भूमिका के नाम पर,पृ०५ ।

यथार्थता : भौतिक सन्तुलन

आज का यथार्थ भौतिकता से प्रेरित है । अत: इसमें एक ओर जन-सामयिक यथार्थ दृष्टि की झलक मिलती है तो दूसरी ओर उसकी विवेकपूर्ण अभिव्यक्ति भी होती है । कवि जानता है कि जीवन का विस्तार असीमित है । प्रत्येक दृश्यमान वस्तु नश्वर है । इसलिए जो कुछ जीवन में भोगने के योग्य है, सत्य है, सुन्दर है, उसका भी और जो कुछ कटु है, विकृत है, भोंडा है, उसका उतने ही साहस से सामना करना चाहिए, जितने आनन्द के साथ हम उत्साह से सुन्दर को भोगते हैं । क्योंकि समय की अनाहत धार में सत्य सुन्दर शिव भी तिरोहित हो जायगा और जो कुत्सित है, भोंडा है, विघटित है, असहनीय है, वह भी इस समय के चक्र में तिरोहित होने वाला है । इसलिए नश्वरता की इस शाश्वतता के प्रति आंख मूंद कर नहीं रह सकते । जो यथार्थ से सम्पृक्त है वही कविता का सत्य है , वही कविता का कला के लिए संघर्ष है[1] । प्रश्न उठ सकता है कि यदि नश्वरता की धारा में सब कुत्सित बीभत्स तत्व समय आने पर अपने-आप विलीन हो जायेंगे तो इतना हाहाकार आक्रोश और कटुता क्यों? यह बात तो सत्य है कि समय की निर्बाध गति में

१... जब यह छोटा सा उत्सव चुक जायेगा
साथ हम समय की बहती हुई धारा में
मिलकर बह जायेंगे
किन्हीं अनागी दिशाओं के पारावार में
सपनों के झूठे आडम्बर से छूट कर
सभी अन्धकार एवं जीवन सीमाओं से
दूर हट जायेंगे ...
दूरी से यही एक परिचय है जीवन का ।
'परिवेश' — कुंवरनारायण सिंह, 'छोटा सा उत्सव', पृ० १६-१७ ।

ऐसा-है-कि जो आज साक्षात् रूप में उपस्थित है, वह कल नहीं होगा । प्रकृति का नियम ही ऐसा है । लेकिन मानव ऐसा जीव है जो कर्मठता में विश्वास करता है, क्रिया-प्रतिक्रिया में विश्वास करता है । अगर सारी विषमताओं को, बीभत्सताओं को वह यह कहकर झेलता रहे कि समय के प्रवाह में सारा वैषम्य स्वयं दूर हो जायगा, तो जीवन का अर्थ ही बदल जायगा । उसके जीवन और पशु के जीवन में कुछ भी अन्तर नहीं रह जायगा। वह हाथ-पर-हाथ रखे उस दिन की प्रतीक्षा करता रहेगा, जब तक सारी परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं हो जातीं , लेकिन जिन विषम, कुत्सित और बीभत्स परिस्थितियों को मनुष्यों ने जन्म दिया है, उनका समूल उन्मूलन मानव ही कर सकता है । मानव इतना सम्वेदनशील प्राणी है कि वही दूसरे की पीड़ा, दुःख-दर्द को समझ सकता है । इसलिए जानते हुए भी वह सभी विरोधी परिस्थितियों से जूझना चाहता है । उस पर विजय प्राप्त करना चाहता है । संघर्ष के दौरान उसमें कभी कटुता, कभी तिक्तता और कभी हाहाकार के शब्द सुनायी देते हैं । यदि यथार्थ का बीभत्सता ही कला के लिए संघर्ष मान लिया जाय तो कला की उपलब्धि के विषय में शंका उठ सकती है । प्रत्येक युग अपने युग के संकट को कठिन मानता है । यही बात नयी कविता के साथ भी है । नयी कविता की पृष्ठभूमि में जो परिस्थितियाँ रही हैं, उनके कारण संघर्ष अधिक करना पड़ा । जन-जीवन समस्याओं से पट पड़ा, समाज में बुरी तरह अव्यवस्था व्याप्त हो गई । 'कला-कला के लिए' का अर्थ विस्तृत होकर 'कला मानव जीवन के लिए' के अर्थ में ली जाने लगी है। इसलिए नयी कविता का यथार्थवादी दृष्टिकोण जन-सामाजिक संघर्ष को कला के लिए महत्वपूर्ण मानता है । कला का मानव जीवन से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं है, यह बात नयी कविता के द्वारा अच्छी तरह समझी जा सकती है । नयी कविता का संघर्ष जीवन की सहज यथार्थानुभूति से परिचालित है । इसीलिए

आज के युग का वैषम्य ही नयी कविता को सबसे अधिक उद्वेलित करता है । नयी कविता के द्वारा जन-जीवन की विषमताओं,हाहाकार,मानसिक उद्वेलन के लिए यदि कोई अनुकूल हल निकाला जा सकेगा तो नयी कविता की यह बड़ी उपलब्धि मानी जायगी ।

आज सर्वत्र एक बनावटी नितान्त कृत्रिम प्रभाव छाया हुआ है । युग तीव्रता से परिवर्तित हो रहा है । एक-के बाद दूसरी छाया इतनी तीव्रता से प्रभाव जमाती जा रही है कि पहली छाया को देख पाना सर्वथा असम्भव हो गया है । सभी तरफ तनाव हैं,घिराव है और फसाव है । विसंगतियों के प्रति,अन्याय के प्रति व्यक्ति आवाज बुलन्द नहीं कर पाता , वहीं से संत्रस्त,उसमी में डूबता-उतराता,गोते खाता रहता है । उसकी पकड़ से अपने को निकालने का प्रयास नहीं करता । चारों ओर समस्याओं की गहरी खाई खुद गई है । उनमें वह घिरा मुक्ति के लिए कामना नहीं करता है । जो क्रान्ति का आवाहन करना चाहते हैं, जो अन्याय , विसंगति के विरुद्ध आवाज उठाने का प्रयत्न करते हैं,उनको कानून के शिकंजों में जकड़ दिया जाता है । कहने को देश में लोकतंत्र है, पर परतन्त्रता की सीमा का अन्त नहीं । सब अपने-अपने स्वार्थ की सिद्धि में संलग्न हैं । ऐसी सामाजिक व्यवस्था, ऐसी स्वार्थपरता, ऐसे समाज के प्रति कवि की आत्मा का स्वर प्रस्फुटित हो उठता है । वह जानना चाहता है कि मानवता ने क्या वास्तव में मानवता के दायित्व को समझा है ? अपनी आत्मा में दूसरों के दुःख-दारिद्र्य का स्पन्दन महसूस अनुभव किया है । क्या दूसरों के हित के लिए अपने को निःस्वार्थ हो अर्पित किया है ? उसका मन घृणा और क्षोभ से भर उठता है,व्यक्ति की स्वार्थपरता के कारण ,उसकी पाषाणता के कारण । वह यथार्थ को इस अनुभूति को अपने अन्तर्मन में छिपाकर नहीं रख सकता । वह तो ऐसे व्यक्तियों से पूछकर पूछना चाहता है कि

क्या उसका ऐसा व्यवहार समाज के प्रति, देश के प्रति उचित था ? नहीं, वह साफ कह देता है कि ऐसे ही व्यक्तियों से देश की स्थिति मरणासन्न होती जा रही है और ऐसे ही पाषाण-हृदय वाले व्यक्ति मानवता के नाम कलंक लगाते जीवित रहे हैं।[१] नयी कविता का स्वर यथार्थ से प्रेरित है, इसलिए वह उन सभी स्थितियों का विरोध करता है, जिन्होंने मानव को आशावादी बना दिया है। व्यक्ति अपने चारों ओर के परिवेश से असन्तुष्ट है, न शासन-व्यवस्था उसके अनुकूल है न आर्थिक स्थिति उसका साथ देती है और सबसे बड़ी बात वह अपने मान-सम्मान की दृष्टि से भी अवहेलना का शिकार बना हुआ है। वर्तमान में जीने की बात की इतनी बड़ी महत्ता को वह भुला देता है और इस प्रकार वह निष्क्रिय होकर पशुओं के समान सब कुछ सहता हुआ आच्छन्न होता रहता है। आज समय की मांग में मात्र आस्थावादी और आशावादी होकर बैठने की आवश्यकता नहीं है। आज तो आशा एवं आस्था के साथ-साथ संघर्ष करने की भी आवश्यकता है। संघर्ष की पीड़ा में अपनी भावनाओं, अपनी सम्वेदनाओं को नियोजित करने की आवश्यकता है। मात्र यह सोच लेना कि आज दुःख है तो कल सुख भी अवश्य ही आयेगा, ईश्वर सब के ऊपर अपनी दया-दृष्टि रखता है। यह आज के युग की दृष्टि नहीं हो सकती। आज तो व्यक्ति का युग है, मानवता का युग है, ईश्वर की शक्ति के आगे अधिकार डालने की आवश्यकता नहीं है। व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है और उसके ही प्रयत्नों से उसकी मुक्ति सम्भव है। इसलिए कवि व्यक्ति में चेतना का संचार करना चाहता है।

---

१. एकाएक मुझे भान होता है जग का
   अखबारी दुनिया का फैलाव,
   फंसाव, घिराव, तनाव है सब ओर
   पत्ते न खड़के, सेना ने घेर ली हैं सड़कें
   किसी जनक्रान्ति के दमन-निमित्त यह
   मार्शल-लॉ है।
   [illegible] खिंच रही है....
   ओ मेरे आदर्शवादी मन
   ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन,
   अब तक क्या किया?
   जीवन क्या जिया !!

   [illegible] फिर फिर के लिए [illegible] - तोड़ दिये,
   बन गये पत्थर
   बहुत बहुत ज्यादा लिया,
   दिया बहुत बहुत कम,
   मर गया देश, अरे जीवित रह गये तुम।
   'चांद का मुंह टेढ़ा है' - गजानन माधव मुक्तिबोध
   पृ० २७५-२७८ ।

सत्य की कटुता से व्यक्ति की सुप्त-चेतना में प्रकाश भर देना चाहता है । वह चाहता है कि व्यक्ति इतना मजबूत हो जाय कि वह छोटे-छोटे दुःख पराजय से अपने व्यक्तित्व को खण्डित न करे, बल्कि वह अपने कठोर पुरुषत्व से सब विसंगतियों पर[1] विजय प्राप्त कर ले, तब ही वह समाज के मन्दिर की प्रतिमा बन सकता है ।

यथार्थ चेतना : व्यक्ति और समाज की सापेक्षता में

नयी कविता का यथार्थ व्यक्ति की चेतना की ही अभिव्यक्त नहीं करता, बल्कि वह समाज के साथ-साथ भी चलता है । आज जिस चेतना से मानव की प्रतिष्ठा का प्रश्न जुड़ा है, वह आज की कविता की आधुनिक यथार्थपरक दृष्टि के कारण ही है । नयी कविता व्यक्ति-विशेष की प्रतिष्ठा को महत्व नहीं देती है, वह तो आज प्रत्येक व्यक्ति को जुगित के साथ-साथ उसे युग-नेता, पथप्रदर्शक, युग-मानव बनाना चाहती है, उसकी भावना यथार्थ से प्रेरित होकर अभिव्यक्ति पाती है । जब कवि अपने स्वर में अपने को कवि मानते हुए भी द्रष्टा उन्मेष्टा, संधाता, अर्थवाह, कृतव्यय होने की घोषणा करता है तो उसके स्वर से सहस्त्रों[2] मनुष्यों को बल मिलता है । उसे भी अपने व्यक्तित्व का भान होता है ।

---

१ ... तो इन आँखों को तुम पानी बनकर बह जाने दो
जिससे कि तुम्हारा पौरुष केवल पत्थर रह जाय
और वही पत्थर किसी मन्दिर की मूरत बने ...
जो कि इस स्वार्थी मानव को विस्मृत हुई
बिखरी हुई करुणा की कहानी एक बार फिर कह जाय ... ।
'अंधा चाँद' — दुष्यन्तकुमार, 'इन उफनते हुए बादलों', पृ० ६-७ ।

२ ... मैं कवि हूँ
द्रष्टा, उन्मेष्टा
संधाता
अर्थवाह
मैं कृतव्यय ...
— 'आँगन के पार द्वार' — अज्ञेय, पृ० ५० ।

आज जितना भी दुराचार, अनीति, छल, कपट, भेद-भाव तथा वैमनस्य का भाव सभ्य कहे जाने वाले शहरों में दिखायी देता है, उतना ग्रामों में नहीं। जहां शहरों में एक ओर सुख-साधन की व्यवस्था है, वहीं सबसे ज्यादा भ्रष्टाचार भी है। हर ओर शोषण-दंशन हो रहा है। मानव एक-दूसरे की उन्नति करते नहीं देख सकता है। समान अधिकार की तो बात ही नहीं, जो जिसके आधीन है, वह बेचारा पशु से भी गया-बीता है। उच्च पदाधिकारी अपने को ईश्वर समझने लगे हैं। उनके व्यक्तित्व में ऐसा परिवर्तन आ गया है कि उस मुखौटे में उनका असली रूप छिप गया है। एक ओर शहरों की सभ्यता, सम्पन्नता आँखें चौंधियाने वाली हो रही है तो दूसरी ओर स्थिति कितनी गिरती जा रही है। सर्वत्र एक कोलाहल है, विवेक-बुद्धि के स्थान पर नारे और भीड़ का अनुसरण हो रहा है, चारों ओर एक अजीब-सी स्पर्धा है, सब एक विचित्र प्रकार के मान-दम्भ में भरे प्रपंची हो गये हैं। ऐसी विचित्र प्रकार की व्यवस्था ने कवि की चेतना में शहर की एक अजीब सी तीखी अनुभूति भर दी है। वह शहर की तिक्त भूमि से अपनी चेतना को बचाकर नहीं रख पाता। उसकी चेतना तो यथार्थ से उद्विग्न होती है।

आज के युग में जिस यथार्थ ने कवि को अत्यधिक संवेदनशील बनाया है, उसने उसे अपने अस्तित्व को पहचानने का भी अवसर दिया है। युग-युग से जिस अस्तित्वहीनता की परम्परा रही है, उसके विरोध में कवि ने अपने अस्तित्व की घोषणा की है। वह बता देना चाहता है कि आज जिन परिस्थितियों में युग जी रहा है, उनसे उबरने के लिए व्यक्ति को अपने अस्तित्व का भान होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकार अपने अस्तित्व का बोध करे, वह दीन-हीन पशुओं सा जीवन न बिताये। इसलिए

वह अपने अस्तित्व की खोज में संलग्न दिखाई देता है[1]। अस्तित्व-बोध की चेतना यथार्थ की दृष्टि से कवि को मिली है।

आज यथार्थ की जो दृष्टि कवियों को मिली है, उससे नयी कविता की चेतना के नये आयाम मिले हैं। यथार्थपरक दृष्टि कवि को हर पीड़ा, हर दर्द को नये अर्थ तक जाने के लिए प्रेरित करती है। कवि संघर्ष में छूटे हुए संघर्ष की पीड़ा को न झेलकर नये के निर्माण की पीड़ा का आवाहन करता है[2]। यही कारण है कि यथार्थ-बोध ने नयी कविता के अधिकांश कवियों को पलायनवाद तथा केन्द्रितता से उबार कर व्यक्तित्व-प्रकाशन के धरातल पर ला छोड़ा है[3]।

---

१ .... जब मैंने पुस्तक खोली
मुझसे इतिहास पुरुष ने कहा
किसे खोजते हो: मुझे ? या अपने को ?
मैंने कहा-- केवल अस्तित्व को ... ।
--`अतुकान्त`-- लक्ष्मीकान्त वर्मा, `इतिहास सेतु`, पृ०४२ ।

२ ... दर्द हूं जो --
साल के आखिरी दिन की सांझ का
जो प्यार से ज्यादा नये की प्रार्थना है,
हर नया दिन जो
हर प्राण बने माथे पर मरा मंगल तिलक,
कभी तो तोड़ दो, बस,
बाद में हम चांदनी को फलक काटेंगे ।
`नये कविता` अंक १, सं० डा० जगदीश गुप्त, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, केदारनाथ सिंह, पृ० २७ ।

३ ... पुरानी चौहद्दी की सीमारेखाएं हैं,
पर मैं प्रकाश का वह अन्त:केन्द्र हूं
जिससे गिरते बाहरी वस्तुओं की छायायें बदल सकती हैं ...
अपनी पंक्तियों में मथ कर
मैं संसार को नया ही नहीं करता
बल्कि अस्तित्व को दूसरे अर्थों में प्रकाशित करता हूं ।...
`चक्रव्यूह` -- कुंवरनारायण
`माध्यम`, पृ० २ ।

जहाँ यथार्थपरक भाव-बोध ने नयी कविता की चेतना को विस्तार दिया है, वहाँ निरर्थक भाव-बोध के भी उदाहरण मिल जाते हैं । कभी नितान्त यथार्थपरक दृष्टि की अभिव्यक्ति में कवि इतना महत्वहीन लगता है कि कहा नहीं जा सकता । कभी-कभी कोरे शिल्पविलास के चक्कर में कवि यथार्थ के नाम से जो अभिव्यक्ति करता है, वह न तो कविता के प्रति कुछ विशेष अर्थ रखता है और न युग-विशेष के प्रति ही । 'मायादर्पण' की एक छोटी-सी पंक्ति कवि के मस्तिष्क की केवल सूझ-बूझ ही कही जा सकती है । उसका यथार्थ की दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं[1] ।

इसी तरह प्रेम-प्रसंगों की बात कही जा सकती है । प्रेम एक पिपासा है, एक आनन्द है, एक उत्तरदायित्व की भावना जगाता है, लेकिन आज प्रेम का जो खुला प्रदर्शन हो रहा है, वह नैतिकता की दृष्टि से तो गिरा हुआ है ही, साथ ही कवि के व्यक्तित्व के असन्तुलन को भी व्यक्त करता है । एक ओर अशोक वाजपेयी कोमल भावों के कवि हैं, दूसरी ओर उनकी मनःस्थिति की सुकोमलता उनके प्रेम-प्रसंगों का कहीं-कहीं बेहद खुला प्रदर्शन करती है[2] ।

---

१ ... आकाश में द-रा ऽ - र
मायादर्पण -- श्रीकान्त वर्मा, विपुल, पृ०३२ ।

२ ... हमारे शरीर एक सौन्दर्य की रचना में मुझे हों
तो मैं तुझे खोने दूंगा तब तक
जब तक तू तृप्त न हो ले
बांधकर रखने दूंगा अपने चुम्बन में...
'शहर अब भी सम्भावना है' -- अशोक वाजपेयी,
'[illegible]', पृ०२५ ।

यह बात तो सत्य है कि व्यक्ति अपने चारों ओर के वातावरण, वस्तुओं, घटनाओं से प्रभावित होता है । ये ही प्रभाव जब उसके चेतना की पकड़ में आ जाते हैं तो उनकी कविता में अभिव्यक्त होते हैं, इसलिए प्रेम जैसी महान् पवित्र भावना को यथार्थ के खुरदुरे धरातल पर अवतरित होने से नहीं रोका जा सकता । लेकिन हर भावना के पीछे एक मर्यादित रेखा भी हो तो काव्य भी सन्तुलित कहा जा सकता है । सन्तुलन कभी भावों की स्वच्छन्दता में बाधक नहीं होता, बल्कि भावों के स्वच्छन्द प्रवाह को स्पष्ट और सुन्दर बनाता है ।

अन्त में यह कहना अनुचित न होगा कि युगीन परिस्थितियों की टकराहट से आज की युग-चेतना यथार्थवादी होती हुई अनेक प्रच्छन्न दिशाओं में भटकी है । इस भटकन में इसने कुछ खोया है, कुछ पाया है । इस खोने पाने की प्रक्रिया में आस्था और उदात्तता के स्वर झटके से टूटे हैं । संशय और असन्तुलन की स्थिति में अनास्था के प्रति आस्था, अविश्वास के प्रति विश्वास क्रमशः प्रस्फुटित हुए हैं । इसी सन्दर्भ में आज की नयीकविता की चेतना युगीन यथार्थ के बीच द्वन्द्वात्मक प्रवृत्ति का परिचय देती है ।

--0--

(८०) मानव-विशिष्टता एवं उसकी प्रतिष्ठा

सच पूछा जाय तो नयी कविता सच्चे अर्थों में मानव-सम्वेदना का काव्य है । जिन परिस्थितियों में नयी कविता प्रकट हुई उसमें मानवता की पराजय का सिसकता स्वर ही प्रेरणात्मक सिद्ध हुआ है । इससे पहले किसी भी युग में मानवता को इतना महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिला, जितना नयी कविता में ।

नयी कविता की पृष्ठभूमि में मानवता के पराजय की गाथा इस सीमा तक व्याप्त हो चुकी थी कि मानवता मृतप्राय होती जा रही थी । युद्धों का प्रभाव प्रकारान्तर से विदेश से आया । लेकिन इससे पूर्व की कविता इतनी भयानकता और समस्याओं के बीच नहीं रची गई । युद्धों ने जो विषम परिस्थितियां उत्पन्न कर दीं उनसे संत्रस्त व्यक्ति अपने अधिकारों से च्युत एक टूटी-फूटी निराशापूर्ण जिन्दगी के दिन पूरे करने में लगा हुआ[१] था । उसकी भावनाओं के, उसकी आत्मा के पंछी के पर काट दिए गए । वह इतना कायर हो गया कि गलत और सही में अन्तर जानते हुए भी उसका विरोध करने का साहस नहीं कर सकता । सर्वत्र बेईमानी, घूसखोरी, चोरबाजारी, मंहगाई का बाजार गर्म हो गया । स्वतन्त्रता के बाद जिन सुख-सुविधाओं की कल्पना की गयी थी, वे भी वास्तविकता के धरातल पर नहीं आ सकीं । सर्वत्र असमानता, विसंगति तथा टूटे-बिखरे का ही स्वर उभरने लगा । व्यक्ति व मानसिक, सामाजिक तथा आर्थिक विषमता का शिकार होने लगा । उसकी

---

१ ... आज मन ही मन पकता रहा है
और इस जाल की डरावनी लपटें देखकर
अपना मादक शरीर ढीला किये सुस्ता रहा है
पर वह उड़ नहीं सकता, क्योंकि वह मनुष्य लोक है
जहां ये पाँखें तोड़ दी जाती हैं
और ये आँखें फोड़ दी जाती हैं
जो इस धरती की सीमा को लांघ कर
उड़ने की कोशिश किया करती हैं .... ।

— 'अंधा चांद' — मुनिकचन्द्र, 'कठघरे में बैठा उदास कबूतर', पृ० ७८ ।

आकांक्षायें , उसके स्वप्न टूटने लगे , उसके चारों तरफ कभी न मिटने वाला एक निराशा का समुद्र हिलोरें लेने लगा । जीवन-दृष्टि एकाएक परिवर्तित हो गई, पुराने मूल्य नयी परिस्थितियों के सामने चूर-चूर होकर बिखरने लगे । सर्वत्र एक विशृंखलता, वैषम्य तथा अविश्वास का स्वर उभरने लगा । तन की गुलामी तो छूट गई लेकिन मन-मस्तिष्क अब भी दासता की बेड़ी में जकड़ा रहा । खुलकर अपनी बात कहने का साहस किसी को भी न हो सका । ऐसे मानव-पराजय के समय नयी कविता मानव-प्रतिष्ठा के प्रति जागरण का सन्देश लेकर अवतरित हुई ।

मानवता ने जिस सीमा तक पराजय, तिरस्कार, अमानवीय व्यवहार, व्यंग्य, उपहास का सामना किया उससे उसका मन एक विरक्ति, एकाकीपन, उदासी से भर उठा । उसे इन परिस्थितियों से उबरने का कोई भी मार्ग नहीं सूझता । ऐसी विषम परिस्थितियों में नयी कविता की चेतना ने मानवता के कल्याण की जो ज्योति जगायी वह नयी कविता के एक सशक्त आयाम से सम्बन्धित है । नयी कविता के कवियों की चेतना परिधि का विस्तार समस्त मानवता के कल्याण के प्रश्न से जुड़ा हुआ है । सहृदयता, सब के प्रति मंगल कामना, सब की भलाई में अपना उत्सर्ग तक कर देना, नयी कविता की मानवता के प्रति सम-सामयिक जागरूकता एवं उत्तरदायित्व की सशक्त भावना है । नयी कविता की चेतना समष्टि के कल्याण में अपना कल्याण समझती है । मानवता की भलाई के लिए यदि उसे प्राणों को भी उत्सर्ग करना पड़ेगा तो वह बारम्बार अपने को बलिदान कर देगा, क्योंकि उसने मानवता के प्रति हुए अभद्र, अमानवीय, अनुचित व्यवहार को देखा है, भोगा है, चूंकि वह भुक्तभोगी है, इसलिए मानवता के

प्रति हो रहे अत्याचार के खिलाफ प्रत्येक दु:स्थितियों से डटकर सामना करना चाहता है[1] ।

यद्यपि नयी कविता के प्रति कुछ कवि असंतोष, अविश्वास, अनास्था में एक प्रकार का घुटन भरा जीवन बिताना चाहते हैं, तो दूसरी ओर कुछ कवि समस्त विसंगतियों से मुक्ति के लिए खुला विद्रोह भी करना चाहते हैं, क्योंकि ये कवि अपने दु:ख को मात्र अपना दु:ख न मानकर दूसरों के दु:ख , दूसरों की पीड़ा में अपनी भावनाओं को, अपनी संवेदनाओं को समाहित कर देना चाहते हैं[2] ।

प्रत्येक युग का अपना एक सत्य होता है और प्रत्येक युग की काव्य-धारा उसका सत्य होती है, क्योंकि साहित्य की जिस विधा में सबसे पहले युग के गहरे परिवर्तनों के लक्षण दिखायी देते हैं, वह है

---

१ ... एक मेरे पास भी
यह दर्द का पौधा
कि जो इस जिन्दगी से
सींचकर संजोयी कटुता
इसकी छांह यदि सुख दे तुम्हें
तो प्यार में दु:ख को समर्पित हूं
निरन्तर व घुटन जैसी निराशा
के अंधेरे गर्त से
उठते हुए ये गीत
तेरे पथ में कर दे उजाला....
बारम्बार अर्पित हूं ।

— कविताएं — कीर्ति चौधरी, 'निस्तब्ध' आधी रात, पृ०२०

२ ... एक ओर असन्तोष, अनास्था अविश्वास और भ्रान्तियों के प्रति सशक्त विद्रोह के और दूसरी ओर उसके समर्थन में विवश घुटन के बीच साहित्य में प्रस्तुत घुटन अविश्वास की अभिव्यक्ति है, साथ वह रूप-शिल्प वस्तु विधान और मूल्य की अधिक समर्थक है । वह युग की पंखुड़ियों को सार्वभौमिक दृष्टि से न देखकर अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण से देखता है । उसके लिए उसका अपना सुख ही सुख है ... दूसरी ओर व्यक्ति अपने व्यक्तिगत दु:ख को व्यापक दु:ख का एक अंश मानता है ... और अपने दु:ख अथवा सुख के माध्यम से व्यापक सामाजिक सुख-दुख को देखने की चेष्टा करता है ... उसे मुक्ति मार्ग सूझता है ।

— नये प्रतिमान पुराने निकष — लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ०१६५-१६६ ।

कविता । क्योंकि कविता मानव के अन्तर्मन की भाषा को व्यक्त करने में सब विधाओं से अधिक सक्षम है, चाहे उसकी भाषा सांकेतिक क्यों न हो । समकालीन मानव-चेतना जिस रोग से ग्रसित हुई वह था जीवन-मूल्यों में बिखराव । फलस्वरूप कविता की भाषा उसकी सम्वेदना अधिक तीव्रता से बदली और प्रभावित हुई । परिणाम यह हुआ कि नयी कविता मानव - सम्वेदना, मानव-सम्मान, आत्म सम्मान साथ-ही-साथ आत्मविश्वास की कविता बन कर अवतरित हुई ।

स्वातन्त्र्योत्तर परिस्थितियां : मानव समस्यायें

भारतीय परिवेश में स्वतन्त्रता के बाद उत्पन्न विषम परिस्थितियों से मध्यवर्ग ही सबसे अधिक प्रभावित हुआ । क्योंकि धनिक वर्ग को किसी भी प्रकार के आन्तरिक या बाह्य जगत के द्वन्द्वों के बीच से नहीं गुजरना पड़ा । निर्धन तथा शिक्षा -ज्ञान की दृष्टि से निम्न स्तर के लोगों में इतनी चेतना, इतनी बुद्धि नहीं थी कि वह मान-अपमान की पीड़ा को गहरे अर्थों में ले सकते । अतः बचा बौद्धिक मध्यवर्ग ही । यद्यपि ऐसा नहीं था कि सारी विसंगतियां, अनाचार,अनानुशासिकता इधर या मध्यवर्ग के बीच हो रही हों, बल्कि ग्रामों की तो स्थिति और भी दयनीय थी । कृषकों की दशा अत्यधिक बिगड़ी हुई थी , अशिक्षा,अन्धविश्वास परम्परा से चिपके रहने के कारण अनावश्यक,असंगत टैक्स मालगुजारी आदि से त्रस्त थे पेट काट-काट कर जिन्दगी को बिता रहे थे । ऐसी अवस्था में नयी कविता मानवता का सन्देश लेकर प्रस्तुत हुई या यों कहें कि नयी कविता में मानवीय संवेदनात्मक तत्वों की अभिव्यक्ति हुई है । संसार में मानवता के प्रति हुए अनाचार से उसकी आस्था जगी है । छल-कपट के स्थान पर निश्छल , निष्कपट व्यवहार से मनुष्य के कल्याण के लिए प्रयत्नशील होना

चाहता है । अपने गीतों से समस्त मानवता के दर्द को समाप्त कर देना चाहता है[1] ।

समाज में फैली साम्प्रदायिक आग वर्गभेद की भावना आदि से ग्रस्त मानव जीवन मूल्यों से कटता जा रहा है । आपस में वैमनस्य भाव से मानवता संकीर्णता की ओर सिमटती जा रही है । 'मैं' 'तुम', 'यह', 'वह' का नारा बुलन्द हो रहा है । व्यक्ति चारों ओर से विचारों से, बुद्धि से, शक्ति से सीमित कर दिया गया है । उसकी चेतना पर तन्द्रा का आवरण डाल दिया गया है । पशुवत् जीवन जीने पर भी वह किसी प्रकार का आक्रोश या विरोध प्रदर्शित नहीं कर पा रहा है । वह तो दूसरों के हाथों की कठपुतली है, वे मनमानी मनुष्य को अपने इशारों पर चला रहे हैं और वह उन इशारों पर चलता हुआ टूटता जा रहा है, समाप्त होता जा रहा है । नयी कविता का स्वर ऐसी शापित-ग्रस्त मानवता की सम्वेदना का स्वर है । कवि सारी सीमाओं को तोड़कर

---

१ ... इस दुःखी संसार में जितना
बने हम सुख लुटा दें
बन सके तो निष्कपट मृदु हास के,
दो कण लुटा दें,
दर्द की ज्वाला जलायें, नेह
भीगे गीत गायें,
चाहते हैं गीत गाते ही रहें
फिर रोत जाये,
यह कि, जब पछतायेगी अपनी
विवशता पर प्रलय भी ... ।

—'दूसरा सप्तक' -- भवानीप्रसादमिश्र, पृ० २१ ।

मानवता की मुक्ति की कामना करता है । मानवता को उचित प्रतिष्ठा एवं स्थान दिलाना चाहता है । अपनी भावना, अपनी चेतना, अपनी संवेदना को दूसरों की संवेदना, चेतना में मिलाकर मानवता का पथ प्रदर्शन करना चाहता है[1] ।

स्वतन्त्रता के बाद व्यक्ति में सामाजिक मानसिक तथा आर्थिक संघर्ष तीव्रता के साथ उजागर हुए हैं । जिस प्रकार की सुविधाओं की आशा गांधीवादी आंदोलन के फलस्वरूप की जाती थी , उसका बिल्कुल उल्टा प्रभाव हुआ । जातिगत वर्ग भेद-भाव आदि से वैषम्य का जो प्रभाव मध्यवर्ग पर पड़ा उससे उसका मन,कुंठा, निराशा, अवसाद और पीड़ा से तो भरा ही साथ-ही-साथ जड़ता की ओर भी बढ़ता गया । जहां एक ओर राष्ट्रीय योजनाओं से उसको अपनी स्थिति के प्रति कुछ आशा बंधी, वहीं बढ़ती हुई आकांक्षाओं के पूरे न होने पर दुहरा आघात भी सहना पड़ा है । यही वर्ग सबसे अधिक संवेदनशील(कुछ अर्थों में भावुक भी) तथा चेतनायुक्त भी था । अतः उसकी भावनायें,सम्वेदनायें जहां एक ओर वैयक्तिकता की ओर हैं वहीं सामाजिक,राजनैतिक, तथा आर्थिक समस्याओं के

---

१ .... मैं, तुम, यह, वह —
मन के चारों कोने —
और व्यक्ति की ये सीमायें
कब टूटेंगी
जब तुम होगी मुझसे दूर
यह भी अपना
वह भी अपना
होगा
मैं अपने यह में खोऊंगा
तब
तथास्तु ... ।

`दूसरा सप्तक` — सं० अज्ञेय

`एकोऽहं बहुस्याम्` , पृ० १९८ ।

(रघुवीर सहाय)

संघर्ष से कटकर भी वह नहीं रह सकता । ऐसी ही समस्याओं के संघर्ष को झेलता वह अपने सन्तुलन को खोता जा रहा है । नयी कविता के कवियों का यही प्रयास है कि व्यक्ति अपने सन्तुलन को न खोये । जो वैषम्य की दीवार खड़ी होती जा रही है । उसे आज गिराना ही होगा । मानव विशिष्ट अर्थों में मानव है । उसकी भावनाओं का उसके अधिकारों का नैतिक सम्मान होना चाहिए । मनुष्य, मनुष्य का शत्रु नहीं है ।

देश की व्यवस्था इस सीमा तक बिगड़ चुकी है कि व्यक्ति उसके भंवर में पड़कर घिरता ही जा रहा है । उसके अधिकारों की उसके मनोभावों की अवहेलना हो रही है । अपने चारों ओर के कृत्रिम परिवेश से वह इस सीमा तक आक्रान्त हो गया है कि उसे अपने चारों ओर के वातावरण से उबरने का कोई पथ नहीं दिखायी देता । अतः पथ के अभाव में वह भटक गया है । उसकी चेतना खो गयी है । अपने भविष्य के प्रति वह संदिग्ध है । उसकी भावना कुंठित हो गई है । वह भ्रमित-सा निरुत्साहित जीवन जी रहा है । ऐसे मानव के प्रति नयी कविता की चेतना सजग है । वह ऐसे टूटे व्यक्तित्वों के लिए आशा की किरण जगाना चाहता है । वह जानता है कि परिस्थितियों के कुचक्र में फंसकर मानव की आत्मा में जो हाहाकार है, उसका निदान वह कर सकता है । उसकी कुचली हुई आकांक्षा, मनोकामना, पूरी हो सकती है यदि उसके लिए उसकी

सोयी आत्मा में जागरण का मन्त्र फूंका जाय[१] ।

इसप्रकार नयी भाव कविता में मानवता का स्वर बड़ी तीव्रता से उभरा है । जीवनाकाश में तिमिराच्छन्न दु:ख के बादलों के बदले में नवजागृति, नयी आशा एक-एक सुनहली किरण के समर्पण से कवि उन भूले-भटकों के तथा जिनके मन में कुछ आधे अधूरे स्वप्न अंगड़ाई ले रहे हैं,उनके लिए नई चेतना का संचारकरना चाहता है । पुरानी परम्पराओं, व्यवस्थाओं ,मूल्यों के सन्दर्भ में पिष्टपेषण जैसे मौन कर्म में निरत, चारों ओर से सीमाओं के घेरे में आबद्ध, असहाय हारे-थके मानव जीवन में नया कवि नया जीवन भरना चाहता है । अपने अधिकारों के लिए अपने विचारों के लिए लड़ने की शक्ति के रूप में उनमें अपनी सशक्त वाणी का संचार करना चाहता है । समय की मांग से वह पूर्णतया परिचित है । और मानवता के प्रति हो रहे अनुचित व्यवहार के विरोध में आवाज उठाना अपना कर्तव्य, अपना नैतिक आचरण समझता है, अत: उसके लिए प्रयत्नशील भी होता है ।

----

१ ... एक सुनहली किरण उसे भी दे दो
भटक गया जो अंधियारे के वन में
लेकिन जिसके मन में ,
अभी शेष है चलने की अभिलाषा ....
भूल गया जो
सुख बरसाने वाली भाषा
उसको भी वाणी के कुछ क्षण दे दो ....
एक सुनहली किरण उसे भी दे दो ।
— झुके हुए आसमान के नीचे -- कीर्ति चौधरी
'एक सुनहली किरण उसे भी दे दो' ,पृ० ११

एक और प्रगतिवाद और प्रयोगवाद में जो संघर्ष की झलक मिलती है, वह रीतिगत व्यवस्था और पारम्परिक रूढ़ियों में खोते हुए मानव की प्रतिष्ठा की झलक थी । अतः प्रयोग युग के कवियों का संघर्ष नये मार्ग को ढूंढने का संघर्ष था , जब कि नयी कविता का संघर्ष कुंठा, विषाद, विसंगति तथा अवसाद से छुटकारा दिलाकर पुरानी सम्बन्धच्युत परम्परा के स्थान पर नयी मर्यादा, नये प्रतिमान को प्रतिष्ठापित करने का है । क्योंकि आज पुराने प्रतिमानों से मनुष्य का त्राण नहीं हो सकता है ।[१] आज के मानवीय विघटन को कवि ने न केवल पहचाना है वरन् उसकी वेदना की पीड़ा को भी सहा है । आज मनुष्य इस कदर गिरी स्थिति में आ गया है कि बेजान वस्तुएं उससे अधिक महत्वपूर्ण लगने लगी हैं । सर्वेश्वर दयाल का 'पोस्टर और आदमी'[२] ऐसे मानव-व्यक्तित्व की अकिंचनता का चित्र खींचती है ।

नयी कविता का कवि ऐसे मानव को प्रतिष्ठा करना चाहता है, जो पूर्ण हो, ऐसा मानव जो न देवता हो और न हो

---

१ ... पिछले युगों में सबसे अधिक विघटन मानव व्यक्तित्व का हुआ है और विघटन व्यक्ति को वैज्ञानिक भौतिकवाद अथवा यान्त्रिक समूहवाद ने पग-पग पर कुंठित और अपमानित किया है । अतः आज के कवि की पहली मांग अपने अहं की स्वीकृति है... ।

—'साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य' — डा० रघुवंश
'नयी कविता की सम-सामयिक भाव-भूमि', पृ०१५७ ।

२ ... मैं अपने को, नन्हा सा, दबा हुआ
विशालकाय बड़े बड़े पोस्टरों
के अनुपात में छोटा देख रहा हूं...
बेमाना, बेपहचाना--
इस प्रतीक्षा में कि शायद
कभी कोई भूली हुई दृष्टि
मुझ पर टिक जाये ...
लेकिन मैं देखता हूं
कि आज के जमाने में
आदमी से ज्यादा लोग
पोस्टरों को पहचानते हैं
वे आदमी से बड़े सत्य हैं ... ।

'नयी कविता, अंक२, सं०डा०जगदीश गुप्त, डा०रामस्वरूप चतुर्वेदी
'पोस्टर और आदमी' --सर्वेश्वरदयाल, पृ०४०-४१

राक्षस , न ही साधारण मानव । बल्कि वह ऐसा व्यक्तित्व हो, जो ठोस हो,पूर्ण हो, अपूर्णता,विकृति, कृत्रिमता,विकलांगता से परे एक पूर्ण मानव हो,क्योंकि आज नयी कविता का स्वर मानवीय आस्था का स्वर है ।मानवता के आगे धर्म,समाज ,राजनीति की अवहेलना का स्वर मानव को सत्य जीवन, और जगत से परिचित कराना है , तथा युग की मांग में मानव की प्रतिष्ठा करना है ।

आज की कविता में मानव- जीवन के उस पक्ष का उद्घाटन हो रहा है, जहां पर मानवीय मूल्य टूटे हैं, सम्वेदनायें भी विशृंखलित हो गयी हैं, अनुभूतियां ऊहा-पोहों के आरोह-अवरोह में सन्तुलन खोती जा रही हैं । ऐसे उथल-पुथल के वातावरण में व्यक्ति क्रान्तिकारी भी हो सकता है और क्षुब्ध,एकाकी,अवसाद से घिरा गिरा दयनीय भी । इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि क्रान्ति करने वाले का ही महत्व है,वही वन्दनीय है, बल्कि जो तिल-तिल करके समाज की अव्यवस्था के आगे झुकता है,उसका भी महत्व कम नहीं । क्योंकि उसका इस तरह टूटना-बिखरना तथा विघटित होना भी यथार्थ है । इसलिए आज मानवता के पक्षपाती दोनों ही स्थितियों से गुजर रहे हैं । केवल शिव तत्वों की अनुभूति से उनकी सम्वेदना संचरित नहीं है । उनकी दृष्टि तो यथार्थ से उद्भूत प्रत्येक शिव,अप्रिय भाव-बोध में अभिव्यक्ति पाती है[१] ।

---

१ `समाज की चोट से आहत व्यक्ति आज समाज-विद्रोही भी हो सकता है और आत्महत्या भी कर सकता है । विद्रोही होकर मरने वाले के प्रति महामानव होने की परम्परा साहित्य,संस्कृति और इतिहास में बराबर मिलती रही है, किन्तु वह जो व आज की व्यवस्था के सामने टूटता है,उसका महत्व क्या कम है ? क्या उसका टूटना या विशृंखलित होना सत्य नहीं है .. वस्तुत: आज का जीवन इतने संघर्षों से गुजर रहा है कि उसमें मरसिया और कसीदा विलाप और विहाग दोनों साथ-साथ करने पड़ते हैं । ....`

--`नयी कविता के प्रतिमान` -- लक्ष्मीकान्त वर्मा

`मूल्यान्वेषण`, पृ० २०८ ।

नये मानव की कल्पना

इस तरह से नयी कविता में जो समस्या बहुत ही गहन रूप में उठाई गई है, वह है मानवता से सम्बन्धित नये मानव की कल्पना । क्या पहले की कविता में मानव-प्रतिष्ठा की समस्या कभी भी सामने नहीं आई ? ऐसा स्पष्टतया कह सकना असम्भव है, क्योंकि आज की कविता जिस संक्रमणकालीन परिस्थितियों से होकर गुजर रही है वह स्थिति पहले की कविता में शायद कभी घटित नहीं हुई । पहले भी मानव टूटा होगा, बिखरा होगा परन्तु कवियों ने ऐसे पक्षों का उद्घाटन अपनी चेतना, सम्वेदना को वर्गीकृत कर शिव-अशिव, प्रिय-अप्रिय की सीमा में बांधकर किया, जिससे मानव की कुछ समस्यायें यों ही बनी रहीं । सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इससे पूर्व ऐसी जटिल परिस्थितियां उत्पन्न ही नहीं हुई । दो-दो भयंकर विश्व-युद्धों के प्रभाव से मानव सामाजिक, आर्थिक, नैतिक वैषम्य का शिकार हुआ है । नयी कविता में नये मानवीय मूल्य की समस्या को खुलकर अभिव्यक्ति के धरातल पर उतारा गया है । यद्यपि ये मूल्य अभी पूरी तरह स्पष्ट एवं सुलझे हुए नहीं हैं, लेकिन नयी कविता संघर्षरत मनुष्य की कल्पना का ठोस समाधान है, इसलिए कुछ लोग यदि नयी कविता में उठाये गये नये मानव की कल्पना या उसके प्रति व्यक्त की गई सम्वेदनात्मक अनुभूतियों को मात्र व्यक्ति की अहं तुष्टि का द्योतक मानते हैं तो यह बात न्यायसंगत नहीं है । हां यह बात और है कि कहीं-कहीं मानवता के नाम पर कवि व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की बात करता-करता अपने में ही निमग्न हो जाता है । वहां उसका सत्य व्यक्ति-सत्य (कवि के व्यक्तिगत सन्दर्भ में) हो सिद्ध हो पाता है न कि समस्त मानवता का सत्य बनकर उभरता है । लेकिन ऐसे मानवीय मूल्यों को व्यक्तिगत स्वार्थों के रूप में देखने वाले कवि

कम ही द्रष्टिगोचर होते हैं[१]। फिर भी नयी कविता में मानव-मूल्यों की बात बड़े विस्तृत रूप में उठायी गयी है। यह कदापि अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि नयी कविता में मानव को जो प्रतिष्ठा, जो स्वतंत्रता (भावों, संवेदनाओं तथा निजी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए स्वतन्त्रता अधिकार) तथा सम्मान मिला है, वह बड़े ही महत्व की बात है। या यों कहें कि नयी कविता की एक सशक्त उपलब्धि मानव-प्रतिष्ठा है तो कोई अनुचित बात नहीं होगी।

मानव-व्यक्तित्व एक जटिल और विस्तृत सागर है। उसकी समस्याओं, उसकी सीमाओं, उसकी संवेदनाओं एवं उसकी अनुभूतियों का एक ही गोते में साक्षात्कार कर पाना सर्वथा असंभव है। कलाकार अपने व्यक्तित्व को, अपनी संवेदना को और अपनी अनुभूति को व्यक्ति के साथ सम्पृक्त करके उसके उन कोनों का उद्घाटन कर सकता है जो अभी तक अछूते रहे हैं या अनभिव्यक्त रहे हैं। केवल अपनी रचना में 'मानवता' शब्द की दुहाई देकर कवि अपने दायित्व को पूरा नहीं कर सकता। मानवता के लिए नये कवि को जो संघर्ष करना है, वह इतना सरल एवं हल्का नहीं है। उसके लिए कवि को भिन्न-भिन्न मानसिक, आन्तरिक भाव-भूमियों पर उतरना होगा, उसके तिक्त स्वाद को चखना होगा।

---

१ .... नयी कविता मानवीय मूल्यों से बंधी हुई है पर ये मूल्य भी अभी अस्पष्ट एवं उलझे हुए हैं। इन मानवीय मूल्यों को व्यापक सत्य के रूप में देखने के अभ्यासी कवि इन्हें व्यापक सत्य नहीं बना सके हैं, जिन कवियों में व्यापक सत्य को व्यापक बनाने की प्रेरणा निरन्तर क्रियाशील रही है, वे अपने माध्यमों के द्वारा ही सरल पर कुछ अर्थव्यंजक रचनायें दे सके हैं ... ।

—'आधुनिक कवितायें' विवेचन संकलन, सं० रणधीर सिन्हा, पद्मनारायण, पृ० ११ ।

तिरस्कार, विरोध का सामना करना होगा, तब जाकर कहीं वह नये मानव की प्रतिष्ठा के संघर्ष में विजयी होगा ।' विचार-भूमि के इस स्तर पर पहुंचकर भारतीयता और अभारतीयता की सीमा-रेखा बहुत पीछे छूट जाती है । मनुष्य के विवेकपूर्ण चिन्तन, अभिमान और मन्तव्य को एक दिशा स्पष्ट दिखायी देने लगती है । नयी कविता इसी दिशा में संघर्षशील नये मानव की कल्पना से ज्योतित एक प्रकाश स्तम्भ है, जो उस प्रकाश स्तम्भ पर पहुंचे उसके पीछे, धुंधले छायावृत्त को ही देखते हैं उन्हें यदि नयी कविता केवल विकृत अन्धकार जैसी दिखायी देती है, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं । केवल दृष्टिकोण का (थोड़ा सा) अन्तर है, यही स्वीकार करना होगा ...'[1]

जब नया कवि मानव के अत्यन्त सूक्ष्म एवं धुंधले अन्तर्मनों को प्रकाशित कर सकेगा, उसकी भावनाओं, संवेदनाओं एवं भावबोधों को कविता द्वारा अभिव्यक्त कर सकेगा तभी मानव की प्रतिष्ठा हो सकती है और तभी मानव की सही, विस्तृत तथा स्पष्ट परिभाषा हो सकती है[2] ।

आज मनुष्य जिस परिस्थिति में जा रहा है, वहां मनुष्य के मनुष्य से सम्बन्ध दिन-प्रति-दिन बदतर होते जा रहे हैं । मनुष्य

---

१ 'नयी कविता : स्वरूप और समस्यायें'--डा० जगदीश गुप्त, 'नयी कविता : नये मनुष्य की प्रतिष्ठा', पृ०३५ ।

२ '... आदमी का व्यक्तित्व और उसकी मनुष्यता एक जटिल और जीवंत सम्पूर्णता है । वह इतनी सरल वस्तु नहीं कि मात्र मानवता शब्द प्रतीक की सैकड़ों पुनरावृत्तियों से ही व्यंजित हो सके । जैसा कि कुछ मानववादी कवियों को भ्रम रहा है । नव मनुष्यता के अनन्त सूक्ष्म आयामों और छोटे छोटे बारीक पक्षों को उद्घाटित कर नव काव्य ने उसे अधिक समृद्ध कर बनाने की चेष्टा की, जिस जिससे आदमी की सही और स्पष्ट परिभाषा हो सके ... ।' --'नयी कविता : सीमायें और सम्भावनायें'

--गिरिजाकुमार माथुर

'अभिव्यक्ति का नवोन्मेष', पृ०३ ।

एक-दूसरे को डसने वाला हो गया है । सर्वत्र वैषम्य का दंशन है[1] । ऐसे विकृत मनुष्य को उबारने का काम, उसको पथ दिखलाने का काम इतना सहज नहीं है, उसके लिए मानवता की विस्तृत व्याख्या की आवश्यकता है । उसकी भावना में उसके सम्वेदना में अपनी चेतना को समाहित करना होगा । पिशाच संस्कृति के विषाक्त वातावरण में मानव की प्रतिष्ठा करना आसान नहीं ।

आज नयी कविता में जिस मानव की कल्पना की जा रही है, वह मध्ययुगीन धीरोदात्त,सर्वगुण सम्पन्न मर्यादा का प्रतीक मानव अथवा छायावादी रहस्यात्मक भावों में निमग्न सर्वथा काल्पनिक मानव नहीं है और न कोरी नारेबाजी के जोर से मानव को मुक्त करने की कोशिश की है और न ही प्रयोगवादियों की भांति अपने सुख में सुख, अपने दुःख में दुःख देखने वाले व्यक्तिबद्ध कवियों की इसमें सम्वेदना है । बल्कि आज तो उस मानव की प्रतिष्ठा का प्रश्न उठाया गया है जो समस्त विरोधी तथा असंगत परिस्थितियों में टूटता,बिखरता होता हुआ मुक्ति के लिए प्रयत्नशील है, आशावादी है । परन्तु तन और मन से व्यथित इतना टूट गया है कि वह चारों ओर घना अन्धकार ही देखता है और इसमें डूबता-सा अपनी चेतना अपनी सम्वेदना में एक प्रकार की जड़ता अनुभव करता है । आज की व्यवस्था में मानवता किस तरह पिस रही है, यह बात अब बार-बार कहने की नहीं है ।

१... कितना अच्छा है
सभी झूठ बोलते हैं...
सभी घृणा करते हैं
अपरिचय के माध्यम से जुड़े हैं...
न कोई रोता है
न कोई हंसता है
कितना अच्छा है
अब हर कोई हंसता है ...

--'संक्रान्ति' -- कैलाश वाजपेयी, 'पिशाच संस्कृति',पृ०४५ ।

रघुवीरसहाय की एक कविता `एक अधेड़ भारतीय आत्मा' आज की सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था का सच्चा एवं स्पष्ट चित्र खींचती है । स्वतन्त्रता के पूर्व जिस प्रकार का जोश और जिस प्रकार की व्यवस्था स्वतन्त्रता की आशा था, वे आशाओं-आकांक्षाएँ के भयावह अव्यवस्था की आंधी में छिन्न-भिन्न होकर बिखर गये । स्वतन्त्रता की मांग अधिकारों की मांग की आड़ में भारतीय भारतीय को गुलाम बना रहा है । एक नेता के इशारों पर सारे लोग उसकी अन्धपरता पर झुके हुए हैं । जाति धर्मभेद से सारा समाज, सारी व्यवस्था ग्रस्त है । अयोग्य,कमजोर व्यक्ति शासन की बागडोर सम्हाले एक ही लाठी से सबको हांक रहे हैं । ऐसी व्यवस्था में मनुष्य कितना छोटा, कितना नगण्य हो गया है, सिर्फ दूसरों के द्वारा जीने के लिए मजबूर है, बेबस है[१] । मानव इकाई की नगण्यता के विरोध में आवाज उठाई गई है,उसकी सार्थकता की मांग में ही उसे प्रतिष्ठित करने का उपक्रम देखा जा सकता है ।

----

१ ... बांध में दरार
पाखण्ड वक्तव्य में
घट तौल न्याय में
मिलावट दवाई में
आचरण में खोट 'हर' पकड़ते मैंने विरोध किया ....
एक हजार लोग ध्यानमग्न सुनते हुए
एक अदद रिरियाता है विचार
को रहो आने जिस वक्त सब सम्मत हो जायं
जिसके आगे राजकाज करना है...
बंध रहे बंध रहे उससे क्या
भारत का । चाहे न हर भारतीय का
गुलाम रहे
बीस बरस बीतं गये
लालसा मनुष्य की तिल तिल कर मिट गई ...
`आत्महत्या के विरुद्ध' -- रघुवीरसहाय
`एक अधेड़ भारतीय आत्मा', पृ०८३-८४ ।

नये मानव की प्रतिष्ठा के विषय में लोगों की कुछ ग़लत भ्रमपूर्ण धारणायें हैं । आज के मानव की व्याख्या गलत ढंग से हो रही है । परिस्थितियों की टकराहट से उत्पन्न संघर्ष की प्रक्रिया पर ध्यान नहीं देते हैं बल्कि संघर्ष से पराजित गलित दलित दीन-हीन ,कुंठित, निराशावादी त्रस्त व्यक्तित्व का ही चित्रण करते हैं । संघर्ष की प्रक्रिया में निरन्तर निमग्न बार-बार गिर-गिर कर उठने की महानता की तरफ से आँखें फेर लेते हैं या फिर बहुत हल्के रूप में उसका चित्रण करते हैं । इस तरह नयी कविता में जिस प्रकार के मानव की प्रतिष्ठा की समस्या उठायी जानी चाहिए वैसा नहीं हो पा रहा है[१] । अतः नयी कविता में लघु मानव की प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं, नये मनुष्य की प्रतिष्ठा का प्रश्न उठाया गया है । नया मनुष्य प्रत्येक दृष्टिकोण से सहज मानव होगा । उसकी सीमायें पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं में निर्धारित सीमा से आगे हैं । उसकी गति छायावाद, राष्ट्रवाद, प्रगतिवाद,प्रयोगवाद तथा नयी कविता में क्रमशः स्पष्ट और तीव्र होती गई है । और यही मानव प्रत्येक कवि कलाकार के अन्तर्मन में अपना व्यक्तित्व,अपना अस्तित्व जमाता जा रहा है । इसी कारण नयी कविता की

---

१ लघु मानव का अर्थ लघु में बृहद की सम्भावना कदापि नहीं है । लघु मानव की परिभाषा यदि इन्हीं की रचनाओं के आधार पर की जाय तो होगी .... एक गलित,व्यक्तित्वहीन,अनैतिक, क्षुद्र यथार्थवादी,चिड़चिड़ा कुंठित, निराशाग्रस्त, विकृत सेक्स का पुजारी, खोखली जंघों और मिथ्या रोब का मुखौटा लगाये रहने वाला मानव मूल्यहीन प्राणी ... हिन्दी कविता में आज जिस मानव का चित्रण हो रहा है वैसा जघन्य और जुगुप्सित वर्णन भारतीय साहित्य के किसी युग में कभी नहीं हुआ था । आज का मानव सभी प्रकार के नैतिक आस्थाओं से हीन है ।..

--`आधुनिक परिवेश और नवलेखन` -- शिवप्रसाद सिंह

`नयी कविता की विकासवर्ती पृष्ठभूमि`, पृ०२१८ ।

चेतना, अभिव्यंजना मानवीय यथार्थ से संचालित है । उसकी पृष्ठभूमि में मानवता की पुकार है । उसका रुदन है, उसके अस्तित्व की मांग है, उसके अधिकार के लिए सिफारिश है ।

इसीलिए डा० जगदीश गुप्त ने नये मनुष्य की प्रतिष्ठा को बहुत महत्वपूर्ण माना है । उनके लिए नये मनुष्य की प्रतिष्ठा की धारणा का आधार कोई अमूर्त मनुष्य नहीं है, बल्कि समस्त रचनाओं के माध्यम से अपनी जीवन्तता का प्रमाण देने वाला सार्थक युग-मानव है[1] । प्रश्न उठ सकता है कि उसका स्वरूप क्या है ? पुनरुत्थानवादी नये भारतीय मनुष्य का एक स्वरूप था अन्य युगों में भी रहा है । आखिर नयी कविता के नये मनुष्य की पहचान कैसे की जाय ? केवल बिखरता, टूटता या कुछ और ? नये मनुष्य की विचारधारा को मूर्त रूप देते-देते बहुत अधिक समय भी लग सकता है । लेकिन नये कवियों का प्रयत्न उसकी रूपरेखा निश्चित करने का है । पुनरुत्थानवादी नये मनुष्य को पहचान का प्रश्न उठ सकता है । केवल टूटते-बिखरते मनुष्य के मानसिक ऊहा-पोहों का चित्रण

---

१ ... नये मनुष्य की प्रतिष्ठा जिसे मैं मानता हूं कि नयी कविता का एक बहुत महत्वपूर्ण कार्य है, की धारणा का आधार मेरे आगे कोई अमूर्त मनुष्य नहीं रहा, वरन् समर्थ कवियों की रचनाओं के बीच से बोलने वाला वह मानव-व्यक्तित्व न प्राचीन है न मध्ययुगीन ... राष्ट्रवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता में उसकी गति उत्तरोत्तर स्पष्ट होती गई है और आज हम अपने व्यक्तित्व और कृतित्व के भीतर उस 'नये मनुष्य' की आत्मा का स्पन्दन सबसे अधिक तीव्रता से अनुभव कर सकते हैं, कर रहे हैं ... । 'आलोचना स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य' विशेषांक, भाग१, पूर्णांक ३४सं० शिवदान सिंह चौहान, प्रवृत्यात्मक विवेचन और मूल्यांकन--डा० जगदीश गुप्त पृ० ६७ ।

करके हम नये मनुष्य की रूप-रेखा नहीं स्पष्ट कर सकते न ही नये मानव की बार-बार दुहाई देकर नये मनुष्य का स्वरूप ही बता सकते हैं । नये कवियों ने अपने-अपने ढंग से लघु मानव, छोटा आदमी, सहज मानव आदि की कल्पना तो की है, लेकिन उसका कोई स्वरूप निश्चित नहीं कर सके हैं । डा० जगदीश गुप्त ने नये मानव की लम्बी रूप-रेखा बतायी है । वह इस प्रकार है -- 'नया मनुष्य रूढ़िग्रस्त चेतना से मुक्त, मानव मूल्यों के रूप में स्वातन्त्र्य के प्रति सजग, अपने भीतर अनारोपित सामाजिक दायित्व का स्वयं अनुभव करने वाला समाज को समस्त मानवता के हित में परिवर्तित करके नया रूप देने के लिए कृत-संकल्प, कुटिल स्वार्थ भावना से विरत, मानवमात्र के प्रति स्वाभाविक सह अनुभूति से युक्त संकीर्णताओं एवं कृत्रिम विभाजनों के प्रति क्षोभ का अनुभव करने वाला हर मनुष्य को अन्ततः समान मानने वाला मानव-व्यक्तित्व को उपेक्षित, निरर्थक और नगण्य सिद्ध करने वाली किसी भी दैविक शक्ति या राजनैतिक सत्ता के आगे अनवनत, मनुष्य की अन्तरंग सद्वृत्ति के प्रति आस्थावान्, प्रत्येक व्यक्ति के स्वाभिमान के प्रति सजग, दृढ़ एवं संगठित अन्तःकरण संयुक्त सक्रिय, किन्तु अपीड़क सत्य-निष्ठ तथा विवेक सम्पन्न होगा ।'[1] देखना यही है कि डा० जगदीश गुप्त की नये मनुष्य के विषय में की गयी कल्पना कवि-साकार होती है । हालांकि आज जिस समाज में मनुष्य रह रहा है, उसने उसे इस सीमा तक विभक्त और विघटित कर दिया है कि नैतिकता और आदर्श दोनों की ही पकड़ ढीली हो गई है और अब नैतिकता तथा आदर्श (युग की सापेक्षता में) ही झुठलाये हैं तो

---

1 'नयी कविता :: स्वरूप और समस्यायें' -- डा० जगदीश गुप्त
'नयी कविता : नये मनुष्य की प्रतिष्ठा', पृ०३६ ।

नये मनुष्य को फिर से व्यक्तित्व देने में कवियों को बहुत ज्यादा सम्वेदनशील तर्क-विवेक द्वारा बौद्धिकता को प्रयोग में लानेवाला तथा आत्मनिष्ठ बनना होगा, साथ ही साथ ठोस व्यक्तित्व वाला , युग का नेतृत्व करने वाला भी । तभी नये मनुष्य के प्रतिष्ठा का प्रश्न हल हो सकता है ।

इस प्रकार नयी कविता में मानवता से सम्बन्धित व्यक्ति में अहं का विस्तार भी जुड़ा हुआ है । हालांकि कवि का प्रयत्न व स्वयं में अहं का जागरण कर मानवता में अहं की जागृति लाना है, उसकी चेतना में आत्म-चेतना, स्वाभिमान का स्वर जगाना है । अपनी महत्ता से परिचित कराना है । लेकिन जब अहं व्यक्तिगत होना में संकर रह जाता है तो मानवता के प्रश्न का समाधान नहीं होता । रचनाकार अपने व्यक्तिगत स्वार्थोंको हो व्यक्त करता है । उसके स्थान पर जब रचनाकार का अहं एवं संघर्ष मानवता को चेतना में जागृति उपजाने के लिए सफल हो जाता है तो अहं का विस्तार भी सार्थक हो जाता है ।

इस प्रकार डा० जगदीश गुप्त ने `दि फिलासफी आव ह्यूमनिज्म` के लेखक `कार्लिसलेमाण्ट`[१] के मानवतावाद के विषय में किए गए दस लक्षणों की चर्चा की है । ये दसों लक्षण आज की कविता में घटित हो जायें तो नयीकविता में उठायी गयी `मानवतावाद`की समस्या का समाधान मिल भी जायगा-- ऐसा निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता है । आगे के अध्यायों में इन लक्षणों की भारतीय परिवेश में विशद् व्याख्या की जायगी ।

---

१ `दि फिलासफी आव ह्यूमनिज्म`-- कार्लिसलेमाण्ट ,पृ०१०-११

संकलित - नयी कविता : स्वरूप और समस्यायें--डा०जगदीश गुप्त ,पृ०२०-२

नयी कविता में मानव-प्रतिष्ठा का प्रश्न न इतना सरल और न ही इतना संकीर्ण है, इसके लिए व्यापक चेतना-दृष्टि में उचित सम्वेदनात्मक, यथार्थपरक अभिव्यंजनात्मक तत्वों को प्रकट कर सकने की क्षमता की आवश्यकता है । तभी मानवतावाद से सम्बन्धित प्रश्न का समाधान हो सकेगा । इसकी पूर्ण अभिव्यक्ति हो सकेगी । वस्तु कीर्ति चौधरी के `झुके हुए आसमान के नीचे`` की कविता `दुखी नहीं हूं` को देखें तो नयी कविता में मानवतावादी विचारधारा की कुछ सीमा तक पुष्टि हो जायगी[१] ।

-०-

---

१ ... यदि वसुधा को मैंने
माना नहीं एक परिवार
यदि कन्धों पर ढो न सका
हर पीड़ित का प्यार
दुखी नहीं हूं -- सोच
रह गया मैं पिछड़ा स्वार्थों में लिपटा...
`झुके हुए आसमान के नीचे`-- कीर्ति चौधरी
`दुखी नहीं हूं`, पृ०२१ ।

(च) क्षणानुभूतियों की पकड़

नयी कविता की चेतना के यथार्थवादी होने के कारण आज कविता का बहुत ही परिवर्तित रूप दिखायी देता है। यही कारण है कि शाश्वत कहे जाने वाले मूल्यों में भारी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। कवि की दृष्टि युग-युग से कहे जाने वाले शाश्वत मूल्यों को न मानकर सम-सामयिक बोध की यथार्थता की ओर है। आज युग इस तीव्रता के साथ बदल रहा है कि उसमें किसी एक प्रवृत्ति को पकड़ कर नहीं रखा जा सकता। कवि एक जीवित, जागृत, राग-द्वेष से युक्त प्राणी है, वह अपने चारों ओर के परिवेश से किसी-न-किसी रूप में प्रभावित होता है। यही प्रभाव उसकी चेतना को प्रेरित करते हैं। इसलिए आज की कविता में यथार्थ की सच्ची अभिव्यक्ति होती है। यथार्थ के धरातल पर कवि संघर्ष की स्थिति में जीता है। ऐसे परिवर्तनशील युग में कवि किन्हीं मूल्यों की शाश्वतता स्वीकार नहीं करता है। ऐसे परिवर्तनशील युग में कवि की संवेदना उसकी अनुभूति और उसके चिन्तन पर पुराने मूल्यों की शाश्वतता खरी नहीं उतर सकती। मानव-प्रतिष्ठा के प्रश्न ने मूल्यों की शाश्वतता को निरर्थक सिद्ध कर दिया है। आज व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है वह नये जीवन-मूल्यों के प्रति आस्थावादी है, पुरातन जर्जरित खोखले जीवन-मूल्यों के प्रति अनास्थावादी। इसलिए शाश्वत कहे जाने वाले मूल्य आज के युग में सार्थक नहीं कहे जा सकते। इसके अतिरिक्त आज की व्यवस्था यांत्रिक व्यवस्था है, निरन्तर विकासवादी प्रवृत्तियों ने जीवन की धारा ही बदल दी है। सर्वत्र व्यक्ति और समाज का संघर्ष दृष्टिगोचर होता है। समाज की और जीवन की सीमायें सिकुड़ रही हैं। व्यक्ति अपनी सामाजिक व्यवस्था से पीड़ित है। उसकी भावनाओं में ऊब भरी है। वह अपने को पराजित, थका, निराश अनुभव करता है। इन्हीं विभिन्न मनःस्थितियों

जो कवि ने नयी सम्वेदना दी, नयी अभिव्यक्ति दी और साथ ही साथ पुराने मूल्यों की आज के सन्दर्भ में निरर्थकता को भी पहचाना । नयी कविता की यही पहचान शाश्वत के सन्दर्भ में चेतना की नयी उपलब्धि कही जा सकती है[१] ।

नया कवि स्वतन्त्र चेतना रखता है, इसलिए उसकी चेतना देश और काल के बन्धन को नहीं स्वीकार करता । आज की कविता में कवि-जीवन के एक-एक क्षण के प्रति अधिक आस्थावान्, अधिक सम्वेदनशील तथा अधिक सजग हो गया है । यद्यपि क्षण के प्रति अधिक मोह की प्रवृत्ति पश्चिम की कविता से ही ग्रहण की गयी है । पश्चिम में जीवन के प्रति जो लगाव और व्याकुलता की भावना मिलता है, उसके पीछे दो भयंकर युद्धों की विभीषिका के सन्दर्भ जुड़े हुए हैं । वहां के व्यक्तियों में जिस प्रकार का त्रास, पराजय, पीड़ा, विघटन दिखायी देता है, उस तरह का त्रास, पीड़ा विघटन यहां नहीं देखा जा सकता । प्रथम विश्व-युद्ध से जिस

---

१ ...`प्रयोगिक ढंग से बदलते जीवन के हर परिप्रेक्ष्य की उपेक्षा कर किन्हीं मूल्यों की शाश्वतता स्वीकार करने की बात सम-सामयिक कविता के लिए एक प्रश्नचिन्ह बन गयी थी । जिसे तोड़ने के आंशिक प्रयास पहले भी हुए, पर कुछ दृष्टि से खुरदुरे यथार्थ की भाव-भूमि के धरातल को न पहचान सकने के कारण वे सफल नहीं हुए । लेकिन वंशस्थ पीढ़ी की सम्वेदना के नये स्वर दे रहे कवियों ने कुण्ठा, पराजय, निरर्थकता, आर्थिक भ्रान्ति और जीवन के नकारात्मक पक्ष के बीच से भी सामान्य से विशेष की गत्यात्मक भूमिका में रूढ़ियों को नकारते हुए जिस तरह कुछ स्वस्थ शाश्वत मूल्यों को उन्होंने पहचाना वह अपने-आप में एक उपलब्धि कही जा सकती है ।'
`नयी कविता' अंक-८, सं०-डा०जगदीश गुप्त, विजय देव नारायण साही,
`कविता के नये प्रतिमान' : प्रबोध सिन्हा, पृ० २८९-२९३ ।

प्रकार फ्रांस,जर्मनी,इटली आदि देश तहस-नहस हो गये, मानवता पर जो जुल्म अत्याचार हुए, सभ्यता-संस्कृति को जिस तरह नष्ट-भ्रष्ट किया गया, उससे वहां का व्यक्ति पूरी तरह तन और मन दोनों से टूट गया । वहां के एक व्यक्ति जिसने पूरे परिवार को अपनी आंखों युद्ध की भेंट होते देखा है, जो असहाय,अकेला, दीनहीन स्वयं अपने जीवन के पराजय के संघर्ष से लड़ता भिड़ता जीवनयापन करता है ,अपने पैरों खड़ा होता है । उसकी पीड़ा,उसका भाव कितना स्वाभाविक होगा और प्रच्छन्न रूप से ग्रहण किया गया कितना हल्का और अलेप होगा, यह साफ -साफ दिखायी देता है । युद्ध की विभीषिका से पश्चिम के व्यक्तियों में जीवन के प्रति एक-एक क्षण के प्रति गहरा मोह मिलता है । दो -दो युद्धों ने जीवन के प्रति अनिश्चयता की भावना पैदा कर दी है, जिससे व्यक्ति अपने जीवन को पूरी तरह अपनी इच्छानुसार जी लेना चाहता है । वह नहीं जानता कि आज के बाद कल उसका होगा अथवा नहीं ।

प्रकारान्तर से नयी कविता में यह प्रभाव पश्चिम से ही आया है । कवि अपने जीवन के एक-एक क्षण को जी लेना चाहता है । उसकी चेतना अपने आस-पास के परिवेश के छोटी-से-छोटी महत्वहीन लगने वाली वस्तु से सम्बोधित होती है । वह आज के जीवन-चिन्तन,द्वन्द्व सभी में जीता है[१] । ~~हां यह अवश्य है कि कवि कोरा~~

---

१ ... हां यह अवश्य है कि कवि कोरा काल्पनिक या मानवोपरि मानव नहीं है, वह प्रमुखत: आज का जीवित,जागृत राग-विराग युक्त प्राणी है । वह आज के जीवन-चिन्तन,द्वन्द्व सभी में जीता है, सभी को भोगता है,सभी से प्रतिकृत होता है; कुछ से शरीर द्वारा कुछ से सम्बोधित व्यक्तित्व द्वारा । यही है आज के जीवन-यथार्थ की अभिव्यक्ति ही आज के कवि की प्रधान और सच्ची अभिव्यक्ति है... ।

`तीसरा सप्तक` सं० अज्ञेय, `आत्मनिवेदन` : प्रयागनारायण त्रिपाठी,पृ०५-६

इन सभी स्थितियों में जीता हुआ कभी पराजित होता है, टूटता है,बिखरता है लेकिन इस टूटने-बिखरने से वह पराजय नहीं स्वीकार करता,बल्कि टूट-टूट कर बिखर-बिखर कर फिर-फिर जुड़ता-संवरता है । इसी जुड़ने-संवरने की भावना से वह जीवन के एक-एक साधारण क्षणों के प्रति भी अनुरक्ति दिखाता है , क्षण के प्रभाव को अपने में झेलता है । जीवन में संघर्ष रत रहने की प्रक्रिया में कवि जाने-अनजाने न मालूम कितने सत्य-असत्य से प्रभावित होता रहता है । यही सत्य-असत्य जब उसकी संवेदना,उसकी चेतना की पकड़ में आ जाते हैं तो वही सत्य उसका अनुभूत सत्य हो जाता है ।

कवि के लिए अनुभव से अनुभूति गहरी और महत्वपूर्ण है,क्योंकि अनुभव का सम्बन्ध बुद्धि-विवेक से है, परन्तु अनुभूतिपरक संवेदना का सम्बन्ध हृदयपक्ष से है, अत: कभी-कभी कवि के मन में ऐसे सत्य उद्घाटित होते हैं,जिनको सामान्य बौद्धिक वर्ग का पाठक तो बिल्कुल भी समझ नहीं सकता, लेकिन ऐसी अनुभूतियों की उपेक्षा नहीं की जा सकती,क्योंकि जिस सत्य को वह व्यक्त करता है, वह उसका अनुभूत सत्य होता है ।कवि की कल्पना,संवेदना देश कालातीत हो सकती है, वह वर्तमान में भी जीता है, भविष्य में भी और अतीत में भी[१] । न मालूम किस क्षण उसने अपनी अन्तरात्मा में उस क्षण

---

१ `... कवि की संवेदनशीलता देशकालातीत हो सकती है । वह `परिभू` और `स्वयंभू` हो सकता है । वह बीते कल के यथार्थ से भी सम्पृक्त हो सकता है और आने वाले कल की सम्भावनाओं से भी । ... वह अभिव्यक्ति व्यक्तिगत होकर भी समष्टि से संश्लिष्ट हो सकती है और समष्टिगत होकर व्यष्टि की अनुभूत हो सकती है ... ।`

`तीसरा सप्तक`-- सं० अज्ञेय

`आत्मनिवेदन` : प्रयागनारायण त्रिपाठी,पृ० ५-६

के सत्य को अनुभूत किया हो । यह सत्य व्यक्तिगत भी हो सकता है अथवा उसका समाहार समष्टिगत चेतना में भी हो सकता है । इसलिए व्यक्ति की क्षणानुभूति सत्यता की अवहेलना नहीं की जा सकती । आकाश में टिम-टिमाते हजारों तारे उतनी चमक, उतनी चौंध नहीं पैदा कर सकते, जितनी कि एक बार काले बादलों में क्षण मात्र के लिए चौंक दिखाकर लुप्त होती हुई तीक्ष्ण विद्युत रेखा । हो सकता है, किसी एक क्षण कवि ने ऐसा अनुभव किया हो जो कि उसके लिए महत्वपूर्ण हो, उसका अपना अनुभूत सत्य हो । हां, यश-मान के लोलुप कवि ले अवश्य ऐसे बेतुके क्षणों का रसास्वादन कराने का मिथ्या प्रयास करते हैं,जिनका न तो कवि के लिए कुछ महत्व होता है और न पाठक ही उससे प्रभावित होता है । नितान्त छिछले धरातल की अनुभूति कितनी सम्प्रेष्य हो सकती है ? इसीलिए पाठक ने कविता की सार्थकता ,महत्ता और उसकी सत्यानुभूति की अवहेलना करने लगते हैं । क्योंकि यश-मान के लोलुप कवि स्वयं तो कविता के प्रति अपना पूरा उत्तरदायित्व निभाते नहीं,साथ -ही साथ पाठकों को भी दिग्भ्रमित करते हैं , इससे नयी कविता के प्रति गलत धारणा तो बनती ही है साथ-साथ महत्वपूर्ण सम्प्रेषणात्मक क्षणानुभूतियों के सत्य की भी अवहेलना होती है । कुमार विमल ने `नयी कविता : उपलब्धियां और अभाव` शीर्षक लेख में क्षणानुभूतियों की चर्चा करते हुए यह बात स्वीकार की है कि नयी कविता का ढांचा क्षणानुभूतियों की नींव पर अपने पैर जमा रहा है ।`आज कवि अपने व्यक्तिगत एक-एक क्षण को महत्वपूर्ण मानता है, क्योंकि उसकी चेतना का प्रवाह जीवन के प्रत्येक क्षण में उसी तरह अनुस्यूत होकर आगे बढ़ता है, जिस तरह सदा नीरा तटनी तट के एक-एक सिकता कण को चूमती हुई आगे बढ़ती है[1]।`

---

१ `नयी कविता : नयी आलोचना और कला` - कुमार विमल,पृ०७ ।

क्षणानुभूतियों का महत्व

जीवन की गति निर्बाध रूप में जब तक चलती रहती है, उस बीच मनुष्य के ऊपर जाने कितनी बातों का प्रभाव हल्के अस्पष्टरूप में पड़ता है और न जाने कितनी बातों का प्रभाव गहन-स्पष्ट और अमिट छाप छोड़ जाता है । लेकिन नयी कविता में क्षणानुभूतियों के प्रति उत्सुकता और जागरूकता के प्रश्न ने नये चेतन आयामों को जन्म दिया है । नये कवियों में जीवन को नये ढंग से जीने का स्पष्ट प्रयास लक्षित होता है । ऐसा जान पड़ता है कि नये कवियों की चेतना जीवन की क्षणभंगुरता को नये ढंग से स्वीकार करती है । यही कारण है कि क्षण के भी विभाजित मात्र उतने अंश की अनुभूति के लिए कवि का मन उत्कंठित है, जितने में जीवन से भी अनाहत धार अचानक मौत की काली गुहा में कूद जाती है[1]।

नये कवियों की चेतना क्षणिकाओं की अभिव्यक्ति में, नये भाव-बोधों की दिशा में एक सार्थक और सर्वथा व्यक्तिगत प्रयास है । हां यह अवश्य है कि क्षणिकाओं की सुलभता से पाठक, आलोचक

---

१ ... चाहता हूं पा जाऊं
उस क्षण को
नहीं
क्षण के भी विभाजित
मात्र उतने अंश की अनुभूति
जितने में अनाहत धार जीवन की
अचानक मौत की काली गुहा में कूद जाती है .. ।'

--'शब्ददंश' -- डा० जगदीश गुप्त, 'आत्मकथा : एक अनुभूति', पृ० १६।

तादात्म्य स्थापित न कर सकने की स्थिति में कवि के कोमल भावों की सार्थकता की अवहेलना की जाय । लेकिन नवीन अनुभूत -भाव-बोध की सत्यता कुठलाई नहीं जा सकती है,क्योंकि वह वर्तमान के एक क्षण की गहनतम अनुभूति की अभिव्यक्ति है । लक्ष्मीकान्त वर्मा के शब्दों में 'नयी कविता के लघु परिवेश में उस छोटे से छोटे क्षण के प्रति भी आस्था है,जिसे अब तक महत्वहीन समझकर मानव-इतिहास ने अवहेलना की दृष्टि से देखा था । जीवन के निर्बाध प्रवाह में इन महत्वपूर्ण क्षणों का औचित्यवाद के सम-सामयिक सौन्दर्य-बोध को अधिक व्यापकता और बहुलता प्रदान करता है'[१] । छोटी-छोटी कविताओं में ही क्षणानुभूतियों और विघटित व्यक्तित्वों के अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्ति दी जा रही है । पिछली काव्य-धाराओं में जो एकरूपता दिखायी देती है, उसके स्थान पर नई कविताएं जीवन के छोटे-से-छोटे क्षण के उद्घाटन का प्रयास है । कविकी अनुभूति में जो विवशता , जो असमर्थता होती है,उसका निराकृत बुद्धि-विवेक से नहीं हो सकता, इसलिए किसी विशेष वस्तु का प्रभाव हो सकता है, उसी समय विशेष प्रभावशाली स्थिति में अभिव्यक्त न हो सके । हो सकता है,कोई घटना घटने के कुछ वर्ष बाद उसका अभिव्यक्तिकरण सही और स सम्प्रेषणीय दिशा में हो, यही बात क्षणवाद के सम्बन्ध में भी लागू होती है । कभी-कभी किसी क्षण अपने अन्तर्मन में ऐसी तीव्र चमक का आभास पा लेता है कि वैसा प्रकाश वह प्रयत्न करने से नहीं पा सकता । इसीलिए क्षण के प्रति उसका मोह बढ़ता जाता है ।

चेतना का परिष्कार

जीवन की यह दृष्टि और उससे सम्बद्ध उसकी उपलब्धियां उन समस्त कुंठाओं का परिष्कार करती हैं,जो अन्यथा रूप में

---

१ 'नयी कविता के प्रतिमान' : लक्ष्मीकान्त वर्मा ,भूमिका पुरोवचन,पृ०४ ।

इसमें यथार्थ से वंचित करके जीवन को मात्र एक भटकाव में उलझाने में समर्थ रही है[11]। क्षणवाद की सशक्त अनुभूति से कवि की चेतना का परिष्कार हुआ है । उसकी चेतना के अन्तर्गत जीवन के स्थूलतम पक्षों का ही महत्व नहीं रहा । बल्कि वह जीवन के प्रत्येक क्षण के प्रति सचेष्ट, उत्सुक है , और क्षणों में अपने को घटित करता है । इस तरह उसकी चेतना, उसकी सम्वेदना क्रमशः विस्तृत और परिष्कृत होकर अभिव्यक्ति पाती है । इस सन्दर्भ में मुझे डा० जगदीश गुप्त की एक कविता ' एक क्षण को मात्र हों ' का बरबस स्मरण हो आता है । कवि युद्ध की सम्भावना को एक क्षण के लिए टालना चाहता है, क्योंकि यदि एक क्षण के लिए ऐसा न भी घटित हो तो भी पिछले विध्वंसकारी विस्फोटों से ऐसी लहर उठे जिसमें हर स्याह-चिन्ह सफेद पड़ जाय, विज्ञान, धर्म, दर्शन, नीति के हर ग्रन्थ की मान्यता थोथी साबित हो जाय, वर्णमाला का धरा से लोप ही मिट जाय और लो और आदमी-आदमी की आंखों में झांक कर देखे तो भी उसे पहचान न पावे । कविता का अन्त जिस जिज्ञासामय लो ... ? से होता है , यह अच्छी तरह से समझा जा सकता है । कवि की चेतना एक क्षण को मात्र सम्भावना के बाद जिस तरह पर्त-पर-पर्त खोलती जाती है, यह द्रष्टव्य है , उसकी चेतना का परिष्कार होता जाता है, उसी कल्पना में शाश्वत के दर्शन होते हैं । इससे अधिक ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि कवि एक क्षण के लिए सारी सम्भावनाओं को घटित होने तक अपनी चेतना का विस्तार करता है, लेकिन उसकी चेतना में एक नया प्रश्न अंकुरित होने लगता है कि

...

यदि यह सब हो भी जाये, तो उसके बाद क्या होगा[1] ? इस तरह क्षणवाद की सशक्त अनुभूति में कवि की चेतना का विस्तार और परिष्कार होता जाता है । उसकी चेतना में कुंठा नहीं आने पाती, एक के बाद एक प्रश्न उसकी चेतना को झकझोरते रहते हैं । जहां जीवन की गतिशीलता, प्रवाह, प्रवहमानता सापेक्ष्य है, वहाँ क्षणांशों का भी विशिष्ट महत्व है । क्षणांशानुभूतियों की अभिव्यक्ति में नये कवियों की दृष्टि क्रान्तिकारी रही है । इसलिए वह क्षणांशों को अपना अभीष्ट मानता है । जीवन मात्र विडम्बना नहीं है, कि उसमें पड़े दु:खित होते रहें, जीवन तो वरदान है, उसके एक-एक क्षण का विशिष्ट महत्व है । समय की महत्ता प्रत्येक युग में सापेक्ष रही है । लेकिन नयी कविता ने क्षणांशों की संरचना द्वारा नये चेतना आयाम की स्थापना की है ।

<u>साधारण क्षणों से लगाव</u>

क्षण के महत्व को स्वीकार करने की भावना के पीछे कवि का छोटे-से-छोटे विषय महत्वहीन रोजमर्रा की वस्तुओं के पीछे विशिष्ट लगाव दिखायी देता है । इसके लिए इस नश्वर जगत में प्रत्येक

१ .. एक क्षण को मान लो
सम्भावना ही युद्ध की टल जाय
किन्तु अब तक हुए जो विस्फोट
केवल उन्हीं के अभिशाप से —
बचे कैसे कोई अक्षर देही
स्पर्श से जिसके ठिठुर
हर स्याह चिन्ह सफेद पड़ जाय

....

मान ही लो
एक क्षण को यह हो जाय
तो .... ?

—'शब्ददंश'— डा० जगदीश गुप्त, 'एक क्षण को मान लो', पृ०८-९

वस्तु का अपना अस्तित्व है, महत्व है । उसकी चेतना मामूली अथवा गैर मामूली लगने वाली प्रत्येक वस्तु से सम्वेदित होती है, प्रभावित होती है । डा० जगदीश गुप्त की कविता `तन जाकर चैन मिला` में कवि जूते जैसे नितान्त साधारण वस्तु के प्रति कितना सम्वेदनशील हो उठता है कि एक जूते पर जूते० दूसरे जूते के पड़े रहने की स्थिति में ` जैसे पंजे पर पंजा किसी ने रख दिया हो ` ऐसी पीड़ानुभूति भर उठता है कि उसका सारा ध्यान उसी जूते पर केन्द्रित हो जाता है और यह बेचैनी तथा पीड़ा उस पल मिटती है, जब वह उठकर उस जूते को अलग नहीं रख देता । ठीक से जूते को रखने के पल में कवि को जिस चैन की अनुभूति होती है, वह कवि के लिए कितनी महत्वपूर्ण है, यह स्पष्टतया समझा जा सकता है[१] ।

क्षण में शाश्वतता का आभास

कवि की क्षण के प्रति मोह जिस भावना का विस्तार करता है, उसमें शाश्वत का आभास निहित है । जहाँ एक ओर कवि अनुभूति की तीव्रता से अपने व्यक्तित्व को प्रकाशन के मोह को नहीं रोक पाता वहीं दूसरी ओर क्षण में शाश्वत का आभास भी परिलक्षित होता है ।

---

१ ... सामने
जूते पर जूता पड़ा है ।
लगा जैसे पंजे पर पंजा किसी ने रख दिया हो
दु:ख आया जी
उफ् ! उहुं ? ......
फिर सहसा
पंजे पर अपना पंजा धर कर देखा
दर्द हुआ रुक०और
उठा और जूते पर से तिरछे जूते को हटा दिया ... ।
--`शब्ददंश -- डा० जगदीश गुप्त, पृ०९८
`तन जाकर चैन मिला`

क्षण के प्रति कवि की कोमल कल्पना पलकों के सिहरन में मुखरित हो उठती है । पलकों के सिहरन में जिस तत्व का उसको आभास मिलता है, वह कवि की अनुभूति की तीव्रता में सम्पूर्ण व्यक्तित्व का प्रकाश है । पलकों की कंपकपाहट में एक सिहरन की अनुभूति भी लगता है कवि का इष्ट है[1] । कहीं कवि क्षण के विभाजित मात्र इतने अंश की कामना करता है, जिसमें अनाहत धार जीवन की अचानक मौत की काली गुहा में डूब जाती है । और कहीं पलकों की छोटी सी सिहरन में चिर साध्य पा लेने की इच्छा मचलती होती दीखती है । मचलती होती आकांक्षा में अनुभूति की सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति वैयक्तिकता के व भाव को सन्निहित किए हुए है , लेकिन समाज-विरोधी भावों का दुरारोपण भी नहीं किया जा सकता है । वैसे भी नयी कविता का कुछ भाग ऐसे उन मनोवैज्ञानिक सन्दर्भों से होकर गुजरा है, जहां की विसंगतियों के दुष्परिणाम घटित हुए थे । यही कारण है कि कवि की चेतना का प्रवाह जीवन के प्रत्येक क्षण में इसी प्रकार अनुस्यूत होकर विकसित होता है, जिस प्रकार सूर्य की किरणों का तीव्र आलोक संसार की प्रत्येक वस्तु को संस्पर्श करता हुआ गतिमान होता है । सम्वेदना का विस्तार असीम हो जाने से जीवन

---

१ .... तुम्हारी पलकों का कंपना
सपने की एक किरण मुझको दो ना,
है मेरा इष्ट तुम्हारे उस सपने का कण होना
और सब समय पराया है
बस उतना क्षण अपना ...
तुम्हारी पलकों का कंपना ... ।
'आंगन के पार द्वार' -- अज्ञेय
'तुम्हारी पलकों का कंपना', पृ० ३३ ।

प्रवाह के सूक्ष्मतम क्षणांशों,मनोदशाओं,परिस्थितियों,सम्बन्धों,घटनाओं को कवि की चेतना अनदेखा कर नकार नहीं सकी है । यद्यपि चेतना के विस्तार के साथ-साथ जहां बौद्धिकता प्रबल हो गयी है, वहां कविता की आत्मा को ठेस पहुंची है ।

आज जिस तरह के वातावरण में हम जी रहे हैं, जिस तरह की कुंठा ,अवसाद में पड़े हुए हैं,उनके समाधान नहीं सोचते हैं । सारी व्यवस्था जड़ हो गयी है, हमारी चेतना का विकास अवरुद्ध हो गया है । हम कितनी दयनीय स्थिति में आ गये हैं , इस बात की चिन्ता कवि की सम्वेदना में व्याप्त हो गयी है । वह ऐसे गतिहीन समाज के लिए सिर्फ एक ही प्रार्थना करता है कि ` हे । प्रभु वह क्षण कब आयेगा जिसमें यह पुतला एक झटके में पतंग की उछटती-पलटती शून्य में तैर जायगी, वह क्षण कब आयेगा, जब कोई भी दुर्घटना बेहतर होगी समाधान हीन अखण्ड बासीपन से ।`[1] यहां कवि की तीव्र अनुभूति में जहां उसके व्यक्तित्व का अखण्ड प्रकाशन मात्र भी है,वहीं क्षण में शाश्वत का भी आभास स्पष्टतया परिलक्षित होता है ।

---

१ ..... सारी प्रार्थनाओं में छिपी-है
छिपी है एक प्रार्थना
हे प्रभु ,
वह क्षण कब आयेगा
जब अंधेरा फेंकती हुई मोह
सिड़ का
गिरेगा चांद
....
कटी पतंग की पुतली
उछटती पलटती
शून्य में तैर जायेगी
....
जब कोई भी अनहोनी दुर्घटना
बेहतर होगी इस समाधान हीन,अखण्ड बासीपन से... ।
--`जो बंध नहीं सका`-- गिरिजाकुमार माथुर
`एक प्रार्थना : अष्टग्रह छूट परे`,पृ०२६ ।

आज नयी कविता में क्षण के महत्व के प्रति जो विचार व्यक्त किए जा रहे हैं, वह कवि के जीवन की समग्रता को प्राय: व्यक्त करते हैं। क्षण के अनुभव की तीव्रता में काल की सारी स्थितियां समाहित हो जाती हैं और उसे जो कुछ विशिष्ट तथा मूल्यवान् दिखता है, उसका घटन उसकी कविता में होता है। क्षण के प्रति आसक्ति का भाव केवल सामाजिक विघटन के सन्दर्भ में या विशेष समस्याओं के निदान के लिए ही नहीं है। प्रेम-विषयक कविताओं में क्षण के प्रति सूक्ष्म मोह का भाव है। अशोक वाजपेयी की कविता 'अन्त तक' में कवि उस क्षण तक जीने की प्रार्थना करता है, जब वह और उसकी प्रेमिका एक डूबते पोत के डेक पर अचानक मिलें, लेकिन वह मिलाप न पहचान पाने की स्थिति से उबरते ही उस क्षण की तीव्र अनुभूति में पोत के डूब जाने में समाप्त हो जाय। प्रिय और प्रियतमा के विछोह के बाद मिलने के क्षणों में केवल पहचानने के बाद परिचय पूछने के अनुपरान्त पोत के डूब जाने से भी कवि की आत्मा पूर्णतया उस निर्वाण सुख को प्राप्त कर लेती है, जो सामान्य स्थिति में दुर्लभ हो सकता है[१]।

---

१ ... उस क्षण तक जीने देना मुझको
जब मैं और वह प्रियम्वदा
एक डूबते पोत के डेक पर
अचानक मिलें।
दो पल तक न पहचान सकें एक दूसरे को,
फिर मैं पूछूं:
'कहिए, आपका जीवन कैसे बीता?'
'मेरा ...'
और पोत डूब जाय।
—'शहर अब भी सम्भावना है'—अशोक वाजपेयी
'अन्त तक', पृ०१२।

जहाँ नयी कविता ने अनेक दिशाओं में उपलब्धियाँ की हैं, वहाँ क्षण के महत्व ने उसको एक और विशिष्ट उपलब्धि को जन्म दिया है। आज जिस स्थिति में सारा परिवेश जी रहा है, उसमें जीवन के एक-एक पल का कितना महत्व है, यह नयी कविता से जाना जा सकता है। कवि कविता को मात्र भावात्मक प्रक्रिया नहीं मानता, कविता तो उसके चिन्तन, अनुभूति और विवेक के पथ से होती हुई अभिव्यक्ति के धरातल पर उतरती है। इसलिए क्षणमात्र में उसे जो अनुभव और अनुभूति हो सकती है, उसका अर्थ हल्के अर्थों में नहीं लगाना चाहिए। हाँ यह बात और है कि कभी कवि महज़ आनन्द का खिलवाड़ में कुछ अनावश्यक क्षणों का रसास्वादन कराने का प्रयत्न करने लगे। लेकिन नयी कविता में कुछ को छोड़कर जिस क्षण की सर्जनात्मकता में महत्ता स्वीकार की जा रही है, वह भूत-भविष्य से कटा हुआ, अर्थहीन नहीं है। उस क्षण के परिवेश में अनुभव की सारी तीव्रता, सारी संवेदना अर्थयुक्त अवस्था में घटित होती है, इसलिए क्षण की महत्ता आज के युग-बोध की माँग है। इसे किसी भी दृष्टि से महत्वहीन नहीं माना जा सकता।

इस सन्दर्भ में मुझे डा० रघुवंश जी का कथन सटीक लगता है --`कवि जब अनुभव को महत्व देता है, कविता को भावात्मक प्रतिक्रिया के रूप में स्वीकार नहीं करता, तब उसके अनुभव के क्षण के परिवेश में उसके जीवन का बहुत बड़ा विस्तार आ जाना स्वाभाविक है। आज की कविता में क्षणवाद की आलोचना करने वाले प्रायः क्षण के अर्थ को समझने में भूल करते हैं, इसी कारण क्षण के अनुभव का अर्थ प्रायः सीमित, संकुचित, भूत-भविष्य से कटा हुआ तथा अर्थहीन अनुभव लेते हैं[1]। आज संक्रमणकालीन

---

१ `साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य' -- डा० रघुवंश
`आधुनिकता का नया स्वर', पृ०३४४-४५ ।

स्थिति से युग गुजर रहा है, उसमें पूरा जीवन-दर्शन, जीवनदृष्टि और जीवनमूल्य पूर्णतया बदल गया है । अब कवि शाश्वत का अवलम्बन लेकर जीवन को नहीं देखता । वह तो हर परिस्थिति में यथासम्भव एक-एक क्षण जीता है, उसमें कभी विरक्त होता है, कभी अनुरक्त, अर्थात् वह अपने को जीवन के एक एक पल के प्रति उत्तरदायी समझता है, इसी पल के चिरन्तन आलोक में वह जीवन की अखण्डता के दर्शन करता है । इसीलिए क्षण की अनुभूति की गहनता को वह व्यक्त कर रहा है[1] ।

क्षण के महत्व के विषय में नयी कविता स्वयं ही अपनी स्थिति स्पष्ट करती है । क्षण की अनुभूति इसी पुंज से आवृत है, उसी से निकलती है, उसी में समाहित हो जाती है, किन्तु फिर भी उसमें अपनी कौंध है, अनुभूति की तीव्रता है, जिसके माध्यम से आलोक, रस और चिन्तन दृष्टि तक मिल सकती है[2] ।

-०-

---

१ ... कितना महान
हर एक क्षण,
कितना बड़ा
जीवन बना ... ।
'[illegible]' — कुंवर नारायण
'मैं था ? न था ?', पृ० १८

---

२ .... इसी पुंज से छाया निकली
क्षण भर में फिर
इसी पुंज में नयी चली ।
उस क्षण में मुझको आलोक मिला
रस मिला, चिन्तन दृष्टि मिली ....
— 'हरि की कल्पना हुआ मन' — [illegible]
'[illegible] पुंज से छाया', पृ० १९

(ङ) बौद्धिकता

यदि यह कहा जाय कि आज की नयी कविता का ढांचा नये कवियों की बौद्धिकता की नींव पर खड़ा है, तो अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा । देश जिस संक्रमणकालीन परिस्थितियों से गुजर रहा था, उन परिस्थितियों में बौद्धिकता की आवश्यकता थी और नये कवियों ने बौद्धिकता का परिचय नयी कविता में जिस रूप में दिया, वह अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ । सबसे पहले युग-बोध की अभिव्यक्ति कविता में ही होती है, क्योंकि कविता का सीधा सम्बन्ध हृदय पक्ष से होता है । नयी कविता की समसामयिक स्थिति डांवाडोल थी । चारित्रिक पतन मानसिक तथा शारीरिक गुलामी व्यक्ति को बेचना पड़ रही थे । सर्वत्र अराजकता के दर्शन होते थे । स्वतन्त्रता के बाद की बिगड़ी शासन-व्यवस्था ने मनुष्य को चारित्रिक दुर्बलताओं से भर दिया और चारित्रिक पतन के कारण मनुष्य को मनुष्य का शत्रु बना दिया[१] । चारों ओर बेरोजगारी, चोरी, घूसखोरी, अनाचार का वातावरण फैलता जा रहा है, जिसके कारण एक वर्ग अधिक धनी बनता जा रहा है तो दूसरा वर्ग दुर्भिक्ष की ज्वाला में घिरा अपनी आकांक्षाओं सपनों के गले घोंट रहा है । ऐसे वातावरण से नयी कविता बौद्धिकता से अछूती नहीं रह

---

१ ... वह सोच रहा है
कि, आदमियत वह चीज है
जो उजड़े को बसाना जानती है
लेकिन आज का आदमी है
वह आदमियत नहीं चाहता
खुद तो उजड़ा हुआ उजड़ा है ही
औरों को बसता हुआ कहीं देखना नहीं चाहता ...
--'अंधा चांद': मुनिभ्यचन्द्र,पृ०६

सकी ,उसने हटकर ऐसे तत्वों का सामना करना चाहा है, उसने यह समझा देना चाहा है कि मानव-व्यक्तित्व सब के लिए समान अस्तित्व रखता है, एक का दुःख-दर्द दूसरे का दुःख-दर्द भी है । हाल विरोधों का भी सामना करना पड़ जाय तो सत्य से असत्य का विरोध करना चाहिए न कि डर कर सारी ज़िन्दगी यों ही होम कर देनी चाहिए । विसंगति,अनास्था,विरक्ति में कवि ने व्यक्ति के मन की, हृदय की भावनाओं को पढ़ने का प्रयास किया है । उसकी बुद्धि उसकी चेतना में यह बात बैठ गयी है कि परम्परायें जो सड़-गल गयी हैं,उनसे बाहर आकर बौद्धिक अन्वेषण,आत्म अन्वेषण करना होगा[१] ।

आज युग विषमताओं और समस्याओं से जटिल हो गया है, एक ओर ज्ञान-विज्ञान अपना चरम पराकाष्ठा को छू रहे हैं, दूसरी ओर हमारी चेतना संकीर्ण होती जा रही है । हम दूसरे लोक में जाने की तो कोशिश कर रहे हैं लेकिन अपने लोक में हम आँखें मूंद कर ही रह रहे हैं, एक ओर हम शिक्षित हो रहे हैं, सुख-साधन सम्पन्न होते रहे हैं, बौद्धिक हो रहे हैं, दूसरी ओर हम निज स्वार्थ अन्याय को प्रश्रय दे रहे हैं, वह हमें नैतिक स्तर से कितने नीचे ले जा रहा है,इसका हमें अनुमान नहीं है । सभ्यता,संस्कृति मूल्य सब का अर्थ कितना जटिल और बदला-बदला हो गया है, आज वे समस्यायें

---

१ ... सड़े हुए फलों की पेटियों की तरह
बाजार में एक भीड़ के बीच मरने की अपेक्षा
एकांत में किसी सूखे वृक्ष के नीचे
गिर कर सूख जाना बेहतर है ।
मैं नहीं चाहता कि मुझे झाड़-पोंछकर
दुकान पर सजाया जाय ....
दूसरे खरीदार की प्रतीक्षा में
यह जीवन अर्थहीन हो जाय ।'
'बांस का पुल '-- सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
'मैं नहीं चाहता', पृ० ४८

उठ खड़ी हुई हैं जो हमारे पहले की पीढ़ी के लिए कल्पना के बाहर की वस्तु थी । आज जिस आधुनिकता की माँग की जा रही है, वह आधुनिकता बौद्धिकता से अनुप्राणित है । लेकिन जिस तरह की चेतना युग-बोध की माँग है, वैसी चेतना-दृष्टि का सर्वत्र अभाव दिखाई देता है ।व्यक्ति अपनी चेतना में जागृति नहीं लाता, वह तो दूसरों को श्रेष्ठ,महान् मानकर उसकी पूजा करता है । उसकी बुद्धि को ईश्वर की बुद्धि मानकर पूजता है । ऐसे अन्धबोधत्व के प्रति नये कवि की बौद्धिकता प्रतिकार कर उठती है । वह कालदेव से भूत वर्तमान नहीं, भविष्य के लिए ऐसे नपुंसक लोगों के लिए वरदान माँगता है,जिनकी बुद्धि,जिनकी चेतना सोयी हुई है, जिनको अपने अन्दर किसी भी तरह का प्रकाश नहीं दिखाई देता, दूसरों के सहारे जीते हैं[१] ।

बौद्धिक निष्क्रियता और नवचिन्तन

आज सर्वत्र जिस तरह का विखराव,उत्पीड़न तथा विसंगति है, उसके प्रति व्यक्ति कितना उदासीन है,अकर्मण्य है, उसकी चेतना,उसकी दृष्टि सोयी हुई है ।ऐसा नहीं है कि वह इन विषमताओं से नितान्त असम्पृक्त रहता है वरन् उसकी सम्वेदना इतनी निम्न स्तर की होती है कि वह सारे मान-अपमान को सहते हुए प्रतिकार नहीं करता । चाहे उसको

---

१ ... अत: ओ
ओ कालदेव !
तुम भूत कल से वर्तमान से मुक्त
उस भविष्य का तीसरा वरदान मुझे दो
कि मैं मुझको नहीं
मेरी निष्ठा नहीं, मेरी पीड़ा नहीं
अपने आप को देखूँ
उन निर्वीर्य नपुंसक मूर्तियों को तोड़ूँ
जिनके आराधन में मैं चुके हैं
तोड़ूँ को जिन्हें ही
मैंने चाहे उठायी थीं ... ।
'नयी कविता',अंक१,'कविताएँ' सं०डा० जगदीश गुप्त,विजयदेवनारायण साही
'कविताएँ' : मदनवात्स्यायन,पृ०६२

व उसकी ज़िन्दगी तक यों ही मृत्यु को प्राप्त हो जाय । परिस्थिति की असमानता के कारण उसके व्यक्तित्व में यह सन्तुलन उत्पन्न होने लगता है, लेकिन उसमें तर्क-वितर्क का न तो शक्ति है और न उसमें इतना साहस है कि वह खुलकर उसका विरोध कर सके, अत: उसका अन्तर्मन बुरी तरह पीड़ित हो उठता है । ऐसे निष्क्रिय,चेतनहीन व्यक्तियों के प्रति कवि व्यंग्यकशी भी करता है । क्योंकि वह जान गया है कि आज के युग को ऐसे सोये हुए व्यक्तियों की आवश्यकता नहीं है, आज तो व्यक्ति को अपना स्थान बुद्धि,तर्क-वितर्क द्वारा प्रतिकार करके बनाना है, न कि पशुओं जैसा जीवन व्यतीत करना है ।

नयी कविता बौद्धिकता के धरातल पर विकसित हो रही है, अत: उसमें कवि की दृष्टि सतही न होकर कुछ गहरी दृष्टिगोचर होती है । उसकी अनुभूति की अभिव्यक्ति में आलोचनात्मकता होती है, क्योंकि वह कोई घोषणा करने के पूर्व विषय की तर्क-वितर्क द्वारा परीक्षा करता है । इसीलिए कभी उसकी अभिव्यक्ति व्यंग्यपूर्ण होती है, कभी समझदारी से भरी हुई और कभी यथार्थता की ओर झुकी हुई । इन सब के पीछे उसकी जो प्रेरणा दिखायी देती है, वह बुद्धि से परिचालित होती है । वह जानता है कि आज जो विषमता सर्वत्र फैली हुई है उसके पीछे न केवल आर्थिक अथवा सामाजिक विघटन ही है,बल्कि वैज्ञानिकता ने नैतिक मूल्य तथा संस्कारों के साथ-साथ आदर्श को भी मूलरूप से परिवर्तित कर दिया है । इसलिए अब जीवन का अर्थ बदल गया है, यह बुद्धि, विचार और चिन्तन का युग है, जो इस युग के संघर्ष की तीव्र धार पर बुद्धि और विवेक के सन्तुलन के साथ बिना झिझके चल पड़ेगा, वही सफल हो सकेगा, और जो इस तीव्र धार पर पैर रखने में झिझकेगा, वह युग के साथ संगति नहीं बैठा सकेगा । डा०जगदीश गुप्त की कविता `एक समीकरण` के पीछे जो व्यंग्य है, वह बौद्धिकता से ही उद्बोधित हुआ है । कवि जानता है कि आज हम अणु अस्त्रों का निर्माण यदि मानव के ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए ही कर रहे हैं, और यदि हमारा संघर्ष मन की, जीवन की लाशों से पाटना ही है, तो हम निश्चय ही

शिशु हैं, क्योंकि शिशुओं में ही इतनी विवेकशीलता नहीं होती कि सत्य शिव सुन्दर का वास्तविक अर्थ क्या है ? सारा व्यंग्य अन्तिम पंक्ति में प्रकट हो जाता है --` वह मानव भी तो निश्चय शिशु है खिलेगा अभी युग युग `[१]।

आज जिस युग में हम जी रहे हैं, वह युग भयानक परिवर्तन का युग है । एक ओर हम नक्षत्र लोक तक विजय की पताका फहराना चाहते हैं, दूसरी ओर हम अपने लोक को ही नहीं पहचानते, हम मनुष्य से असुर हो रहे हैं, कोई भी वस्तु अपने पूर्ण रूप में नहीं रही है, आस्था और संस्कार अपना दामन छोड़ रहे हैं, मूल्य जिस तेजी से बदल रहे हैं उसमें कुछ निश्चित कर पाना व असम्भव है, ऐसे उथल-पुथल में व्यक्ति किस सीमा तक पागल हो गया है, यह कह पाना कठिन नहीं है । गिरिजाकुमार माथुर के अनुसार संस्कृति का यह खाली, अनाधिकृत प्रदेश है---नो मैन्सलैंड है-- जहां

----

१ .. जो भारी भूले चाकू से क्रीड़ा आह्लाद में
अनजाने --
अपने ही हाथों को काटते हैं
बालक हैं--खिलेगा अभी बरसों ।
अपने अणु, अस्त्रों के स्पर्धा उन्माद में
अनजाने --
जो मन को, जीवन को, लाशों से पाट दे
वह मानव भी तो निश्चय शिशु है
खिलेगा अभी युग-युग ।
`शम्बूक`-- डा० जगदीश गुप्त
`एक समीकरण`, पृ०६४ ।

पहुंचकर आदमी अर्ध सभ्य हो गया है[1]। ऐसे घोर बदलाव में कवि की दृष्टि जिस बौद्धिक तर्क-वितर्क से परिचालित होकर एक निष्कर्ष पर पहुंचती है, वह है कि आज जीवन में 'यथार्थ' नहीं मिल सकता, यथार्थ का तो अर्थ ही बदल गया, आज तो दृष्टि मिलती है, और यदि व्यक्ति की बुद्धि तथा तर्क-वितर्क-शक्ति बुद्धि में कुछ वजन है तो वह सारी दृष्टि को अपने अनुसार ढाल सकता है। आज उसे दृष्टि का गुलाम नहीं बल्कि दृष्टि को अपने अनुरूप ढालना है[2]।

बुद्धि और हृदय का समन्वय

आज नयी कविता में बुद्धि और हृदय के पक्ष का समन्वय मिलता है, जो बात कवि को प्रेरक लगती है, जो हृदय कवि के हृदय को गहरे तक स्पर्श कर जाती हैं, उनके प्रति वह एक भावात्मक दृष्टि ही नहीं रखता, वरन् वह उनके तथ्यों को आलोचनात्मक प्रस्तुतीकरण में भी विश्वास करता है। आज के परिवेश में जिस सीमा तक कृत्रिमता छायी हुई है,

---

१ ... एक ओर मदोन्माद है, दूसरी ओर बर्बरता। संस्कृति का यह खाली अनाधिकृत प्रदेश है — नो-मैन्सलैंड है-- वहां पहुंचकर आदमी फिर अर्ध सभ्य हो गया है... ।'
'शिलापंख चमकीले'--गिरिजाकुमार माथुर
'प्रक्रिया', पृ०६।

२ .... जीवन में यथार्थ नहीं
दृष्टि भर मिलती है,
खरीदार सच्चा हो
दृष्टि बेचारी तो सभी दाम बिकती है।
'कर्फ्यू' -- कुंवरनारायण
'मूल्य', पृ० ११६।

उससे वास्तविकता कितनी दूर चली गई है, किन्तु यह बात कवि की दृष्टि से छिपी नहीं है । हर बात यहां किसी योजनावश कही जाती है, करी जाती है । `अकांत` के विपिनकुमार अग्रवाल की ऐसी ही कविता है । सबसे अधिक तो सम्प्रेषणीय अन्तिम तीन पंक्तियां हैं, जिनमें सारा आक्रोश, सारा प्रतिकार साकार हो उठता है । यही आक्रोश और प्रतिरोध क्या कवि के हृदय-पक्ष और विचारपक्ष (बुद्धि से तात्पर्य है) का सन्तुलित अभिव्यक्ति नहीं है ? सारी कृत्रिम परिस्थितियां उसके हृदय को गहरे तक छू जाती हैं और यही छुअन तर्क-वितर्क के[१] साथ अन्तिम तीन पंक्तियों में इस कृत्रिमता से मुक्ति का अनुरोध करती है ।

नयी कविता की बौद्धिक चेतना श्लील-अश्लील, आकर्षण-विकर्षण, व्यंग्य, चोट सब में विश्वास करती है । अपने चारों ओर के परिवेश से वह प्रभावित होती है, उसका उद्देश्य अपने युग के सारहीन बिम्बों को तथा अन्तोन्मुखी प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करना है, वह अपने युग को हर संबंध के साथ जीती है, इसीलिए नयी कविता कहीं-कहीं सर्वसाधारण के लिए ग्राह्य नहीं होती । परन्तु ऐसा तो कोई भी साहित्य नहीं होता, जो

---

१ ... यह सब जो ताम झाम है
मखमली आवरण और चिकना पृष्ठ है
...... इन सब पर
मत गिरो, क्योंकि यहां
यह सब जुटाया गया है

....
तुम्हें तुम्हारी मां ने मरते समय
नहीं कहा था — वहां मत जाना
जहां सब को जाना अच्छा लगे ।
`मेरे पैर`--विपिनकुमार अग्रवाल, `अकांत`--पृ०८ ।

कमजोरियों और दोषों से रहित हो । आज युग को बौद्धिक चेतना की आवश्यकता है, तर्क-वितर्क तथा हृदय में मन्थन के बाद कुछ सारभूत तत्व देने की आवश्यकता है । अन्याय-अत्याचार के विरोध में आवाज उठाने की आवश्यकता है, इसलिए नयी कविता हृदय और बुद्धि पक्ष के सम्मिलन से उद्भूत भावों की प्रस्तुतीकरण कही जा सकती है ।

<u>अतिबौद्धिकता : रसहीनता</u>

लेकिन कुछ आलोचक नयी कविता पर अतिबौद्धिकता का आरोप लगाते हैं । उनके अनुसार कविता एक वर्ग के लिए ही सीमित हो गई है । परन्तु जहां तक मेरा व्यक्तिगत अनुभव है, मुझे नयी कविता की प्रवृत्ति आज के बढ़ते सामाजिक, आर्थिक, नैतिक सम्बन्धों के बीच पनपती विषमता की खाई को पाटना है । इसीलिए उसने आकर्षण-विकर्षण के भेद को मिटा युग की पुकार सुनी, उसकी प्रवृत्ति में व्यंग्य करना, चोट करना, झकझोरना आदि का समावेश हो गया है । आज की परिस्थितियों में व्यक्ति इतना भ्रमित हो गया है कि उसकी बुद्धि में इतनी क्षमता नहीं रह गयी है कि वह अपने अधिकार के लिए, अपने अस्तित्व के लिए आवाज बुलन्द कर सके । वह तो चुपचाप सब कुछ सहता, टूटता, निराश होता अपना अस्तित्व समाप्त कर देता है । उसमें बौद्धिक उद्बोधन की शक्ति नहीं रह गई है, वह तो बुद्धिहीन होकर भार ढोने जैसा जीवन बिताने के लिए प्रस्तुत है । अपना पथ स्वयं नहीं खोजता । दूसरों के दिखाये मार्ग पर चलता है । इतिहास को सब कुछ मानता है । डा० जगदीश गुप्त ऐसे पथ के विरुद्ध आवाज उठाते हैं[१]।

---

१ ... लो फिर सुनो, मुझको नहीं पथ प्रदर्शक चाहिए
भटके हुए इन्सान की आकृति मेरे सीने पर
हर पथिक का कंधा पकड़
झकझोर कर
मुझे मिला ही कब रहे तुम चोर हो
इतिहास की भेरी बजाई
एक ही पथ है
यही पथ है
कि जिसको हर कदम पर -
झांकने वाला जरूर चले ।
नहीं, अब मुझको नहीं पथ-
प्रदर्शक चाहिए ।
-- नाव के पांव --डा० जगदीश गुप्त; लो फिर सुनो, पृ०३८ ।...

इस प्रकार के विचारों के प्रति कवि का उद्देश्य एक प्रकार से आज के मानव में बौद्धिक चेतना की जागृति करना है । इसीलिए वह खुलकर ऐसे लोगों का चित्रण करता है जिसको झकझोर कर जगा देना चाहता है । यही कारण है कि आज की नयी कविता में अनुभूति और अनुभव की प्रस्तुतीकरण के पीछे बौद्धिक चेतना का धरातल है । नयी कविता मात्र भाव में विश्वास नहीं करती, वह तो विचारों तक जाती है, क्योंकि बुद्धि आज के युग की महत्वपूर्ण सम्बल है, बुद्धि को असन्तुष्ट और भूखा नहीं रखा जा सकता । इसीलिए अतिबौद्धिकता के कारण कभी-कभी कविता अबोध, रसहीन जान पड़ती है । यही कारण है कि कुछ लोग नयी कविता में यह विवाद उठाने लगते हैं कि नयी कविता में रसहीनता है । जहां तक मेरा मत है मैं बौद्धिकता को सर्वसाधारण के लिए कठिन अवश्य मान सकती हूं, लेकिन अबोध नहीं । कोई भी विधा हो उसमें बौद्धिक चेतना का समावेश अवश्य होता है । बौद्धिक चिन्तन, मनन और आलोचनात्मक तथ्यों के प्रस्तुतीकरण के बिना किसी भी विधा में परिपक्वता तथा श्रेष्ठता नहीं परिलक्षित हो सकती । नयी कविता के लिए तो आज का युग एकदम नूतन भाव-बोध लिए हुए है । युग संक्रमणकालीन स्थितियों से गुजर रहा है, सारी पूर्ववर्ती मान्यतायें, सिद्धान्त, आदर्श, परम्पराएं यहां तक नैतिक तथा जीवनमूल्य भी तेजी के साथ बदल रहे हैं, जन जीवन के सामने विषम परिस्थितियां मुंह बाये खड़ी हुई हैं । ऐसी दुर्दम परिस्थितियों का काव्य मानसिक, बौद्धिक ऊहा-पोहों का काव्य है । आलोचक तथा पाठक वर्ग को हमारे पुरातन प्रतिमानों से इसको नहीं तौलना चाहिए । आज नयी कविता का भाव, शिल्प और बुद्धि तीनों पक्ष प्रगति की स्थिति में है । नयी कविता आन्तरिक संवेदना, बुद्धि, तर्क के धरातल पर अवतरित होती है । इसका

सीधा सम्बन्ध बौद्धिकता और युग-बोध से है। जीवनमूल्यों के बनते-बिगड़ते युग में कविता के लिए एक आकार धारण करना, एक रूप लेना अत्यधिक कठिन है, ऐसे में कविता में रस ढूंढना कविता के प्रति अन्याय होगा। 'कविता में प्रयोगवाद की परम्परा' नामक पुस्तक में डा० नन्ददुलारे वाजपेयी ने भी नयी कविता में बुद्धि रस की चर्चा करते हुए साफ कहा है कि काव्य के इतिहास में यह शब्द इसके पूर्व कदापि नहीं आया।[1]

नयी कविता का ढांचा युगीन यथार्थ से परिचालित बौद्धिकता की नींव पर ही खड़ा है। रस तो व्यक्तिगत समस्या है, कोई कविता किस वर्ग को किस सीमा तक प्रभावित करती है और किस वर्ग को किस सीमा तक प्रभावित नहीं करती, यह तो अलग-अलग बात है। अतः जहां कविता की सम्वेदना पाठक-आलोचक की चेतना में समाहित हो जाती है, वहां कविता में रस स्वयं प्रकट होने लगता है। यही कवि का प्रयास सफल हो जाता है।

पं० रामचन्द्र शुक्ल तो बुद्धि से भाव को महत्वपूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार 'ज्ञान प्रसार के भीतर ही भाव प्रसार

---

१ 'शायद ही कोई कृति हो जिसमें बौद्धिक चेतना का समावेश नहीं हो पाता है। अतिशय भावनावादी और कल्पनावादी भी यह मानते हैं कि सहज प्रवृत्तियों का उदात्तीकरण मानव-संस्कृतियों के विकास साथ साथ होता है, कोई राष्ट्र या जाति अपनी मूल या आदिम वृत्तियों को संजोये बैठी नहीं रहती। कविता में जातीय जीवन का बौद्धिक विकास भी प्रतिबिम्बित होता है। परन्तु बुद्धि-रस तो एक अनोखा पदार्थ है। काव्य के इतिहास में यह शब्द इसके पूर्व कदापि [illegible] में नहीं आया। यहां इसका निषेध करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसपर गम्भीरतापूर्वक आस्था रखने वालों की संख्या नगण्य है।'

—'कविता में प्रयोगवाद की परम्परा' — नन्ददुलारे वाजपेयी
भूमिका, पृ०७८।

होता है । ज्ञान ऊपरी सतह से खिसक कर काव्य-हृदय में अन्तर्निहित अनुभूति को जगा देता है । रस 'वेद्यान्तर सम्पर्क शून्य' होता है, अर्थात् रसास्वादन के क्षणों में बौद्धिक व्यापार शान्त हो जाते हैं, अथवा यों कहें कि रसात्मक और अन्तर्मुखी हो जाते हैं[१] । लेकिन आज के परिप्रेक्ष्य में मैं भाव और बुद्धि को डा० जगदीश गुप्त की भांति अलग-अलग नहीं मानती, क्योंकि भाव यदि बुद्धि की तुला में तोल कर अभिव्यक्त होते हैं, तो वे भाव और भी सुदृढ़ तथा प्रेषणीय हो जाते हैं । भावों को प्रस्तुतीकरण में हल्कापन होने से कविता प्रभावहीन भी हो सकती है । इसीलिए हृदय तथा बुद्धि दोनों का आज के युग की सशक्त अभिव्यक्ति में समान योग है । जहां नयी कविता भावों और बुद्धि को साथ लेकर चली है, वह हमें वहां अवश्य प्रभावित करती है ।

कविता में बुद्धि पक्ष प्रबल होने से उसमें छंदबंध लय ,तुकान्त,अलंकार,भाषा आदि के प्रति एक उदासीनता का भाव है । कवि गद्य की भाषा में अपने भावों को, अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है, उसके लिए भाषा की बनावट तथा शृंगारिकता कुछ महत्व नहीं रखती । वह तो भाषा के नग्नतम रूप में नग्नतम भावों को अभिव्यक्त करता है । छंद अलंकार का आवरण चढ़ाकर वह कविता पर कृत्रिमता नहीं लादना चाहता । कविता तो आज के युग के मानव की सशक्त -- महत्वपूर्ण जीवित अभिव्यक्ति है -- उसमें शृंगार प्रसाधन की क्या आवश्यकता ? लेकिन ऐसा भी नहीं है कि ,बुद्धिपक्षकी अनिवार्यता के आग्रही, सौन्दर्य-बोध की दृष्टि से नितान्त असम्पृक्त हैं । बल्कि हृदय और बुद्धि पक्ष के सन्तुलन के साथ-साथ लय-तुक

---

१ 'नयी कविता : स्वरूप और समस्यायें' -- डा० जगदीश गुप्त
'नयी कविता में रस और बौद्धिकता',पृ०१०३ ।

छन्द, अलंकार तथा नये प्रतिमान, रूप, बिम्ब, भी सहज ही घटित हो गये हैं। `नाव के पांव' "बरि ओ करुणा प्रभा मय" तथा अनेकों काव्य-संकलन में सुन्दर बिम्ब, सुन्दर प्रतीक-योजना तथा सुन्दर अलंकार देखे जा सकते हैं। केदारनाथ जी बिम्बों के सफल रचयिता भी हैं।

इसलिए नयी कविता की बौद्धिकता के प्रति किसी प्रकार का कोई आग्रह नहीं रखना चाहिए। नयी कविता यदि कहीं असंवेद्य है तो वह मात्र उस बौद्धिकता के कारण ही नहीं, बल्कि किन्हीं अवस्थाओं में हो सकता है वह पाठक आलोचक के साथ तादात्म्य न स्थापित कर पा रही हो। इसीलिए बौद्धिकता असंवेद्य नहीं है, बल्कि कवि जिन सबल भावों को अपने अन्तर्मन में जिन अवस्थाओं में अनुभव करता है और उसके पीछे जो प्रेरणा स्रोत होते हैं, उन तक पाठक नहीं पहुंच पाता, और परिणाम-स्वरूप वह कविता पर अतिबौद्धिकता का आरोप लगाने लगता है।

-o-

(ज) सौन्दर्य-बोध मूलक नवीन चेतना

नयी कविता आज जिस युगीन यथार्थ के मध्य द्वन्द्वमय स्थिति में प्रस्तुत हो रही है, वहां दृष्टि और बोध का असीमित विस्तार हो गया है । सारी मान्यतायें, परम्परायें काव्य के मूल्यांकन के लिए निरर्थक लगने लगी हैं । दृष्टि-विस्तार तथा युग की मांग के सन्दर्भ श्लील-अश्लील, आकर्षण-विकर्षण, यहां तक कि 'सत्यं शिवं सुन्दरं' का अर्थ बदल गया है । यद्यपि अपने चारों ओर के परिवेश की विसंगति, विशृंखलता तथा वैषम्य को अपने अन्तर्तम में अनुभव करता है, वह पीड़ित होता है, निराश होता है, कभी-कभी अन्तर्मुखी अथवा पलायनवादी भी होता जान पड़ता है, लेकिन जीवनमात्र विडम्बना तो है नहीं कि उसी में डूबे निराशा में और गहरे गहरे उतरते जायं । ऐसे ही विचारों के कारण आज नयी कविता का सौन्दर्य-बोध पहले की दृष्टि में नितान्त परिवर्तित और विस्तृत है । जीवन के खुरदुरे धरातल का स्पर्श करने के बाद कवि मात्र बाह्य रूपाकार में सुन्दर दिखने वाली वस्तु के प्रति ही आकर्षित नहीं होता है, उसे विकर्षण में भी आकर्षण दिख सकता है । किन्तु उसे चांद तारे, गुलाब के फूल इत्यादि ही आकर्षित नहीं करते, अब तो उसे हर विकृत वस्तु अपने यथार्थ रूप में प्रभावित करती है ।

लक्ष्मीकान्त वर्मा के 'ठण्डे चकत्ते जुलूस' नामक कविता में एक निम्न-मध्यवर्ग के अस्त-व्यस्त घर को जिन विशृंखलित वस्तुओं में एक सौन्दर्य देखते हैं, उनको घर का एक-एक छोटे-से-छोटा सामान भी अपने

सौकलेपन में प्रभावित करता है[१]। यह दृष्टि इसलिए भी दृष्टिगोचर होती है, क्योंकि आज नयी कविता का भाव-बोध यथार्थ, विवेक तथा मानवता को स्वीकार करता है। जिससे आज दृष्टि का विस्तार इतना बढ़ गया है कि वह सौन्दर्य-बोध को भी नये रूप में देखने की ओर अब अग्रसर होता है। नयी कविता का सौन्दर्य-बोध कुछ नये तरह का है। बाह्य रूपाकार में कोई भी वस्तु जब आन्तरिक संवेदनात्मक -अनुभूति के साथ संश्लिष्ट हो जाती है तो कवि एक अनोखे प्रकार का आनन्द अनुभव करता है, यही आनन्द उसकी रुचि को तो तुष्ट करता ही है, साथ ही साथ कवि इस अनोखेपन की प्राप्ति से अपने में समग्रता का अनुभव भी करता है। यही समग्रता की स्थिति कविता के सन्दर्भ में नये सन्दर्भों से परिचित कराती है। नयी कविता का सौन्दर्य-बोध जीवन की समग्रता में विश्वास करता है, जीवन मात्र दुःखों

---

१ ... ये ठण्डे बुझे
बर्फीले —
पीले कफ़न
दाब से पीड़ित
घायल घायल से सिल तोड़े

....
चौके की काली छत से भी
काले काले दुर्गंध जाले
अब मौन केतली, कप, सासर

....
हथियार बन रहे लड़ने के
ये ठण्डे बर्फीले बुझे
पीले कफ़न ।
'अतुकान्त' — लक्ष्मीकान्त वर्मा
'ये ठण्डे बुझे बर्फीले', पृ० २८-३०

का पुंज नहीं है कि हर समय रोते ही रहें, जीवन तो कभी हंसाता है, कभी रुलाता है, कभी पीड़ा देता है, कभी सुख, फिर जीवन के प्रति उदासीनता का भाव कैसा ? कवि तो जीवन के हर पल में सौन्दर्य देखता है, उसकी दृष्टि जीवन के किसी भी पक्ष की अवहेलना नहीं करती है ।

सौन्दर्य-बोध के कोई शाश्वत नियम नहीं होते हैं, सौन्दर्य-बोध तो देश,काल और परिस्थितियों के साथ-साथ बदलते रहते हैं,कब कौन से दृश्य कवि को विमुग्ध कर देंगे, यह न नहीं कहा जा सकता है । इसके साथ ही साथ सौन्दर्य-बोध किसी विशेष स्थिति,विशेष समय और विशेष रूप में नहीं होते हैं, हमारे मन में अनेकों अनुभव,स्वप्न,आशायें, प्रतिक्रियायें सुप्त अवस्था में होती हैं,और जब ये ही अनुभव, स्वप्न आशा , प्रतिक्रियायें,सुप्त-अवस्था-में-रहेंगे हमारे मन में एक हलचल-सी मचा देते हैं, उस समय हमारे संवेदनात्मक प्रेरक गहन अनुभूति के द्वारा सौन्दर्य-बोध को जगाते हैं। ये सौन्दर्य-बोध हमें चलते-फिरते अथवा आराम के क्षणों में भी प्राप्त हो सकते हैं । इसीलिए नयी कविता में सौन्दर्य-बोध,यथार्थ और विवेक से उद्भूत होता है । यहां मैं लक्ष्मीकान्त वर्मा का उद्धरण देना चाहूंगी --` यह बात भी मान लेनी होगी कि नयी कविता का भाव-बोध मानसिक स्तर पर यथार्थ की अनिवार्यता को जीवन का अविभाज्य अंग मान कर उसकी दुरूहता को वहन करने की चेष्टा करता है और तब वह सौन्दर्य-बोध को जीवन से पृथक् किसी दैवी आभा या अखण्ड ज्योति का आभास नहीं मानता है । वह कमल के साथ कीचड़ का भी अस्तित्व स्वीकार करता है, अभिभूत क्षणों के साथ विक्षिप्त क्षणों को भी महत्व देता है । वह सुन्दर को विरूप से पृथक् नहीं मानता है, दोनों का सम्बन्ध अनिवार्य मानता है, क्योंकि `रूप` उतना ही बड़ा सत्य है,जितना विरूप , सुन्दर उतना ही

बड़ा सत्य है जितना असुन्दर । जीवन उतना ही बड़ा सत्य है, जितना जीवन-परिवेश । विरूपता अश्लीलता नहीं, असुन्दर भद्दे भोंड़ापन नहीं है, परिवेश खोखला नहीं है सब का सौन्दर्य के पक्ष में महत्व है । ये सब सौन्दर्य को सम्पूर्ण बनाते हैं, उसके आयामों को विकसित करते हैं[1] ।

नयी कविता का सौन्दर्य-बोध जीवन के प्रवाह में अंकुरित विकसित एवं पुष्पित होता है, लेकिन नये कवियों का यह दावा कि जो कुछ आंखों से दिखायी देता है, वह सब का सब सौन्दर्यमय है, यह बिल्कुल ही औचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता है । प्रकृति ने सुन्दर ही सुन्दर की सृष्टि नहीं की है, सृष्टि का तो सृजन ही सुन्दर-असुन्दर, शिव-अशिव, सुख-दुःख के सामन्जस्य से हुआ है, नये कवियों की यह दृष्टि कि उनकी संवेदनात्मक अनुभूति किसी भी वस्तु को असुन्दर नहीं देख सकती, सर्वथा निर्मूल है; जो सुन्दर है, वह आत्मा के सत्य सुख का, आनन्द का परितोष का भाव जगाता है, तभी सौन्दर्य-बोध सही और पूर्ण माना जा सकता है । सौन्दर्य का बोध जब दूसरों की अनुभूति में सौन्दर्य की सृष्टि नहीं कर पाता तो वह सौन्दर्य कैसे माना जासकता है ? नयी कविता तो स्व अनुभूति में सर्वसंवेदना का अनुभव करती है । फिर ऐसी भ्रामकता क्यों सौन्दर्य सम्बन्धी विचारों में या मनमानापन क्यों? लेकिन नयी कविता में सर्वत्र ऐसा नहीं हो रहा है, जिन कवियों ने सौन्दर्य-बोध को व्यापक अर्थों में समझा है वे विरूपता और अश्लीलता ,असुन्दर और सुन्दर का विभेद भी करते हैं । नई कविता की सौन्दर्य-बोध मनमाना ही नहीं है । बल्कि अधिक सूक्ष्म और व्यापक है, अश्लीलता और भोंड़ेपन को अलग माना गया है। सिर्फ असुन्दर और विरूप के बीच भी अर्ध विकसित अविकसित सौन्दर्य को देखा गया है जो उसकी अन्तर्दृष्टि

---

1 `नयी कविता के प्रतिमान` -- लक्ष्मीकान्त वर्मा
`सौन्दर्य बोध के नये तत्व`, पृ० ७९ ।

का परिचायक है । सुन्दर-असुन्दर की जो रूढ़ दृष्टि रही है, उससे ऊपर उठने की चेष्टा की है ।

नवीन सौन्दर्य-बोध : दोषपूर्ण व्याख्या

सुन्दर-असुन्दर की इतनी खिचड़ी पकाई गई कि अब उसमें चावल और दाल को अलग-अलग देख पाना भी मुश्किल हो गया है । नये कवियों का यह दावा कि वे असुन्दर की पृष्ठभूमि में सुन्दर को देखने का प्रयत्न करते हैं, यह उस स्थिति में माना जा सकता था, जबकि वे वास्तव में ऐसी दृष्टि से सौन्दर्य देखने का प्रयास करते । स्थिति तो यह आ गई है कि ये कवि सौन्दर्य को पृष्ठभूमि में रखकर असुन्दर को उभारने का प्रयत्न करते हैं, सुन्दर तो लुप्त हो जाता है, असुन्दर ही असुन्दर विकृत होता हुआ भी सुन्दर कहा जाने लगता है । कमल की सुन्दरता में कीचड़ का महत्व है, क्योंकि वह उसकी सुन्दरता बढ़ाता है, लेकिन कमल की अवहेलना कर मात्र कीचड़ किस तरह सौन्दर्य सम्प्रेषित कर सकता है ? यह हर दृश्यमान वस्तु सुन्दर कदापि नहीं मानी जा सकती, जो असुन्दर है, विकृत है, भोंडा है, वह कैसे हमारी सौन्दर्यानुभूति को जगा सकता है, यदि किसी को `चांदनी चांदी सदृश' लिखने में बुरा लगता है, `मुख कमल सरीखे मलोंछ लगते, तो क्या कहा जा सकता है । उनकी दृष्टि बोध के बारे में उनको खोटे सिक्के में ही सौन्दर्य दिखता है तो दिखे, लेकिन उनका सौन्दर्य-बोध किसी की आत्मानुभूति को वह परितोष नहीं दे सकेगा, जिस परितोष और आनन्द के अभिलाषी ये

कवि ऐसे सौन्दर्य की कल्पना करते हैं[१]। लक्ष्मीकान्त का विचार है कि "न सौन्दर्य, सृजन, आस्था, विश्वास इन सब के अन्तर में जो यथार्थ व्याप्त है, जो सत्य है, वही भटकन का अन्वेषण है, अन्तस्थल का सोहन है जो कीचड़ काई, पाप, उपकाई-- सब के स्तर को छूने के बाद समस्त पृथ्वी के यथार्थ की पीठ पर धारण करके उस सौन्दर्य का कल्पना करता है, उसका निर्माण करता है जो मन्थन के बाद प्राप्त होता है।" यह बात तो मानी जा सकती है कि नयी कविता का दृष्टि-विस्तार इतना व्यापक हो गया है कि उसमें वीभत्स, कुरूप, विघटित भावों को शान्त, सुन्दर और सुनियोजित की सापेक्षता में स्वीकार किया गया है, लेकिन केवल दर्शक होकर स्वीकार करने की स्थिति बहुत खतरनाक है, कवि को तो द्रष्टा होना चाहिए, सुन्दरता की पृष्ठभूमि में असुन्दरता का पक्ष भी सराहनीय है, सुन्दरता को और उभार कर रखता है, लेकिन किसी कठभाविता के वशीभूत होकर विनाश, विध्वंस का चित्रण किसी भी तरह का सौन्दर्य-बोध नहीं पैदा कर सकता है। यदि यह बात भी मान ली जाय कि नया कवि अन्तस्थल का सोहन, "काई, कीचड़, पाप उपकाई सब के स्तर को छू कर समस्त पृथ्वी के यथार्थ की पीठ पर धारण कर उस सौन्दर्य की कल्पना करता है जो

---

१ .... "चांदनी चंदन सदृश
हम क्यों लिखें?
मुख हमें कमलों-सरीखे
क्यों दिखें?
हम लिखेंगे
चांदनी उस रुपये सी है
कि जिसमें
चमक है पर खनक गायब है।"
-"अकेले कंठ की पुकार"-- अजितकुमार
"कवियों का विद्रोह", पृ०३०।

मन्थन के बाद प्राप्त होता है।[1]' काश ये मन्थन का अर्थ समझ पाते जब कि मन्थन की प्रक्रिया स्वयं में कोई सौन्दर्य-बोध नहीं है और यदि मन्थन से सौन्दर्य-बोध विकसित होता है तो क्या मन्थन में केवल विष, कंकड़, पत्थर ही निकलते हैं, मोती माणिक कुछ भी नहीं। यदि समस्त प्रकृति का मन्थन किसी हठवादिता के अधीन स्तरीय दृष्टि से ही न किया जाय तो सौन्दर्य अपने स्वाभाविक परिवेश में सदैव प्रभावित करेगा। एक छोटा शिशु अपनी शिशुवत् लीला में सबको मोहता है, उसके लिए विशेष दृष्टि की आवश्यकता नहीं होती है जब कि नये कवियों ने तो विशेष दृष्टि से सब कुछ निरावरण देखना चाहा है, तो फिर उन्हें केवल सिसकारी, रुदन, पीड़ा, विकलांगता, विकलता ही क्यों दिखाई देता है, क्या प्रकृति के नियम बदल गये हैं, क्या सुन्दर, आकर्षक पक्ष पृथ्वी से विदा हो गये हैं, क्या सुन्दर आज के युग-बोध में मूल्यहीन सिद्ध हो गया है? आज का सौन्दर्य-बोध नहीं बदला है बल्कि सौन्दर्य-बोध बलात् बदलने का प्रयास किया जा रहा है। यही हठवादिता का व्यामोह एक दिन कविता को जीवन की सब सहज अभिव्यक्ति मानने से रोकेगा, उस समय नये कवियों की बौद्धिक और वैज्ञानिक दृष्टि का अर्थ समझ में आने लगेगा?

शमशेर बहादुर की दृष्टि में 'अपने चारों ओर की जिन्दगी में पूरी दिलचस्पी लेना, उसे ठीक-ठीक समझना तथा वैज्ञानिक आधार पर अनुभूति और अनुभव को सुलझाना, स्पष्ट करना इस युग के हर कलाकार का उत्तरदायित्व है। उनकी नज़र में वैज्ञानिक आधार मार्क्सवाद है, जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य को अपनी कला में सजीव रूप देना, कला के पक्ष में साधना है' लेकिन जितने कवि शमशेर की दृष्टि को लेकर चले हैं, सब

---

1 'नयी कविता के प्रतिमान' -- लक्ष्मीकान्त वर्मा
'सौन्दर्य-बोध के नये तत्व', पृ०८० ।

मार्क्सवाद की दृष्टि से जीवन-जगत् को देखने का प्रयास किया जा रहा है तो वहां कुरूप सुन्दर कैसे कहा जा सकता है, अश्लील-श्लील कैसे हो सकता है, भोंड़ापन सुडौलता में कैसे ढाला जा सकता है ? आखिर प्रत्येक वस्तु का अपना स्वभाव अपनी प्रकृति होती है, उसे अनदेखा कर आधुनिक बनाने का मोह, परम्परा से कोई भी वस्तु स्वीकार न करने की जिद, नये कवियों का सच्चा संघर्ष नहीं कहा जा सकता है । एक बात और जो शमशेर को सार्थक लगता है, वह यह कि `जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य-बोध को अपनी कला में स्वभाव से सजीव रूप देते जाना` क्या नये कवियों को जीवन की सच्चाई में केवल गंदगी ही गंदगी दिखाई देती है, अथवा सौन्दर्य का अर्थ कुरूपता हो गया है? जिस नंगी भाषा में काम बोध का चित्रण हो रहा है, क्या उसे जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य दोनों कहा जा सकता है । यदि कोई अपनी पत्नी का जांघ को दराज में पड़े रहने की कल्पना कर- कर लेता है,[1] `टांगे फैलाती है रश्मियां` `नंगी धूप`, `वनिता रानी धूले पैर ढंक कर उठो` । उन्हें लगा कि उनके शरीर में दरीचे बन जाते हैं`[2] ऐसे उदाहरण एक-दो नहीं हैं, सर्वत्र भरे पड़े हैं । जिस तरह के मानसिक चित्राक्षेपण का प्रदर्शन हो रहा है वह न तो सौन्दर्य की सच्ची परख ही कही जा सकती है[3] और न जीवन की सच्चाई की कलात्मक और वैज्ञानिक अभिव्यक्ति ही ।

नये सौन्दर्य-बोध के चक्कर में नये कवि इस सीमा तक कुछ कुरूपता की ओर बढ़ते जा रहे हैं कि सौन्दर्य का अर्थ ही

---

१ `मायादर्पण` — श्रीकान्त वर्मा `जीवन बीमा`, पृ० २६-२७ ।

२ `नंगे पैर` — विपिन कुमार अग्रवाल `धुली सेती धरा`, पृ०७० ।

३ `दूसरा सप्तक` — शमशेर बहादुर सिंह `नई कविता`, पृ०८८ ।

कविता से दूर होता जा रहा है । सब पागल हैं, नयेपन के लिए और नये भाव-बोध को जबरन लादने के लिए । यह नया भाव-बोध सिर्फ परम्परा को तोड़ने का षड्यन्त्र है, परम्परा को जर्जरित, खोखला करार करने की चाल है । क्या परम्परा सदैव खोखली और मूल्यहीन मानी जा सकती है? नहीं । परम्परा तो पृष्ठभूमि है जिसके आधार पर हम अपने युग को समझ सकते हैं, अभिव्यक्त कर सकते हैं, लेकिन परम्परा रूढ़ि नहीं हो सकता । परम्परा का जो कुछ भव्य है, सत्य है, सापेक्ष्य है, उसे हर परिस्थिति में स्वीकार करना होगा । केवल यह कह देना कि हम नये मार्गों के अन्वेषी हैं, हम पुरानी परम्परा को क्यों स्वीकार करें, या पहले जो बातें सुन्दर या शिव मानी गयी हैं, हम उन्हें सुन्दर और शिव क्यों मानें? यह तो नये कवियों की सनकपन ही है । क्या कमलों की सुन्दरता, चांदनी की शीतलता, सूर्य की प्राण शक्ति, नदियों-सागर की गहनता, गम्भीरता, प्रवाहमयता, पर्वतों की दृढ़ता और सौम्यता कभी भी नकारी जा सकती है । फिर आधुनिकता के व्यामोह में ऐसा तीर फेंका जा रहा है, जो अनजाना है, जब हर वस्तु अपनी वास्तविकता में प्रभावित करती है, कवि की संवेदना को जगाती है, तो उसे स्वीकार करने में हिचकिचाहट कैसी ?

अजितकुमार की दो कविताओं में कितना वैषम्य है, यह स्पष्टतया देखा जा सकता है — एक ओर वह ‘चांदनी को चन्दन सदृश’ नहीं मानना चाहते, ‘धूपों को कमल सरीखा’ नहीं मानना चाहते, वहीं दूसरी ओर उन्हें दुःख है कि वह कभी ‘ऊषा’ की स्वर्णिम बेला में नहीं जागे, नहीं कभी खुले उपवन में ‘, ‘नदियों के तट पर’, ‘तितलियों के रंगों को देखा नहीं कभी’, ‘कोयल में बुलबुल में कोई फ़र्क नहीं कर पाये’, ‘जाना नहीं सरसों का

रंग कैसा है, बसन्त आया अंधे बने रहे , सावन में फुरसत नहीं पाई [1]
प्रश्न उठता है,उन्हें ऐसे सौन्दर्य को न भोग पाने का दु:ख क्यों ? वह तो हर वस्तु में कुरूपता देखते हैं । उनका सौन्दर्य से क्या प्रयोजन ? वह तो चांदनी को उस रुपए सा साबित करना चाहते हैं,जिसमें चमक तो है पर खनक गायब । चलिए अच्छा हुआ कि उन्होंने 'कलाकारों का संयुक्त वक्तव्य' कहकर सुन्दरता को सुन्दरता तो माना, इससे क्या प्रयोजन कि उनमें (अजित-कुमार) अंधे सुन्दर को सुन्दर कहने का साहस है या नहीं ? जो सत्य है, स्वाभाविक है, आकर्षक है, उसे अस्वीकार करना असत्य दुस्साहस हो सकता है, परन्तु सत्य को,सौन्दर्य को स्वीकारने में कैसा साहस ?

अंधकार या यथार्थ का खुरदुरापन एक सत्य है । मैं सत्य को इतना सस्ती नहीं मानती यदि अन्धकार और यथार्थ का खुरदरापन ही सत्य तो सत्य को पाने की गुरुगम्भीर चेष्टा क्यों की जा रही है ? कवि क्या कोई भी वस्तुत: सत्य को प्राप्त कर सकता है ? सत्य तो किसी भी वस्तु के अन्दर-अन्दर छुपा वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व है, जो दर्शक होकर नहीं, द्रष्टा होकर देखा जा सकता है, विवेक,तर्क और आलोचना के द्वारा अनुभूति को खरा बनाकर प्रस्तुत किया जा सकता है । इसके लिए जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य को कलात्मक रूप देना होगा, तभी नयी कविता का सौन्दर्य-बोध सच्चा सम-सामयिक तथा सब को प्रेरित करने वाला हो सकेगा । काम-विकृति का नग्न चित्रण हास-विलास, सड़ा-गला जान-बूझकर उभारने के प्रयत्न में नयी कविता सौन्दर्यानुभूतिपरक कोई भी नया आयाम स्थापित नहीं कर सकती है । कला का,साहित्य का, साहित्यकार का उत्तरदायित्व इतना संकुचित नहीं माना जा सकता कि कवि जो कुछ सोचे-समझे और अनुभव करे

---

१ 'अंधे कंठ की पुकार' -- अजितकुमार
'कलाकारों का संयुक्त वक्तव्य',पृ०३६

वह मात्र उसकी ही अनुभूति का परिचायक हो । कलाकार का दायित्व बहुत ही जटिल और गम्भीर है । उसे सब की चेतना, सब की दृष्टि को अपनी चेतना, अपनी दृष्टि से परिष्कृत कर पूर्ण अभिव्यक्त करना है । उसकी वाणी देश-काल एवं परिस्थितियों की सीमा में नहीं बंध सकती । इसलिए उसकी सौन्दर्यानुभूति में यथार्थ की प्रतिष्ठापना अवश्य हो, पर वह यथार्थ मानवीय धरातल का यथार्थ हो, मर्यादित हो, दृष्टि प्रदान करने वाला हो ।

सौन्दर्य-बोध : प्रकृति-चित्रण के सन्दर्भ में

नयी कविता में प्रकृति-चित्रण में सौन्दर्य-बोध कुछ अधिक निखरा और नूतनता के साथ स्वीकार किया गया है । यहां पर मानसिक अवस्थाओं का प्राय: कम आरोप हुआ है । अतिलौकिकता का परुष रूप ही नहीं, बल्कि कोमल रूप भी अपनाया गया है । नयी अभिव्यंजनाओं के लिए नयी उपमायें, नयी बिम्ब-योजना, नये प्रतीक यहां तक कि नये शब्दों का निर्माण भी कर डाला गया । डा० जगदीश गुप्त का 'हिमविद्ध' प्रकृति चित्रण, प्रकृति सौन्दर्य का काव्य है । मात्र प्रकृति चित्रण का काव्य होने के कारण मैं उसे छायावाद का काव्य नहीं मान सकता । हिमविद्ध की सब अधिकांश रचनायें मुझे छायावाद की रहस्यमय जिज्ञासा का परिचय नहीं देती हैं । कवि कल्पना में नहीं यथार्थ दृष्टि से उस अनुपम सौन्दर्य-राशि को अपनी अनुभूति में संजोता है[१] । अब सौन्दर्यानुभूति में यथार्थ की प्रतिष्ठापना की बात

---

१. देखा हिमवान् को
 शब्दहीन अट्टहास राशिभूत
 कानों ने नहीं --
 मुग्ध आंखों ने सुना ।
 'हिमविद्ध' -- डा० जगदीश गुप्त
 'राशिभूत अट्टहास,' ,पृ० १६ ।

करते हैं तो हम यह क्यों नहीं मानते कि हिमाच्छादित पर्वत शिखरों के मौन संकेत कानों से नहीं, आंखों से ही समझे जा सकते हैं । मात्र प्रकृति-चित्रण का आग्रह होने से किसी भी रचना को भली भांति समझे बिना छायावाद की कृति नहीं कहा जा सकता है । 'दृश्य शिशु' में कवि को 'हिमकुंज की स कोर' शिशु के मुख में अधढंके दांत की झलक दिखा देता है । वह इस अनुपम सौन्दर्य को अपने मन में, अपनी आंखों में समो लेना चाहता है न कि उसे भावावेश में आकर परम सत्य मान बैठता है[1] । सौन्दर्यानुभूति से भावाकुलता को अलग नहीं किया जा सकता है । शुष्क,कोमल भावों से हीन व्यक्ति को कोई भी सुन्दर से सुन्दर वस्तु विमुग्ध नहीं कर सकता । कवि अधिक संवेदनशील प्राणी होता है । वह सौन्दर्य की अनुपम राशि को सिर्फ नवीन भाव-बोध के आग्रह में नकार नहीं सकता । अज्ञेय के 'हरी घास पर क्षण भर' की अनेकों कवितायें प्राकृतिक सौन्दर्य से उद्भूत हुई हैं । 'अरी ओ करुणा प्रभा मय' की कवितायें 'अनुराग' 'रात में गांव', 'धूप' 'धूली की सांझ' आदि जिनमें कवि की सौन्दर्यानुभूति कलात्मक भी है और अतिलौकिकता के बोझ से बची हुई, स्वाभाविक, सहज भी । 'दूसरा सप्तक'

---

१ ... धूप के अधढंके दांत सी
कोरें हिमकुंज की
फूटी फिर
उस सिकुड़ी भाप की ओट से
कहता हूं
अरे ! क्षणिक ठहरो भी,
पहले मैं इस शिशु का
छूटा मुख निहार लूं ।
'हिमविद्ध'--डा० जगदीश गुप्त
'दृश्य शिशु',पृ०२१ ।

की `घिरते आकाश` में शमशेर की सौन्दर्यानुभूति यथार्थ के साथ अभिव्यक्त हुई है । बादलों में चांद छुप जाता है, प्रकाश विलीन हो जाता है, उस समय[1] कवि को धीरे-धीरे फैलता अन्धकार धंसता - सा भान पड़ता है । भावों में सहज कोमलता है, जो कवि की अनुभूति का पाठक की अनुभूति से साक्षात्कार करा देती है । डा० जगदीश गुप्त के कविता-संग्रह `नाव के पांव` में `गोरी रात` , नाव के पांव[2] आदि रचनाओं में कवि का विकसित सौन्दर्य-बोध देखा जा सकता है ।

लेकिन कहीं-कहीं प्रकृति में सौन्दर्य-बोध विकसित करते-करते कवि अश्लीलता की ओर भी झुके हैं । वहां पर कविता का सार छूट गया है । इसीलिए कहना पड़ता है कि नई कविता में मानसिक अवस्थाओं

१... घिरते आकाश को ताकता उदास :
गहरे मन में चांद खो जाता है,
अंधकार
घुप-घुप धंसता जाता सब ओर
`दूसरा सप्तक` सं०—अज्ञेय `शमशेर बहादुर सिंह,` पृ०९५ ।

२... ज्योति गंगा में आयी बाढ़ ....
`गोरी रात`, पृ०६२

.... नीचे नीर का विस्तार
ऊपर बादलों की छांव, ...
`नाव के पांव`, पृ०४६

`नाव के पांव` — डा० जगदीश गुप्त ।

का आरोपण हुआ है , जिससे सौन्दर्यानुभूति भी गहरी और सच्ची नहीं हो पायी है[१] ।

नयी कविता में भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा,प्रतीक,उपमान,बिम्ब और रूपकों की कोई पूर्व निर्धारित सीमा स्वीकार नहीं की गयी है । आवश्यकता और भावों की प्रेषणीयता के लिए उपरोक्त सभी तत्वों का नया से नया रूप रखा गया है । बिम्बों के विषय में केदारनाथ का मत है कि `बिना चित्रों, प्रतीकों, रूपकों और बिम्बों की सहायता के मानव-अभिव्यक्ति का अस्तित्व प्राय: असम्भव है । यहां तक कि जब हम शुद्ध विचार के क्षेत्र में पहुंचकर गम्भीर तत्व दर्शन की चर्चा करते हैं, तब भी हमारे उपचेतन में कहीं न कहीं उन विचारों के अर्ध-चित्र उभरते-सिमटते रहते हैं । बिम्ब निर्माण की प्रक्रिया पूरे मानव जीवन में फैली हुई है[२] । नयी कविता की यही विशेषता है कि भावाभिव्यक्ति और परिवेश की मांग के अनुसार भाषा को सरल,मधुर,स्पष्ट,सभ्य तथा दुरूह,कठोर , अस्पष्ट रूप भी अपनाया गया है ।

`मुक्तिबोध` ने कलाकार के लिए तीन प्रकार का संघर्ष करना अनिवार्य बताया है उनमें से पहला -- तत्व के लिए संघर्ष, दूसरा अभिव्यक्ति को सक्षम बनाने के लिए संघर्ष, तीसरा दृष्टिविकास का

१... गीली मुलायम लटें
आकाश
सांवलापन रात का गहरा सलोना
व स्तनों के बिम्बित उभार लिए
हवा में बादल
सरकते
चले जाते हैं मिटाते हुए... ।
`कुछ कविताएँ` --शमशेर बहादुर
`गीली मुलायम लटें,पृ०४० ।

२ `तीसरा सप्तक` -- सं० अज्ञेय
`केदारनाथ सिंह, पृ०११५

संघर्ष है । इसमें से दूसरा संघर्ष अभिव्यक्ति को सक्षम बनाने का संघर्ष चित्रणसामर्थ्य से है[1] । चित्रण के लिए ही आज की नयी कविता ने नये उपमान,नये प्रतीक,नयेबिम्ब, नयी भाषा को स्वीकार किया है । किसी किसी कवि ने नये शब्दों व की सूची तक दे दी है । जिससे पाठक को शब्द का अर्थ एवं प्रयोग समझने में सुविधा हो । नरेश मेहता ने `बनपाखी सुनो` के अन्त में तथा गिरिजाकुमार माथुर ने `शिला पंख चमकीले` के प्रारम्भ में नये शब्द-प्रयोग की सूची दी है । भावों की अभिव्यक्ति और विषय के अनुसार शब्द को तोड़ा-मरोड़ा भी है । परिस्थिति एवं विषय के अनुसार भाषा को सरल एवं कमनीय भी बनाया गया है । कहीं-कहीं नये कवियों ने बिम्बों,प्रतीकों तथा नई उपमाओं के मोह में पड़कर कविता की मूल भावना को आघात भी लगाया है । वहां उनकी कविता वस्त्रों से हीन मात्र अलंकारों से सुसज्जित युवती सी लगती है ।`समय देवता` नरेश मेहता की एक लम्बी कविता है । प्रतीकों की इस कविता में प्रतीक रूप में कवि अपनी सौन्दर्यानुभूति को बिम्ब रूपदेना चाहता है । लेकिन जहां कविता अत्यधिक लम्बी है वहीं प्रतीकों का सुसज प्रयोग काव्य बिम्ब का निर्माण करने में असमर्थ हो जाते हैं । प्रतीकों और बिम्ब योजना द्वारा रूपक बांधने का जो प्रयास अवश्य किया गया है, वह प्रभावहीन हो उठा है । अतः कविता का सौन्दर्य और पार्थक्य दोनों कमजोर पड़ गये हैं । सौन्दर्यानुभूति उतनी तीव्र और गहन प्रभाव नहीं छोड़ पाती है । शिल्प योजना की दृष्टि से कविता अधिक महत्वपूर्ण कही जा सकती है । लेकिन

---

१ `नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबन्ध`— गजानन माधव `मुक्तिबोध`, पृ०१

संवेदना अनुभूति से सहज ही पाठक तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाते तथा कविता शिथिल कृत्रिम स्पंदनहीन कही जाती है[1]।

कहीं-कहीं शब्दों से नयी उपमायें भावानुभूति को साक्षात कर देती हैं। वहां कवि की अनुभूति से सहज ही पाठक तादात्म्य स्थापित कर लेता है[2]। वहां नयी कविता में भाषा के प्रति उदारतावादी दृष्टिकोण अपनाया गया है, वहीं अब भिन्न बिम्बों को निरर्थकता को भी स्वीकार किया गया है[3]।

--o--

----

१ ... सोने की वह मेघपीठ
अपने चमकीले पंखों में लेकर अंधकार
अब बैठ गई दिन के अण्डे पर।
नदी वधू की नथ का मोती
चील ले गई
गगन चील से
सूरज ग्वाला हांक रहा है
बकं०बुद०के दिन की गायें ...

'मेरा समर्पित एकांत'--नरेश मेहता, 'समय देवता', पृ०४८-४२

२ ... ढल गया
छुट गया
एक और वर्ष-दिन
पत्थर-सा
रंगीन कांच-सा
स्वाती-सा
'निर्दोष कंपते बालकों से
मेरे पास से।'
'बोधंब नहीं रुका'--गिरिजाकुमार माथुर, 'वर्ष दिन', पृ०२० ।

३ ... बिम्बों की यह निरर्थकता ही हमें अर्थ भी शब्दों की ओर ले जा रही है- आवरण-हीन, सन्दर्भहीन, संस्कारहीन और इन सबसे अधिक ऐसा नंगापन जिससे अनिवार्य जनजीवन के ऊपर एक समय बोध की छाप लगा सके।'

—'नये प्रतिमान पुराने निकष'--लक्ष्मीकान्त वर्मा

'ताजी कविता'-कुछ बोध बातें', पृ०१०० ।

अष्टम परिच्छेद

-0-

समाजगत चेतना के नये आयाम

(क) विश्व-युद्ध के सन्दर्भ में सार्वदेशिकता का आयाम : अखण्ड मानवतावाद --
सार्वदेशिकता, भारतीय स्वातन्त्र्य : सार्वदेशिकता, प्रयोगवाद से भिन्न नयी कविता में सार्वदेशिकता एवं मानवतावाद, अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में मानवतावाद, औद्योगिक समाज-व्यवस्था : मानव व्यक्तित्व का क्षरण, दोहरे सन्दर्भ में मानव-व्यक्तित्व का विघटन,.युद्ध जनित मनोविकृतियां, भारतीय परिवेश, विश्वयुद्ध : भारतीय चेतना में प्रेरणा एवं प्रकाश,ठोस मानवीयता की उपलब्धि आज के युग की समस्या ।

(ख) स्वातन्त्र्योत्तर भारत के समाज मनस की पीड़ा--
स्वतन्त्रता के बाद मूल्यभ्रष्टता, व्यक्ति की नगण्यता, संस्कारहीनता, असन्तुलन, चारित्रिक असंगतियां, बेरोजगारी, भीड़-मनोवृत्ति पर पार्टियों का शासन, युवा असन्तोष, पलायन, अकेलापन ।

(ग) आधुनिकता का आग्रह --

मानवतावाद

युद्धों का प्रभाव

संक्रमणकालीन विघटन में व्यक्ति की पीड़ा

असम्पृक्तता और अनैतिकता

असन्तुलन और व्यर्थता ।

-0-

षष्ठम परिच्छेद

समाजगत चेतना के नये आयाम

(क) विश्वयुद्ध के सन्दर्भ में सार्वदेशिकता का आयाम : अखण्ड मानवतावाद

सार्वदेशिकता

नयी कविता की पृष्ठभूमि में जो घटनायें तेजी के साथ घटित हुई, उनसे सारा समाज प्रभावित हुआ है । हमारे चारों ओर जो घटनायें घटती हैं, चाहे वे हमारे देश और हमारे समाज में घटित हों अथवा विदेश में घटित हों, मानव इतना सम्वेदनशील प्राणी है कि उसके प्रभाव से अपने को बचा नहीं पाता । साम्राज्यवाद के दो-दो विश्व-युद्धों का प्रभाव प्रकारान्तर से भारतीय समाज-चेतना को भी झकझोर गया । यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से ये युद्ध भारतीय परिवेश में नहीं हुए, लेकिन मानवता के नाम पर हो रहे भीषण रक्त-पात से भारत की समाज-चेतना भी अछूती नहीं रह सकी तथा दुष्परिणामों के विषय में सोच कर अपने चारों ओर ऐसा वातावरण बना बैठी जो वातावरण संवेदना की दृष्टि से युद्ध की विभीषिका को भोगने के बाद वास्तविक रूप में हो सकता है । संवेदना एवं चेतना देश-कालातीत होती है, यही कारण है कि युद्धों के कटु परिणामों का प्रभाव भारतीय समाज में प्रत्यक्ष रूप से न पड़ने पर भी उसका आरोपण उसी रूप में नयी कविता की समाज-चेतना पर पड़ा । विज्ञान एवं विकासवादी प्रवृत्तियों ने एक देश को दूसरे देश से प्रभावित होने के लिए बाध्य किया । किसी भी देश में जो भी वैज्ञानिक आविष्कार एवं औद्योगीकरण होता है, ऐसा तो नहीं है कि उसके आविष्कार और उसकी प्रगति उसी देश तक सीमित रह जाती है । क्या बिजली का आविष्कार विदेश तक ही सीमित रहा ? उसका प्रसार आज घर घर में हो गया । किसी देश में जो भी घटनायें घटित होती हैं, उनका प्रभाव अवश्य दूसरे देश पर भी पड़ता ही है । आज मानव-चेतना देश-काल

की सीमा में नहीं बांधी जा सकती है । मानव-चेतना यदि बंधी है तो मानवीय मूल्यों से और नैतिक मूल्यों से । युद्ध में किस तरह आदर्श काल्पनिक सिद्ध हुए इसका अनुमान हो गया । मानवता पशुता के स्तर से भी नीचे उतर गया । अन्य देश जो इन युद्धों की लपटों से बचे थे उनके अन्दर भी युद्ध की भयानकता की कल्पना होने लगी और यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि हो सकता है जो देश युद्ध से आज बचे हैं, कल उनको भी युद्ध का सामना करना पड़ जाये । युद्धों का प्रतिक्रिया स्वरूप एक देश दूसरे देश और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के नजदीक ही आ जाता है, क्योंकि यदि जीवन-बचाव और सहायता ही न की जाय तो देश लड़-लड़कर समाप्त भी हो सकते हैं । इन्हीं भावनाओं से व्यक्ति सार्वभौम अनुभव को ही अपने अन्दर पैदा कर लेता है । वास्तव में देखा जाय तो युद्धों के भीषण और कटु परिणामों के बाद ही मनुष्य की चेतना सार्वदेशिक चेतना हो गयी । युद्धों के परिणामस्वरूप कई देशों की सभ्यता और संस्कृति नष्ट हो गई । मानवता को पूरी तरह युद्ध की लपटों में झोंक होना पड़ा । मासूम, जवान, भोले-भाले बच्चे-बूढ़े और स्त्रियां बड़े-बड़े गोली के शिकार हो गये, यहां तक कि बमों के भीषण विस्फोटों ने पूरे-के-पूरे शहर को उड़ा दिया । वहां मानवता के नाम पर आंसू गिराने के लिए मौजूद नहीं बचा । द्वितीय विश्व-युद्ध में `नागासाकी' एवं `हिरोशिमा' विस्फोटक अणुबमों के शिकार हुए । वहां की संस्कृति और सभ्यता जला-भुना कर राख कर दी गई । आज भी ऐसे बमों के घातक परिणामों की दुष्छाया विकलांगता के रूप में जापान में देखी जा सकती है । ऐसे वैज्ञानिक मूल्यों को देखने के बाद कौन-सा देश, कौन-सा राष्ट्र आतंक से बचा रह सकता है । किन्हीं-किन्हीं परिवारों में पूरा-का-पूरा घर स्वाहा हो गया और बच गया तड़पता-तड़पता असहाय अकेला कोई एक मासूम व्यक्ति । उसके मन की घोर निराशा, पीड़ा, कुंठा और त्रास का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है । पराजय से उत्पन्न भय, त्रास कब तक दूसरे देश को सोचने के लिए बाध्य न करते और यही हुआ भी कि व्यक्ति की चेतना देश-काल का अतिक्रमण कर सार्वदेशिक चेतना बन गयी । दूसरों के दुःखों, पराजय, पीड़ा, कुंठा, भय, त्रास का स्पन्दन अपने अन्तर्मन में अनुभव करने लगी । दूसरों के दुःखों को अपने अन्तर्मन में समेट

कर उसकी अभिव्यक्ति द्वारा चेतना का सार्वदेशिक विस्तार किया । प्रत्यक्ष परिणाम और स्थूल सत्य की संकीर्णता को तोड़ कर जागरूक अंश संवेदनानुभूति द्वारा दूसरों की संवेदना को अपने अन्दर समेट लेता है । युद्धों की भीषणता यद्यपि नयी आवश्यकताओं और नये आविष्कारों को जन्म तो देती ही हैं, लेकिन उसके साथ-ही-साथ अभिशाप भी कुछ कम नहीं देता है और जब प्रत्येक देश नयी विकासवादी प्रवृत्तियों और वैज्ञानिक आविष्कारों से प्रभावित होता है तो अभिशाप से कैसे अपने को मुक्त कर सकता है ? यही कारण है कि युद्धों के भीषण परिणाम के बाद व्यक्ति जिस मन:स्थिति से गुजरता है, उस मन:स्थिति का साक्षात्कार प्रत्येक देश और प्रत्येक राष्ट्र का जागरूक अंश अवश्य करता है[१] । यहाँ पर आकर वैयक्तिक एवं स्वदेशिक सीमायें सार्वदेशिकता में विस्तार पाती हैं ।

भारतीय स्वातन्त्र्य : सार्वदेशिकता

भारतीय परिवेश में सार्वदेशिकता स्वतन्त्रता के बाद अधिक फलित हुई । दोनों विश्व-युद्धों के बाद भारतीय साहित्य में जो भी विधायें दिखायी देती हैं उनमें चेतना का सार्वदेशिक विस्तार नहीं परिलक्षित होता है । सन् १९४० तक दोनों विश्वयुद्ध समाप्त हो गये थे । लेकिन प्रथम युद्ध के बाद छायावाद की चेतना का जो रूप हमारे सामने आया उसमें युग-बोध के किंचितमात्र भी लक्षण नहीं थे । इस युग के कवियों में वैयक्तिकता का आग्रह था । अपने सुख, अपने दु:ख और अपनी पीड़ा में लगे थे । कवि स्वान्त:सुखाय के गीत गाते, आध्यात्मिक विराट शक्ति में रहस्यात्मक सम्बन्धों की कल्पना करने लगे । उनके लिए समाज-

---

१- 'हमारा जन-जीवन भले ही संसारव्यापी मानवीय मूल्यों के संकट, उनकी संक्रान्ति और नये मूल्यों के अन्वेषण की छटपटाहट से अपरिचित रहा हो, पर हमारा प्रबुद्ध साहित्यकार उनके प्रति जागरूक ही नहीं है, संवेदनशील भी हुआ है... ।'

—'साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य' -- डा० रघुवंश

'युग-जीवन की संस्कृति', पृ० २७९ ।

चेतना का कुछ भी अर्थ नहीं था। विश्व की बात तो दूर रही, इन कवियों को अपने देश की ही गिरती दशा का कुछ भी आभास नहीं था । सारा काव्य गोपनीय रहस्यात्मक तथा रोमानियत की भावना से प्रभावित था । ऐसी स्थिति में समाज चेतना ही न रह पाई, व्यक्ति-चेतना एकांगिता की ओर मुड़ चली । यद्यपि छायावादी कवियों की वैयक्तिकता मांसल,यथार्थ और ठोस न होकर सूक्ष्म और वायवी है,फिर भी प्रसाद के `चन्द्रगुप्त` में `कार्नेलिया' जैसे पात्र की कल्पना में कवि की दृष्टि सार्व-देशिकता की ओर मुड़ी है । इसके साथ ही `निराला` की `सम्राट अष्टम एडवर्ड` के विषय में लिखी गयी कविता भी इस बात का ठोस प्रमाण है । परन्तु ऐसी एक दो कविता से किसी विशेष प्रवृत्ति के विषय में स्पष्टता एवं दृढ़ता से कुछ नहीं कहा जा सकता है । इसके बाद आया समाज की अव्यवस्था की प्रतिक्रियास्वरूप सुधारवादी भावना से भरा हुआ प्रगतिवाद, जिसमें पूरे समाज का नहीं,बल्कि समाज के वर्ग-विशेष की मनोदशा और स्थिति का चित्रण हुआ । उनके सुधार की बात उठाई गई, इसमें बौद्धिकता विवेक से पृथक प्रतिक्रियावादी एकालाप का स्वर गूंजा, सारा काव्य नीरस और अतिबौद्धिकता से बोझिल हो उठा । यद्यपि इस अति बौद्धिकता के पीछे सामाजिक जागरूकता का पता बहुत ही मजबूत एवं स्पष्ट है । सन् १९३६ में देश के विभिन्न क्षेत्रों में घटने वाली घटनाओं का प्रगतिवादी काव्य में चित्रण हुआ है । द्वितीय महायुद्ध सन् १९४२ की क्रान्ति, गांधी जी का अनशन, बंगाल का अकाल, देश का विभाजन और साम्प्रदायिक दंगे आदि ने प्रगतिवादी कवियों की चेतना में जागरूकता एवं सामाजिकता का उद्बोधन किया । इस धारा में अपने ही देश की समस्या को उठाया ही गया और उनको हल करने का प्रयत्न भी किया गया । यद्यपि प्रगतिवादी काव्य मार्क्सवाद से प्रभावित रहा है,लेकिन इसमें स्वदेशिक युग-बोध ही महत्व रहा है ।

प्रयोगवाद से भिन्न सार्वदेशिकता एवं मानवतावाद

प्रगतिवादी काव्य की धारा अभी पूरी तरह से विलीन भी नहीं हुई थी, तभी सन् १९४३ में अज्ञेय के सम्पादकत्व में `तारसप्तक` के द्वारा जिन सात कवियों का परिचय मिला, उनसे उनकी कविता के विषय में

कुछ दूसरी धारणा बनी । ये कवि समाज-चेतना को दूसरे ढंग से लेकर प्रस्तुत हुए । आत्म प्रकाशन और वैयक्तिक स्वतन्त्रता के द्वारा समाज-चेतना का प्रकाशन, समाज की स्वतन्त्रता, इनका उद्देश्य था । इस काव्य-धारा के सामने आने से पूर्व द्वितीय विश्वयुद्ध के कलुषित परिणाम देखे ही जा चुके थे । भारतीय व राजनीति में समझौते, निराशा, संघर्ष और दमन, समाज में युद्ध के परिणामस्वरूप आर्थिक अस्त-व्यस्तता, मंहगाई, बेकारी, हड़ताल आदि के मूल में थे और इनसे जो गतिरोध पैदा हुए उनसे केवल व्यापारी एवं कृषक ही सबसे अधिक लाभान्वित हुए, मध्यवर्ग विशेषकर शिक्षित शहरी मध्यवर्ग को आघात हो लगे । कृषक एवं व्यापारी वर्ग को छोड़कर सभी वर्ग त्रस्त और पीड़ित थे । काल्पनिक, आदर्श एवं सपनों के जगत से उतर कर उन्हें यथार्थ के खुरदुरे धरातल पर उतरना पड़ा । कलाकारों, लेखकों और संवेदनशील कवियों को सबसे अधिक आघात लगा, क्योंकि यही वर्ग सबसे अधिक कोमल, यथार्थवादी एवं सचेतन होता है । समाज की विषमता एवं परिस्थितियों की छटपटाहट ने इस युग के कवियों को प्रभावित किया । निराशा, भ्रष्टाचार गतिरोध ने एक ओर कवियों को खिन्न, क्षुब्ध और व्याकुल तो किया ही, दूसरी ओर उन्हें हाथ-पर-हाथ रखकर बैठने भी नहीं दिया । इस वर्ग के कवियों ने इन स्थितियों से उबरने का प्रयत्न भी किया । लेकिन एक वर्ग ऐसा भी था जो सारी सामाजिक विषमताओं से कटकर क्षुब्ध, निराश, उदासीन और कटा-कटा सा पराजय को अपनी भावनाओं में दबाने लगा । यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ी कि स्वतन्त्रता के बाद की भयानक रूप से परिवर्तित होती जन-जीवन की स्थिति इसके आगे नगण्य हो गयी। मानसिक विकृतियों को भिन्न-भिन्न रूप में अभिव्यक्त कर ये कवि वैयक्तिकता के आग्रही हो उठे । एक ओर पराजय, खिन्नता, उदासीनता और नैराश्य से पूर्ण अभिव्यक्तियां, दूसरी ओर कुण्ठाओं में डूबे हुए अपने को श्रेय और भिन्न दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति इन कवियों में मुख्यरूप से देखी जा सकती है । लेकिन कुछ वर्षों बाद यह प्रवृत्ति युग-बोध के आगे इसी रूप में नहीं रह सकी और प्रयोगवादी कवियों की दृष्टि में कुछ परिवर्तन हुए । अतिरिक्त कलात्मकता और वैयक्तिकता के प्रकाशन की प्रवृत्ति ठोस यथार्थवादिता एवं वैयक्तिकता के विकास की ओर मुड़ चली ।

स्वतन्त्रता के बाद सार्वदेशिकता नयी कविता में सबसे अधिक देख पड़ी । प्रयोगवादी कवियों ने अपनी चेतना और अपनी दृष्टि में उचित परिवर्तन किए और नयी कविता की ओर मुड़ पड़े । स्वतन्त्रता के बाद विदेशों से भी भारत के राजनैतिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुए । इसके साथ ही साथ सांस्कृतिक क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य हुए । अनेक देशों से सांस्कृतिक प्रतिनिधि मण्डलों को भारत आमंत्रित किया गया, जिन्होंने अपने देश की सांस्कृतिक उपलब्धियों से भारतीय जनता को परिचित कराया । अनेक सांस्कृतिक प्रतिनिधि मण्डल यहां से विदेशों को भी गये, जिन्होंने विदेशों में भारत की सांस्कृतिक निधि को उद्घाटित किया । सांस्कृतिक प्रतिनिधि मण्डलों के व्यापक रूप से होने वाले इस आदान-प्रदान ने साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में भारत और विदेशों की दूरी बहुत कम कर दी[१] तथा देश की जनता के हृदय में अन्तर्राष्ट्रीय भाई-चारे की भावना में वृद्धि की । इसके साथ-ही-साथ भारत ने समाजवादी देशों से व्यापारिक संबंध भी स्थापित किए । आयात-निर्यात से भी भारत के सम्बन्ध दूसरे देश से हुए । समय-समय पर होने वाली सद्भावना यात्रा ने भी भारत को दूसरे देशों के निकट ला खड़ा किया । द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद ही भारत में समाजवादी व्यवस्था के लिए प्रयत्न किए गए और स्वतन्त्रता के बाद तो गांधीवादी आदर्श समाज-व्यवस्था में न उतर पाने पर समाज-चेतना में विसंगतियों की बाढ़ आ गयी । परन्तु नयी कविता की समाज-चेतना अपने देश की विसंगतियों और बिखराव में ही नहीं भटकी रही, बल्कि इसने विदेशों में होने वाले परिवर्तनों और घटनाओं की ओर भी अपनी चेतना को मोड़ा । गिरिजाकुमार माथुर ने `इच्छ देश` नामक कविता में पराधीन

----

१ `नया हिन्दी काव्य `-- डा० शिवकुमार मिश्र
`आर्थिक-राजनैतिक,सामाजिक,सांस्कृतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश`,पृ०४५ ।

अफ्रीका की सच्ची तस्वीर खींची है[1]। 'नागासाकी' और 'हिरोशिमा' पर बम विस्फोटों के बाद की दर्दनाक स्थितियों का नये कवियों ने चित्रण किया है। इसके साथ-ही-साथ विद्रोही महापुरुष आदि के विषय में भी नयी कविताएं लिखी गयी हैं। इस तरह हम देख सकते हैं कि नयी कविता में समाज-चेतना का विकास व्यापक एवं विस्तृत होता हुआ सार्वदेशिक हो गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में मानवतावाद

राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर घटने वाली घटनायें, दो-दो भयंकर विश्व-युद्धों के दुष्परिणाम, तीसरे विश्व-युद्ध की सम्भावना आदि ने मानवीय मूल्य के प्रति समाज-चेतना को एकाएक झकझोर कर रख दिया। दोनों विश्व-युद्धों में मानवता का जिस तरह तिरस्कार एवं क्षति हुई, इससे प्रत्येक देश के जागरूक वर्ग को मानवता की प्रतिष्ठा के लिए अपनी चेतना में जागृति ला जानी ही पड़ी। द्वितीय विश्व-युद्ध के समय सम्बद्ध राष्ट्रों को जिस दबाव और भीषणता में जीवनयापन करना पड़ा, इससे उनमें आत्म-सुरक्षा एवं प्रतिद्वन्द्विता की भावना जागी और इसके लिए विज्ञान एवं प्रविधि का तेजी से विकास भी किया। अणुबम के आविष्कार के पीछे यही सुरक्षा एवं प्रतिद्वन्द्विता की भावना ही निहित है। यदि द्वितीय विश्व-युद्ध न हुआ होता, तो शायद अणुबम का और अणुविषा का

---

१ ... 'महायातना की चट्टानों से
में जकड़ा हुआ प्रमीथ्यस
गरम हृदय का मांस नोचकर
गरुड़ खाये जा रहे निरन्तर
नंगी स्याह पीठ पर उखड़े हैं
सदियों के निर्मम कोड़े
शोषक दैत्य मशीनों ने
पंजों के गड़े चिन्ह हैं छोड़े .....।'
—शिलापंख चमकीले — गिरिजाकुमार माथुर, 'सच्चा देश', पृ० ४६-४७।

विकास कई दशकों बाद होता, शायद न भी होता और यदि होता भी तो कुछ भिन्न रूप में होता । इस तरह अणुशक्ति के आविष्कार से लेकर अन्तरिक्ष यात्रा के आयोजन तक युद्धकालीन मन:स्थिति केवल मात्र में अधिक हुआ[1] । एक ओर महायुद्ध तो समाप्त हो गये, लेकिन दूसरी ओर अन्य देशों में अन्दर-ही-अन्दर युद्ध की भावना सुलगती गयी, इससे मानव-चेतना जागरूक होती गई साथ-ही-साथ सुरक्षा और प्रतिद्वन्द्विता की भावना से विज्ञान, उद्योग और प्रविधि का भी दिन-प्रतिदिन तीव्रता से विकास हुआ । प्रविधि उद्योग के विकास से मानव एक-दूसरे से निकटता की स्थिति में आया । संसार की व्यापक और विस्तृत सीमाएं सिमटने लगीं, जिसका परिणाम यह हुआ कि मानव, मानव का ही अहितकारी होने लगा । परिवार, समाज और धर्म तथा प्रेम की सीमाएं अनिश्चित हो गयीं । मनुष्य-मनुष्य में टकराव, तनाव और द्वन्द्व की स्थिति ने मानवीय मूल्यों को निरर्थक घोषित कर दिया । मानवीय सम्बन्धों में निकटता एवं सम्पर्क आने से राष्ट्र-जातियां, उनकी पद्धतियों, संस्कृतियों में भी टकराव की स्थिति उत्पन्न हुई । इन सभी पद्धतियों एवं संस्कृतियों के प्रभावों, संस्कारों को आसानी से ग्रहण कर सकना एवं समरसता प्रदान कर सकना सहज नहीं । इसी से जहां एक ओर संसार की सीमायें संकुचित हुई हैं मानव, मानव के निकट आया है, वहीं संघर्ष, तनाव एवं वैमनस्य बढ़ा भी है ।

~~नयी~~ औद्योगिक समाज-व्यवस्था : मानव-व्यक्तित्व का क्षरण

युद्धों की समाप्ति के बाद विदेशों में नयी तरह की समाज-व्यवस्था के आयोजन हुए । औद्योगिकीकरण तथा यांत्रिक व्यवस्था के द्वारा आधुनिक सभ्यता का सूत्रपात किया गया, परिणाम यह हुआ कि एक ओर मनुष्य बढ़ती हुई यांत्रिकता और औद्योगीकरण से समृद्ध हुआ, कठिनाइयां आसान हुईं, जीवन समृद्ध और सुखमय हुआ, वहीं दूसरी ओर सामाजिक आचरण, धर्म प्रेम की

---

१ `हिन्दी साहित्य की अधुनातन प्रवृत्तियाँ' -- डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ०२ ।

भावना में कटुता एवं दूरी आती गई । कारण स्पष्ट था-- यांत्रिक व्यवस्था, महानगरीय सभ्यता ने नितान्त शुष्क एवं संवेदनहीन जीवन-दृष्टि दी, भावनात्मक एकता का अभाव होता गया, जिससे विदेशों में तो मानवीय असंतुलन और असंतुष्टि की स्थिति बढ़ती हो गयी है । परन्तु भारतीय परिवेश में आज मनुष्य दूसरी स्थिति में भी रहा है । स्वतन्त्रता के पश्चात् गांधीवादी आदर्शवाद एवं सुखमय, शान्त समाज-व्यवस्था की आशा की गई थी, लेकिन यह आशा, आशा ही बन कर रह गई । एक ओर देश तो स्वतन्त्र हुआ, लेकिन स्वतन्त्रता का अर्थ वर्गों में सीमित कर दिया गया । स्वतन्त्रता का अर्थ अलग-अलग ढंग से लिया गया । वर्षों की विदेशी गुलामी तो किसी तरह छूटी, लेकिन अपने ही देश के लोग उसी तरह गुलामी करने और कराने के आदी हो चुके थे, परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता विशिष्ट अर्थ में फलित नहीं हुई । बढ़ती हुई बेरोजगारी, औद्योगीकरण की कमी तथा अधिकतर भारतीय ग्रामों में निवास करने के कारण शिक्षा-दीक्षा से हीन थे । उससे देश में नयी व्यवस्था लाने में समाज के जागरूक प्रबुद्ध वर्ग को सबसे अधिक मानसिक तनाव की स्थिति से गुजरना पड़ा । बढ़ते हुए पारिवारिक-बोझ तथा समाज में अपना स्थान न बना पाने की स्थिति में मानव-व्यक्तित्व घोर निराशा एवं पराजय में डूबता चला गया । परिणामस्वरूप वह अपने में कुंठित होने लगा तथा उसमें क्षुब्ध मनोविकार उत्पन्न होने लगे । अपने को दीन-हीन, समाज से कटा, निरर्थक, क्षुद्र, खंडित-गठित व्यक्तित्व वाला मानने लगा, संघर्ष से कतराने लगा और अपनी विफलता से अपने व्यक्तित्व को कुंठित एवं महत्वहीन बनाने लगा । समाज में चारित्रिक एवं नैतिक पतन का जो दृश्य दिखाई दिया, उसका बहुत बड़ा कारण स्वतन्त्रता के पूर्व व्यक्तियों में पर्याप्त आत्मबल की कमी तो थी ही, साथ ही साथ व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का रूप भी पूर्णतया स्पष्ट नहीं हो पाया था । वर्षों की दासता ने व्यक्ति को स अवसरवादी बना दिया और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तो देश में समाजवादी व्यवस्था होने के स्थान पर उच्छृंखलता, शोषण, उत्पीड़न का क्रम ही बंध गया । सच पूछा जाय तो यही मानवता की सबसे बड़ी हार थी ।

देश को तो स्वतन्त्र करा लिया लेकिन मानवता को और भी जकड़ दिया ।

दोहरे सन्दर्भ में मानव-व्यक्तित्व का विघटन

एक ओर चेतना का सर्वव्यापी विस्तार होने से अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर घटने वाली घटनाओं से आज का कवि विक्षुब्ध है । युद्धों का संकट भी पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाया है तथा देश की व्यवस्था स्वयं इतनी तनावपूर्ण एवं संघर्षमय है कि आज का कवि कल्पना और आदर्शों के जाल से निकल कर परिस्थितियों को स्वयं झेलता, टूटता एवं विकृत होता है । इस अवस्था में रहना नहीं चाहता, उससे मुक्ति भी पाना चाहता है । मानवमूल्य, मानव-परम्परायें और मानव-मर्यादा की सीमायें आज पहचान में नहीं आ रही हैं । सर्वव्यापी चेतना के कारण आज व्यक्ति दोहरे अर्थों में विघटित हो रहा है । एक ओर उसको अपने देश की, अपने समाज की समस्यायें अन्तर्द्वन्द्व पैदा कर रही हैं, दूसरी ओर समस्त विश्व की समस्यायें उसकी चेतना को झकझोर रही हैं । बहुत स्वाभाविक है कि ऐसे परिवेश में आज मानव-इकाई की प्रतिष्ठा का प्रश्न उठाना चाहिए । उसमें चेतना, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य तथा आत्मबल पैदा करने की आवश्यकता है । आज जिस रूप में मानव-विकृतियों का चित्रण हो रहा है, उससे केवल परिस्थितियों का उद्घाटन ही हो सकता है, कोई समाधान नहीं मिल सकता । कहीं कहीं तो मानव-मन के ऊहापोहों को ऐसे रूपों में चित्रित किया जा रहा है कि उससे उस मानव की कल्पना करें तो उसका रूप यह होगा -- एक गलित, व्यक्तित्वहीन, अलौकिक, क्षुद्रस्वार्थवादी, लिजलिजा, कुंठित, निराशाग्रस्त, विकृत सेक्स का पुजारी, खोखली हंसी और मिथ्या रोब का मुखौटा लगाये रखने वाला मानव मूल्य हीन प्राणी ।[1] इस प्रकार मानव की परिभाषा करने के पीछे कवियों की क्या दृष्टि हो सकती है? मेरा तो यही मत है कि जहां आज चेतना देश, काल, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं से मुक्त हो गयी है, वहीं आधुनिकता की दुहाई देते हुए मानव-विकृतियों को

---

१ 'आधुनिक परिवेश और नवलेखन' -- शिवप्रसाद सिंह, पृ०२२७ ।

को उभारने में कवि की दृष्टि कालनिबद्ध है, भूत-भविष्य देखने में ही अंधी है ।

युद्धजनित मनोविकृतियां : भारतीय परिवेश

आज हम अनुभूति के स्तर पर देश,काल की सीमा में चाहे न बंधे हों, लेकिन यह तो मानना ही जायगा कि भारतीय परिवेश में आज वे समस्यायें नहीं हैं, जो विदेशों में युद्ध के बाद उत्पन्न हुई हैं । पहली बात तो यह है कि भारतीय परिवेश में ये युद्ध हुए ही नहीं, दूसरी बात भारत में स्वतंत्रता के बाद यदि छुटपुट युद्ध पाकिस्तान एवं चीन से हुआ भी तो युद्ध के चरम उत्कर्ष होने की स्थिति आयी ही नहीं । सच पूछा जाय कि कितने सैनिक इस लपेट में आये उनके परिवार वालों को छोड़कर कितने कवि युद्ध का साक्षात्कार करने गये ? कितनों ने युद्ध की वास्तविक जटिलता और उसके दुष्परिणामों को सही अर्थों में भोगा है ? कितने कवियों ने बंगाल के दुर्भिक्ष का सामना किया ? रेडियो समाचार, सिनेमा समाचार-दर्शन, प्रेस रिपोर्टरों द्वारा स्थिति का सही ज्ञान हो सकता है,तीव्रतम आत्मानुभूति नहीं । मैं यह बात मानती हूं कि कवि की दृष्टि,उसकी संवेदना देश-कालातीत होती है, पर अनुभूति की सच्ची गहनता के लिए वस्तुप्रमाण की आवश्यकता होती है,वर्ना अनुभूति का अर्थ अवैयक्तिक कल्पना ही रह जाये । अन्ततः मानना ही होगा कि आज जिस तरह मानव-विकृतियों का चित्रण हो रहा है, `लघु मानव`, `महामानव`,`सहज मानव`की कल्पना की जा रही है । उसके पीछे योरप की ही दृष्टि है । योरप में १८ वीं शताब्दी में औद्योगीकरण हो गया था, वहां की समाज-व्यवस्था, वहां की मान्यतायें भिन्न रही हैं । वहां समाजवाद,साम्यवाद सब कुछ लाकर देख लिया गया है, लेकिन फिर भी जिस तरह मानवता परास्त है, आन्तरिक असन्तोष-अराजकता,विघटन है, उसके पीछे बहुत बड़ी बात है--भावनात्मक असम्बद्धता । फिर योरप से ये प्रभाव भारत में आते-आते उतने तीव्र भी नहीं रहे हैं। महानगरीय जीवन भारत में कितनी जगहें, न वहां पूर्णरूपेण आधुनिकता ही है । भारत की तो बहुसंख्यक जनता आज भी ग्रामों के स्वच्छन्द वातावरण में बसती है । शायद आज की समाज-व्यवस्था से ग्रामों की जनता भी असन्तुष्ट है, लेकिन जिस

तरह का तनाव यौरप के समाज में देखा जा सकता है, जितनी ऊब-उकताहट वहां पाई जा रही है, उसका अंशांश भी भारत में नहीं माना जा सकता ।

क्या कारण है कि अर्थ और काम की पूरी स्वतन्त्रता एवं सहज उपलब्धि के बाद भी वहां न्यूरोटिक की संख्या बढ़ती जाती है । नई पश्चिमी चेतना बेचैन है राहत के लिए वह अध्यात्मवाद की ओर भी मुड़ती है ? एक-से-एक आश्चर्यमय खोजों के बाद तथा पृथ्वी से अन्तरिक्ष तक की दूरी तय कर लेने के बाद भी मानव ईश्वर की सत्ता को मानने लगा है । कारण स्पष्ट है कि अर्थ और काम से सब कुछ नहीं माना जा सकता । इन दोनों स्थितियों के बाद भी तीसरी स्थिति है अन्तरात्मा पर आधारित धर्म की जिसे भारतीय चिंतन का महत्वपूर्ण आधार माना जाता है । इसी स्थिति की प्राप्ति के लिए पश्चिम में 'हरे राम, हरे कृष्ण' आदि नारों का सहारा लेकर ईश्वर को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है, भारतीय धर्म संस्कृति को अपनाया जा रहा है। दूसरी ओर भारतीय वैसी ही मनःस्थिति को ओढ़ रहे हैं, जिसका परिणाम वे स्वयं अपनी आंखों से देख चुके हैं । यौरप की पिछली परिस्थिति से हमारे देश की स्थिति कुछ भिन्न है --'यौरप में १९ वीं शती के विज्ञानवाद से उत्पन्न अनास्था जितनी गतिशील प्रेरणापूर्ण थी उतनी ही सर्वग्राही भी । साथ ही उसके मानवतावाद का आधार भी निश्चित था । उसके विपरीत इस देश की आज की अनास्था पिछले युगों की मृत अंध आस्था के प्रति गहरा विद्रोह है । यौरप की समस्या आस्थाहीनता है तो हमारे देश का प्रश्न आस्था की जड़ता का है । शताब्दियों से इस देश का जीवन अपनी पिछली सांस्कृतिक मर्यादाओं में जकड़ कर बंध गया है । युग बदले, जीवनधारा आगे बढ़ी, पर ऊपर क-- जमी काई के समान ये मर्यादायें ज्यों की त्यों बनी रहीं । सैकड़ों वर्षों के बाद १९ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण के जागरण में हमको लगा कि हमारे सब सांस्कृतिक मूल्यों और मर्यादाओं पर गहरी काई जम चुकी है... परन्तु पहले महायुद्ध के बाद से ज्यों-ज्यों देश के स्वतन्त्रता-संग्राम का रूप स्पष्ट होता गया,

इसी के साथ यह भी स्पष्ट होता गया कि काई छूट जाने पर भी इन पुरानी मूल्य मर्यादाओं में चमक शेष नहीं रह गई है[1]।

विश्व-युद्ध : भारतीय चेतना में प्रेरणा एवं प्रभाव

यह बात अवश्य सत्य है कि योरप में हुए युद्धों से जो चेतना भारत को मिली, उससे भारत का स्वतन्त्रता का सम्बन्ध जुड़ा है। लेकिन किसी भी देश की प्रकृति, उसकी जीवन-धारा दूसरे देश से सर्वथा भिन्न होता है, सब देशों की संस्कृति, सभ्यता और उपलब्धियां समान नहीं हो सकतीं और न ही सब देशों की समस्यायें समान हो सकतीं। प्रत्येक देश के लोगों की मनोवृत्ति भिन्न होती है, जीवन-धारा का प्रवाह भिन्न-भिन्न ढंग से होता है। पश्चिम देशों में महानगरीय सभ्यता, उससे उत्पन्न होने वाली ऊब-उकताहट तथा कृत्रिमता, यांत्रिक व्यवस्था, विज्ञान एवं उद्योग का विकास आदि ऐसे तत्व हैं, जिन्होंने पश्चिम में मानव-प्रतिष्ठा का प्रश्न उठाया है। लेकिन अपने देश में समाज व्यापी कुंठा, निराशा, घुटन, अवसाद, पलायन, पराजय आदि के पीछे समाज-चेतना में जागृति की कमी है, चाहे कहने को हम मानवतावादी हों, आदर्शवादी हों, लेकिन आत्मबल तथा आन्तरिक निष्ठा का अभाव ही हमें आज समाज के धरातल पर परिक्षीणता की ओर ले जा रहा है, जिससे जीवन-धारा का प्रवाह कुंठित हो गया है। सर्वत्र मूल्यों में विघटन आ रहा है। स्वार्थ, बेईमानी, घूसखोरी, नौकरशाही प्रवृत्ति, अकर्मण्यता, जातिगत भेद आदि से समाज ग्रस्त है। नयी कविता के कवियों को ये परिस्थितियां प्रभावित करती हैं और उद्वेलित करती हैं। यह स्पष्टतया कहा जा सकता है कि आज जिन परिस्थितियों ने समाज को झकझोर कर रख दिया है, मूल्यों में विघटन की स्थिति दी है, वे स्थितियां भारत के परिप्रेक्ष्य में ही उत्पन्न हुई हैं। इसलिए मानव-प्रतिष्ठा का प्रश्न विश्वव्यापी चेतना-दृष्टि के आधार पर भारतीय परिवेश एवं समस्याओं के अनुसार ही हल करना चाहिए। भारतीय समाज की अव्यवस्था ने ही आज विघटनशीलता की स्थिति ला दी है, सर्वत्र जो ये हाहाकार और अराजकता का कारण आज की छिन्न-प्रतिष्ठित उलझी हुई परिस्थितियां ही हैं।

---

१ "साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य" — डा० रघुवंश, नयी कविता का सामाजिक परिवेश

ठोस मानवीयता की उपलब्धि आज के युग की समस्या

मानव-प्रतिष्ठा अथवा नये मानव की बात करना आज के युग-बोध के लिए अनिवार्य ही नहीं, बल्कि उसकी मांग भी है। जब मनुष्य तेज़ी से एक-दूसरे के निकट आता जाता है तो एक सीमा के बाद वही निकटता ख़तरा भी साबित हो सकती है। इसलिए 'भावी युग के मानव की विविध समस्याओं एवं सम्भावनाओं की चिन्ता करना सर्वव्यापी नैतिक संकट का परिणाम है। इस संकट के मूल में पारस्परिक अनास्था और भय निहित है, मनुष्य के भीतर की बर्बरता कब बाह्यारोपित नैतिक बन्धनों को तोड़कर महानाश की स्थिति उत्पन्न कर दे, इसकी आशंका छिपी है...'[1] भारतीय परिप्रेक्ष्य में डा० जगदीश गुप्त द्वारा परिलक्षित कारलिस लेमाण्ट की 'मानवतावाद' के विषय में दी गई विचारधारा के द्वारा 'मानवतावाद' के प्रश्न को नहीं हल किया जा सकता। कारलिस लेमाण्ट के चारों सूत्रों को नयी कविता के सभी कवियों में नहीं देखा जा सकता। और यदि 'नये मानव' की प्रतिष्ठा निरे पाश्चात्य ढंग के चिन्तन पर आधारित होकर करें तो वह भी उचित नहीं है, क्योंकि यदि विचार और शिल्प दोनों ही विदेश से आयात कर लिए जायेंगे तो नये कवियों का अपने देश के युग-बोध का दायित्व कहां तक पूरा हो सकेगा, साथ-ही-साथ नये कवियों को 'नये मानव' की इस प्रतिष्ठा के लिए क्या संघर्ष करना होगा ?

इसलिए आज भारत में 'मानवप्रतिष्ठा' की समस्या को मात्र देशकाल की सीमा का अतिक्रमण कर सामयिकता और सर्वदेशीय व्यापकता के आधार पर हल नहीं किया जा सकता, बल्कि इन दोनों की सापेक्षता में भारतीय सन्दर्भ में हल करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। औद्योगीकरण, प्राविधिक सभ्यता, वैज्ञानिक आविष्कार तथा महानगरीय सभ्यता से उद्भूत जो खतरे परिवेश में आये हैं, उनमें मानव का क्षरण हुआ, मानव-मन में टूट-फूट हुई है। अतः इन स्थितियों से बचा जा सकता है। यान्त्रिकता न मानव पर हावी हो और न मनुष्य

---

१ 'नयी कविता : स्वरूप और समस्यायें' — डा० जगदीश गुप्त
'नयी कविता: नये मनुष्य की प्रतिष्ठा', पृ० ३४ ।

मनुष्य पर --' इस सब का उपाय एक ही है -- मनुष्य, प्रकृति और यंत्र के बीच उचित अनुपात विकसित करना । मनुष्य का मनुष्य, प्रकृति और यंत्र से सही अनुपात में सम्बन्ध हो, यही काम्य है । मनुष्य न तो यंत्र से शासित हो और न मनुष्य से ही । नये समाज और संसार की यही केन्द्रीय समस्या है ।'[1]

अब मैं कार्लिस लेमाण्ट के उन दसों सूत्रों को भारतीय सन्दर्भ में परीक्षा करना चाहूंगी । प्रत्येक देश की अपनी विशेष प्रकृति होती है, व उस प्रकृति के अनुसार वह अपनी संस्कृति,सभ्यता एवं धर्म का निर्माण करता है । सभी देशों की प्रकृति को एक ही दृष्टि से नहीं समझा जा सकता है । आज भारत में जो समस्यायें हैं, हो सकता है, दूसरे देश में उस तरह की समस्यायें न हों, या कुछ समस्यायें समान भी हो सकती हैं । अतः भारतीय परिप्रेक्ष्य में 'मानवतावाद' के सिद्धान्त कहां तक घटित होते हैं, यह देखना चाहिए ।

प्रथम सिद्धान्त के अनुसार मानवतावाद का विश्वास प्रकृतिवादी चिन्तन 'नेचुरलिस्टिक मेटाफिजिक्स', में जिसके अनुसार समस्त अप्राकृतिक तत्व भ्रमात्मक हैं तथा प्रकृति एक निरन्तर परिवर्तनशील भौतिक सत्ता है, जो चेतनाश्रित नहीं है ।'

भारतीय परिवेश में प्रकृतिवादी चिन्तन से नेचुरलिस्टकमेटाफिजिक्स में विश्वास भी कर लिया जाये, परन्तु यह तो कदापि मान्य नहीं हो सकता कि समस्त अतिप्राकृतिक वस्तुएं भ्रमात्मक हैं । विज्ञान स्वयं प्राकृत नहीं रह गया । क्या विज्ञान भ्रमात्मक है । हम एक विजय के बाद दूसरी विजय करते जा रहे हैं, क्या वे विजय भ्रमात्मक कही जा सकती हैं । आज हम यह जानते हुए कि हम पृथ्वी-लोक के प्राणी हैं,फिर भी हम चन्द्रलोक,मंगललोक आदि अन्य ग्रहों पर पहुंचने की कोशिश कर रहे हैं क्या वे हम कोशिशें भ्रमात्मक कहीं जा सकती है । यदि इनको भी छोड़ दें तो यह तो कदापि नहीं स्वीकार किया जा सकता है कि 'प्रकृति एक निरन्तर परिवर्तनशील भौतिक सत्ता है, जो चेतनाश्रित नहीं है ।' यह तो सर्वमान्य है कि प्रकृति एक निरन्तर परिवर्तनशील भौतिक सत्ता है,

---

१ 'हिन्दी साहित्य की अद्यतन प्रवृत्तियाँ' (तीन व्याख्यान)--डा०रामस्वरूप चतुर्वेदी पृ०४ ।

लेकिन वह चेतना भी है । बिना चेतना के किस प्रकार कार्य संचालित होता है । कार्य-कारण में विक्षेप भी दीखता है, वह किस चेतनाहीनता से ? और यदि कोई परम शक्ति समस्त प्रकृति को संचालित नहीं करती तो प्रकृति में निरन्तर परिवर्तनशीलता कहां से आती है । भारतीय दर्शन, धर्म परम चेतना को स्वीकार करता है । प्रकृति को उसी `परम` के आधीन मानता है । इसलिए चेतनाश्रित न होने की बात मानवतावादी कैसे स्वीकार कर सकते हैं । भारतीय अध्यात्म में परम सत्ता जो ब्रह्म है, समस्त चेतना को प्रवाहित करने वाला है । भौतिक सत्ता भी उसी परब्रह्म से संचालित होती है । कम-से-कम जन-जीवन की आस्था का यही रूप है । चार बौद्धिकों से भारतीय मनीषा का रूप अस्तव्यस्त नहीं हो सकता । आधुनिक काल में गांधी का दर्शन सत्यवादी रहा है, अरविंद का अध्यात्मवादी ।

दूसरी विचारणा के अन्तिम विचार कि `मनुष्य प्रकृति के विकासक्रम का एक अंश है और उसके व्यक्तित्व में जड़ चेतन अभिन्न रूप से संश्लिष्ट है । फलतः मृत्यु के अनन्तर उसकी कोई सत्ता शेष नहीं रह जाती ।` यह बात तो स्वीकार की जा सकती है कि मनुष्य प्रकृति के विकासक्रम का एक अंश है और उसके व्यक्तित्व में जड़-चेतन अभिन्न रूप से संश्लिष्ट है । लेकिन भारतीय-चिन्तन कब यह कदापि स्वीकार नहीं कर सकता कि व्यक्ति की मृत्यु के अनन्तर कोई सत्ता शेष नहीं रह जाती । यदि ऐसा ही होता है तो श्राद्ध, तर्पण तथा अनेकों कर्मकाण्ड क्यों किये जाते हैं । भाग्यवाद, नियतिवाद क्या है? हम क्यों अच्छे-बुरे काम करते हैं । धर्म उपदेश से इहलोक-परलोक बनाने की बात क्यों करते हैं ? आत्मा अमर है ऐसा क्यों कहते हैं । आवागमन के चक्कर में क्यों विश्वास करते हैं । अब तो पश्चिमी देशों में भी पुनर्जन्म की घटनायें होने लगी हैं । उन लोगों का भी विश्वास भी पुनर्जन्म में होने लगा है । `परा मनोविज्ञान` द्वारा ऐसी पुनर्जन्म की घटनाओं का परीक्षण भी किया जाता है । इसलिए यह स्वीकार किया जा सकता है कि मृत्यु के अनन्तर भी मनुष्य की सत्ता शेष रहती है ।

तीसरी विचारणा के `मानवतावाद का विश्वास मनुष्य और उसमें सन्निहित शक्ति के में है, जो अपनी समस्याओं के समाधान में सक्षम,

अन्तर्दृष्टि और तर्क और वैज्ञानिक पद्धति के सहारे स्वत: सक्षम दिखाई देता है ।' आज की विषम समस्याओं का समाधान मनुष्य और उसमें सन्निहित शक्ति से नहीं हो सकता । आज तो समस्याओं को हल करने के लिए बड़े-बड़े संघ बनाये जाते हैं, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा समस्यायें सुलझाने का प्रयास किया जाता है । आज दो देशों में लड़ाई छिड़ती है, तो क्या मनुष्य तर्क और अन्तर्दृष्टि से युद्धों को शान्त कर लेता है । अस्त्र-शस्त्र, तर्क और अन्तर्दृष्टि से बड़े हैं । इसलिए मानवतावाद यदि मनुष्य में विश्वास करती है तो उससे आज की समस्यायें नहीं हल हो जातीं । आज तो राजनैतिक शक्ति से समस्यायें हल की जाती हैं । चाहे हम 'राष्ट्रसंघ' द्वारा समस्यायें हल करें अथवा शस्त्रों के द्वारा, लेकिन साहस,तर्क और अन्तर्दृष्टि को कोई सफलता नहीं दी जाती ।

चौथी विचारणा को पूरी तरह से स्वीकार किया जा सकता है । वह है मानवतावाद, नियतिवाद,भाग्यवाद के विरुद्ध मानव के कर्म और चिन्तन-स्वातन्त्र्य में आस्था रखता है । अतीत की सीमाओं एवं बंधनों से परे वह अपनी नियति का स्वयं निर्माता है । भारतवर्ष में धीरे-धीरे अब नियतिवाद,भाग्यवाद के विरुद्ध आवाज उठाई जा रही है । कर्म में विश्वास तथा अपने भाग्य को स्वयं बनाने का प्रयास हो रहा है । अकर्मण्यता के विरुद्ध आवाज उठने लगी है ।

पांचवीं,छठीं विचारणा भी स्वीकार की जा सकती है । सातवीं विचारणा 'मानवतावाद व्यापकतम सौन्दर्य-बोध का पक्षपाती है,ऐसा जिसमें समस्त प्रकृति का वैभव समाहित हो जाय तथा जिससे उत्पन्न सौन्दर्यानुभूति मनुष्य जीवन के समग्र यथार्थ का अंग बन जाये ।' आज मनुष्य का चिन्तनक्षेत्र बहुत अधिक बढ़ गया है, उसकी दृष्टि का असीमित विस्तार हो गया है ।संकीर्णता का स्थान उदारता ने ले लिया है । प्रकृति में सब कुछ न सौन्दर्यमय ही है और न सब कुछ कुरूप ही । दृष्टि का विस्तार बढ़ जाने से आज किसी भी वस्तु को देखने का,परीक्षण करने का ढंग बदल गया है । पहले यह धारणा थी कि बाह्य रूपाकार में जो सुन्दर है, प्रभावित करने वाला है, वही सुन्दर कहा जा सकता है, ऐसा अब

मान्य नहीं । किसी वस्तु की कोई भंगिमा सुन्दर हो सकती है, किसी की कोई और । इसलिए मानवतावाद व्यापकतम सौन्दर्य-बोध का पक्षपाती है । जिसमें प्रकृति का सम्पूर्ण वैभव किसी-न-किसी रूप में अनिवार्यतः समाहित हो जाये, तथा यही सौन्दर्यानुभूति मनुष्य जीवन के समग्र यथार्थ का अंग बन जाय ।

आठवां विचार भी ज्यों-का-त्यों भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्वीकार किया जा सकता है । सामाजिक योजना के द्वारा विकासशील राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रगति, प्रजातांत्रिक पद्धति तथा शान्ति की प्रतिष्ठा का कार्य हर देश में सराहनीय माना जा सकता है । इसी प्रकार नवां और दसवां विचारणा भी उसी रूप में स्वीकार की जा सकती है ।

देखनाह यही है कि 'मानवतावाद' के विषय में निर्धारित विश्वास कब रूपायित होते बनते हैं और यदि होते हैं तो 'तर्क', 'अंतर्दृष्टि' का कितना योगदान रहता है ।

-0-

(ख) स्वातन्त्र्योत्तर भारत के समाज-मनस की पीड़ा

विश्व-युद्धों की जो तीव्र प्रतिक्रिया समस्त विश्व में हुई, उसने प्रत्येक देश में सुरक्षा और प्रतिद्वन्द्विता की भावना जगायी । भारत ने भी स्वतन्त्र होने के लिए संघर्ष करना अनिवार्य समझा और इस दिशा में यौरप से प्रेरणा भी मिली । देश के आजाद होने से पूर्व ही भारतीय समाज मनस में एक विचित्र प्रकार के काल्पनिक सुख-वैभव एवं स्वतन्त्रता की भावना घर कर गई थी । जो देश शताब्दियों से गुलाम रहा हो, उसकी जनता के तन के साथ-साथ मन तथा संस्कार, सभी दासता और परतन्त्रता के बन्धन में जकड़ जाते हैं । स्वातन्त्र्य, स्वाभिमान और अधिकार की बात तो दूर है, उनमें व्यक्तित्वहीनता का आ जाना भी बहुत स्वाभाविक है । जब विश्व-युद्धों के संकट को समस्त विश्व ने महानाश के आगे रूप में देखा, तो सभी देशों में अपने देश को सुरक्षित रखने की भावना जागी । चूंकि भारत पर अंग्रेजों का शासन था, इसलिए भारतीयों ने देश को मुक्त करा देश की बागडोर स्वयं सम्हालने का विचार किया । सभी देशवासियों ने इस विचारधारा का खुले हृदय से स्वागत किया । गांधी जी, नेहरू जी, पटेल, नेता जी आदि महापुरुषों के साथ-साथ देश की जनता ने स्वतन्त्रता संग्राम में पूरा जोश दिखाया, क्योंकि उनके आगे गांधीवादी आदर्श समाज-व्यवस्था की जो रूपरेखा रखी गई वह भारतीयों के लिए नई आशा, और नये जीवन का सन्देश ही कही जा सकती थी । हालांकि देशवासी शताब्दियों से दासता के बन्धन में जकड़े होने के कारण स्वतन्त्र, विवेकपूर्ण चिन्तन की शक्ति से हीन थे । उन्होंने स्वतन्त्रता के बाद भारत की बागडोर सम्हालने के कार्य को बहुत ही सरल तथा साधारण समझा । स्वतन्त्रता संग्राम में अनोखे जोश और भावावेश के साथ कूद पड़े । स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए जनता लालायित थी, लेकिन स्वतन्त्रता का अर्थ और उसके गाम्भीर्य को किसी ने भी समझने का प्रयत्न नहीं किया । परिणाम आज सामने है ।

स्वतन्त्रता के बाद मूल्यशून्यता

देश जिस अन्तःस्थिति से गुजर रहा है । उसके लिए सभी नैतिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परम्पराओं एवं जीवन-मूल्य अर्जीण उसके

लगे हैं । परिवर्तन की इस आंधी में सब कुछ मिलकर एक रूप हो गया है । मर्यादा-विहीनता की स्थिति में संस्कृति-सभ्यता पर पैशाचिकता की छाप लग रही है-- 'संस्कृति का यह खाली अनधिकृत प्रदेश है-- नो-मेन्स लैंड है-- जहां पहुंचकर आदमी फिर अर्द्ध सभ्य हो गया है । पूर्ववर्ती मूल्य सूखे,जीर्ण छिलकों की तरह झर कर गिर गये हैं और विज्ञानकालीन नये परिधानों का आभास भी नहीं है । कपास में फूल आने में ही अभी देर है । आदमी आत्मा से इस समय एकदम नंगा है । उसका पिछला सभी कुछ खो गया है, केवल पूर्व स्मृति के मटमैली कुहासे में ही आज वह भटक रहा है ।'[1] समाज भयानक संक्रमण की स्थिति में गुजर रहा है । एक ओर असन्तोष, अनास्था,कटुता,अविश्वास,भ्रान्तियां और अन्धपरता के प्रति सशक्त विद्रोह का स्वर है तो दूसरी ओर समाज-व्यापी कुंठा,अवसाद और निराशा की अभिव्यक्ति भी है । इन दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों में डूबा समाज आज दिशाहीनता की ओर जा रहा है । उसके आगे गन्तव्य की दिशा अनिश्चित है । नया मार्ग अभी खोजा नहीं जा सका है । पुराने मूल्य,पुरानी परम्परायें विकलांगता की स्थिति में आ चुकी हैं । इन्हीं सामाजिक परिस्थितियों ने नये कवियों को संवेदित किया है । समाज में फैली हुई बुराइयों,अकर्मण्यता,प्रपंच,व्यक्तिगत स्वार्थपरता और मारो खाओ की भावना ने सर्वत्र हाहाकार और अराजकता का वातावरण उपस्थित कर दिया है ।ऐसे वातावरण में आज व्यक्ति संगति नहीं बैठा पा रहा है, मनुष्य पशुता की ओर बढ़ रहा है और यही पशुत्व की स्थिति ने समाज-मनस को पीड़ा और अवसाद से भर दिया है ।

व्यक्ति की नगण्यता

इस समाज-व्यवस्था के आगे मानव-व्यक्तित्व इतना नगण्य हो गया है कि वह स्वयं अपनी स्थिति के प्रति सशंकित हो उठा है ।

---

१ 'शिलापंख चमकीले' -- गिरिजाकुमार माथुर , 'भूमिका',पृ० ६-७

समाज में फैले भ्रष्टाचार और अमानवीय तत्वों ने उसे भविष्य के प्रति अनास्थावान् बना दिया है और वह जान गया है कि उसके होने न होने से कुछ भी नहीं होने वाला है, क्योंकि आज की समाज-व्यवस्था में उच्च पदासीनों का ही पूछ है, जो नेता है, अफसर है, उन्हीं के न होने से कुछ हो सकता है, शेष व्यक्ति निरर्थक, मूल्यहीन, नगण्य है । श्रीकान्त की कविता `माया दर्पण` में कवि समाज-मनुज की अकिंचिनता से उद्भूत पीड़ा को जिस तरह सामने रख देते हैं, वह आज के समाज की बहुत बड़ी विडम्बना कही जा सकती है । सारी व्यवस्था जनतंत्र के द्वारा नहीं संचालित है, बल्कि कुछ विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा उसका संचालन होता है[1] । सारा समाज वर्ग-विशेष तक सीमित हो गया है । समाज में व्यक्ति झूठे मोह, मानदम्भ तथा पदों के लिए नीच-से-नीच कर्म करने को तत्पर है । मनुष्यता का मूल्यांकन भव्य कोठियों, ठाट-बाट, नौकर-चाकर तथा मोटरगाड़ियों से होता है । यहां तक कि बुद्धि और प्रतिभा भी बेची और खरीदी जाने लगी है । कैसी दुर्गन्ध सामाजिक व्यवस्था है । सब कुछ जानते-बूझते हुए भी व्यक्ति अपने कंधे पर सब कुछ चुपचाप असहाय होकर ढोता जा रहा है, क्योंकि वह निरुपाय है और अकेला है, उसमें इतना साहस नहीं कि वह सब का प्रतिकार कर उठे । सारी जड़ व्यवस्था को हिला कर रख दे, वह तो सिर्फ हिसाब ही लगाता रहता है कि हमारे आगे रोयें सब

---

१ -- हरीरान्त के पहले मैं सब कुछ निचोड़ कर उसको दे
जाऊंगा जो भी मुझे मिलेगा । मैं यह अच्छी तरह जानता हूं
किसी के न होने से कुछ भी नहीं होता, मेरे न होने से कुछ भी
नहीं बिगड़ेगा । मेरे पास कुर्सी भी नहीं जो खाली हो । मनुष्य
वकील हो, नेता हो, सन्त हो, सवाली हो-- किसी के न होने से
कुछ भी नहीं होता ।

—`मायादर्पण` -- श्रीकान्त वर्मा, `मायादर्पण`, पृ०७० ।

बार और एक बार रोये हजार बार तो कौन सा दुःख ज़्यादा है ?[1] `

संस्कारहीनता

आज समाज में सबसे अधिक कुछ की बीमारी है तो वह है आधुनिकता की । आधुनिकता के नाम पर हमने अपने चारों ओर विदेशी वस्तुओं और फैशन का दायरा बना लिया है । चाय-काफी, होटल, क्लब, कैक्टस, बीटल, हिप्पी और न जाने क्या-क्या हम अपनाते जा रहे हैं, इनके बहाव में हम संगति नहीं बैठा पा रहे हैं, ऊपर से खुश और समृद्ध दिखाई देते हैं । लेकिन अन्दर ही अन्दर खोखले और संस्कारहीन होते जा रहे हैं । आधुनिकता के नाम पर हम नकल की ओर बढ़ रहे हैं । कृत्रिमता के चलते पहले हम अपने को ही पहचानने में भूल करने लगे हैं । चारों ओर के मिथ्याडम्बर, बेलौस, बनावटी वातावरण समाज को ऊब और उकताहट से भर देता है । अतः व्यक्ति इन सबसे निकल भागना चाहता और वह दूसरों के ढंग से जीना भी नहीं चाहता । खुशामद और दिखावट की दुनिया से निकल जाना चाहता है, क्योंकि वह अधिक दिनों तक अपने को धोखे में नहीं रखना चाहता ।[2]

---

१ ` ..... मैं दुःखी अपाहिज अकेला गरीब
कब से हिसाब लगा रहा हूं
कि हजार बार रोयें एक बार
तो कौन सा दुःख ज़्यादा है ? `
-- `नंगे पैर` — विपिन कुमार अग्रवाल, `हिसाब`, पृ०३६ ।

२ ` हे ईश्वर ! सहा नहीं जाता है मुझसे अब — सड़क से
औरों की दुनिया से, जीने का ढंग — गुज़र जाऊं ।

....
सही नहीं जाती है मुझसे
कानाफूसी, गुंडा .....
हे ईश्वर मुझे महापात्रों से होंठ-होंठ
दो इतनी बेचैनी--
मैं इसी तरह निर्जन

`मायादर्पण` -- श्रीकान्त
`[illegible]`, पृ०८१-८२ ।

असन्तुलन

एक ओर युद्धों की भयंकरता से समाज मनस-भयभीत एवं दु:खित हो रहा था, दूसरी ओर स्वतन्त्रता के बाद समाज-व्यवस्था ने जो रवैया अपनाया, उससे सारा समाज घोर निराशा में डूब गया । जब देश पराधीन था, तब आर्थिक कठिनाइयां और अमानवीय अत्याचार से देश त्रस्त था । लेकिन स्वतन्त्रता के बाद ये समस्यायें और तत्व दूर होने के स्थान पर और उग्रता के साथ बढ़े । औद्योगीकरण की कमी के कारण तथा दिन-प्रति-दिन बढ़ती जनसंख्या के आगे आर्थिक समस्या और भी बढ़ती गई, बेरोजगारी की यातना से पीड़ित समाज-मनस (मध्यवर्ग विशेष रूप से) को दोहरी भूमिका निभानी पड़ी । एक ओर दिखावा,ठाट-बाट,समाज में सम्मानित बनने के सफल-असफल प्रयत्नों से युक्त नुमायशी भूमिका, दूसरी ओर पारिवारिकहीन आर्थिक स्थिति से समझौता करने की भूमिका में पिसता,टूटता समाज मनस । परिणामत: नयी कविता में अभिव्यक्त व्यक्तित्व में प्राय: असन्तुलन भी दिखाई पड़ जाता है । यही असन्तुलन नयी कविता में अविश्वास,सन्देह,अनिश्चय तथा उदासी जैसी स्थितियों को जन्म देता है । एक ओर युग-जीवन की गहरी उलझन के बीच आधुनिक जीवन की कुंठा,विघटन,मर्यादाहीनता,नग्नता एवं ढोंग आदि कवि को उद्वेलित करते हैं, तो दूसरी ओर इन सब परिस्थितियों से सामन्जस्य न बैठा पाने की स्थिति में कविता में कवि की भावनाओं में आत्मकारापन भी अवश्य दिखाई दे जाता है ।

चारित्रिक असंगतियां

स्वतन्त्रता से पूर्व जिस मन:स्थिति में देश जी रहा था, उसमें किसी भी प्रकार की क्रान्तिकारी चेतना की गुंजाइश नहीं थी, साथ ही-साथ एक प्रकार से परिस्थितियों से तादात्म्य स्थापित करने की भावना जन-जीवन में व्याप्त थी, लेकिन स्वतन्त्रता के बाद सारी पूर्व समाज-व्यवस्था मूल रूप से हिल उठी, कठिनाई तो उस समय उग्र रूप से सामने आई जब हमें स्वयं अपना,अपने देश का संचालन करना पड़ा । युग-युग से जब दूसरों के आदेश पर, दूसरों की इच्छा पर चलने के अभ्यस्त रहे हैं,अब जब सारा बोझ अपने कन्धे पर आ पड़ा तो अवश्य विचलन की स्थिति उत्पन्न

होगी ही । एक ओर दिशाहीनता है तो दूसरी ओर देश का इतना बड़ा जिम्मेदारी वहन करने के लिए चरित्र-बल की कमी तथा पर्याप्त चिन्तन, विवेकशीलता की भी कमी से आज का समाज-मनस पीड़ित है । चारों ओर चमक-दमक है, आकर्षण है, दिखावा है, ठाट-बाट है । चाहे उसके अन्तर्मन में झांकने पर सब कुछ खोखला, चमक दमक से हीन, विकर्षण पैदा करने वाला ही हो । संक्रान्तिकाल के इस सम्भ्रम में व्यक्ति और उसका मन उसी प्रकार भटक गया है, जिस प्रकार विवेकहीन भावुक शिशु मेले में हर वस्तु के प्रति आकर्षित होता है । बनावटी चमक-दमक को ही वह वास्तविक चमक-दमक समझता है[1] ।

आज के स्वातन्त्र्योत्तर समाज-मनस की सबसे बड़ी पीड़ा यही है कि उसे आज हर संगत-असंगत परिस्थितियों से सामन्जस्य बैठाने के लिए उसे विवश होना पड़ता है । जहां किसी भी बात के विरुद्ध आवाज उठाई, वहां उसे विद्रोही करार कर दिया जाता है । कहीं-कहीं पर तो आज की नयी कविता में असंगतियों से भरी दुनियां में चल रहे षड्यन्त्र के प्रति कवि व्यग्रता से उत्पन्न क्षोभ को व्यक्त करता है । अपने चारों ओर हो रहे मानवीय-अमानवीय, उचित-अनुचित किसी भी प्रकार के व्यवहार से वह तब तक सहमत नहीं होना चाहता, जब तक उसकी आत्मा उसे उचित-अनुचित नहीं समझती । वह साफ कह देता है कि 'मुझसे नहीं होगा, जो मुझसे, नहीं हुआ वह मेरा, संसार नहीं[2] ।' लेकिन इस प्रकार का साहस

---

१ 'मैं इस दुनिया में वैसा ही कुछ हूं
जैसे: मेले में छोटा बच्चा हूं ।
....
यों : ऐसा हुआ कि : नकली फूलों को
मेले में जाकर भूले बच्चे ने
असली से भी बढ़कर जाना है,
यों : हुआ कि : मैल भरे गुब्बारे को
सपनों का, परियों का घर माना है ।
--'नयी कविता' अंक-२, सं०डा०जगदीश गुप्त
डा० रामस्वरूपचतुर्वेदी,
'मेले में' -- अजितकुमार, पृ०५५

२- कुछ लोग मूर्तियां बनाकर
फिर
बेचेंगे क्रान्ति को (अथवा
षड्यन्त्र को)
कुछ और लोग
सारा जनम
कसमें खायेंगे
लोकतन्त्र की ।
मुझसे नहीं होगा ।
जो मुझसे
नहीं हुआ वह मेरा
संसार नहीं ।'
'मायादर्पण' --श्रीकान्त वर्मा
'समाधि लेख', पृ०१०५ ।

लेकिन इस प्रकार का साहस सर्वत्र नयी कविता में नहीं दिखाई देता है । अभी इस तरह के दुस्साहस एवं सपाट बयानी के लिए नयी कविता के कवियों में पर्याप्त आत्म-बल का होना आवश्यक है । क्योंकि आत्मबल की कमी के कारण हम ही हम आज अपने ऊपर से हर परिस्थिति को गुजर जाने देते हैं । मुनिरूप चन्द्र की `अर्धविराम` की एक कविता `अहिंसक जो हैं` में अकर्मण्यता की ओर गहरा व्यंग्य किया गया है । वास्तव में हम हर तरह से अपनी जिन्दगी को जी लेते हैं, चाहे अकाल पीड़ित होकर जीना पड़े, चाहे बाढ़ पीड़ित होकर जीना पड़े, चाहे भूकम्प आदि अनहोनी घटनाओं के द्वारा पेट पालने का रास्ता निकल जाये अथवा धर्म,पुण्य या मित्रों की सहायता से ही पेट पालने का साधन निकल सके, पर हम इन सब के प्रति कोई ठोस एवं क्रान्तिकारी कदम नहीं उठाना चाहते,क्योंकि हम ऐसी परिस्थितियों के आदी हो चुके हैं । इन्हीं सब सामाजिक व्यवस्था से आज समाज-मनस पीड़ित है । `अहिंसक जो हैं` के शब्दों में कवि के मन में हो रही हलचल का उद्गार कविता में अभिव्यक्त हुआ है । वास्तव में हम कुछ कर गुजरना नहीं चाहते, बल्कि ऐसी स्थितियों के प्रकट होने की राह देखते हैं,क्योंकि हम हिंसक नहीं हैं[1] ।

---

१. `उम्र भर

हम अपने कंधों पर
एक बेहोश शरीर ढोते रहे हैं
और अपना पेट पालते आ रहे हैं
कभी अकाल के नाम पर
कभी बाढ़ के नाम पर
कभी भूकम्प के नाम पर
धर्म और पुण्य के नाम पर
मित्रों की सहायता के नाम पर
प्राणरक्षा के नाम पर
आत्मनिर्भर होकर कब कैसे बचा सके हैं हम ?
अहिंसक जो हैं ।`

`अर्धविराम` — मुनिरूपचन्द्र, `अहिंसक जो हैं`, पृ०१६

स्वतन्त्रता के पश्चात् सर्वत्र सर्वाधिक असन्तोष दिखाई देता है, जिसका कारण तेजी से हो रहे परिवर्तन को ही मानना चाहिए । कोई भी मान्यतायें, मूल्य, आचरण, नियम अधिक समय तक स्थिर नहीं रह पा रहे हैं । सर्वत्र समस्यायें ही समस्यायें हैं । एक बात और है कि ये समस्यायें व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं आज के व्यक्ति को आन्दोलित करती हैं, बल्कि परिवार, समाज, देश, राष्ट्र की समस्यायें आज की कविता के विषय हैं । परिस्थितियों के साथ संगति न बैठा पाने की विवशता में कवि-मन अवसाद से घिर उठता है । दिन के प्रकाश में तो वह अपने को भुलावा दे लेता है, लेकिन सन्ध्या होते-होते द्वार की खटखटाहट में उसे 'अवसाद' के आने का पूरा विश्वास हो जाता है और वास्तव में द्वार खोलने पर 'अवसाद चुपचाप शीश झुकाये कमरे में प्रविष्ट हो जाता है । आज के समाज-मानस की कैसी यन्त्रणा है कि वह सब कुछ न झेल पाने की असमर्थता वश अवसाद से भर उठता है[1] ।

बेरोजगारी

जिन परिस्थितियों, वातावरण एवं प्रेरणा के वशीभूत होकर आज नयी कविता लिखी जा रही है, उसके पीछे स्वतन्त्रता के पश्चात् अनावश्यकरूप से नये-नये रूप में बढ़ती हुई घटनायें एवं जनसंख्या को भी मानना होगा । जिस तेजी से आज जनसंख्या में वृद्धि हो रही है, उस तीव्रता से स्वतन्त्र भारत में न तो औद्योगीकरण की ही वृद्धि की जा रही है और न ही इतने अधिक लोगों के लिए सुख-सुविधा से रहने-खाने एवं शिक्षा की व्यवस्था हो सकती है ।

---

१ 'रोज शाम कोई द्वार खटखटाता है
द्वार खोलता हूं, देखता हूं, अवसाद
शीश झुकाए हुए
कमरे में चुपचाप चला आता है।'
--'माया-दर्पण'-- श्रीकान्त वर्मा
'कमरे का साथी', पृ०१२

मात्र सरकार इतनी समस्याओं को हल भी नहीं कर सकती । पिछड़ी जातियों, जनजातियों को समान स्तर प्रदान करने का प्रयास भी हो रहा है, शिक्षा में भी आवश्यक छूट दी जा रही है, लेकिन क्या शिक्षा-दीक्षा के बाद आजीविका का समान वितरण हो सका है-- नहीं । आज भूखी पीढ़ी, नंगी पीढ़ी, बीटल , हिप्पी जैसे अनुकरण क्यों कर रहे हैं, क्यों सब झगड़ा कर बीटल और हिप्पी बनना चाहते हैं ? कारण स्पष्ट है कि आज हमारे देश में जिस तरह के शिक्षित तैयार किये जा रहे हैं, वे सभी कुर्सी की तरफ देखते हैं । सभी एकदम से कोठी, नौकर, कार आदि के स्वप्न देखने लगते हैं । जब कि वास्तविकता यह नहीं मानी जा सकती । सभी कैसे उच्च पदासीन हो सकते हैं ? यदि सभी उच्च पदासीन होना चाहते हैं तो स्वयं कुछ करें, कुछ निर्माण करें, कुछ आविष्कार करें । खाली सरकार को, देश को गाली देते रहने से कुछ नहीं हो सकता । समस्यायें हर युग में अपने अनुरूप होती आई हैं और होती रहेंगी, लेकिन उनको लेकर रोते रहने से समस्यायें हल नहीं हो सकती हैं, न कि परिस्थितियों एवं युग की जटिल वास्तविकता एवं संक्रमण तथा संघर्ष को उद्घाटित कर देने से ही समस्या का निदान मिल सकता है । जब केदारनाथ सिंह यह स्वीकार करते हैं कि 'एक लकीर पृथ्वी के सारे अक्षांशों से होती हुई जहां और मण्डल के पास ही जाती है, वहां मैं खड़ा हूं[1] ।' इससे युग-संघर्ष की जटिलता तो विस्मय हो उठती है, लेकिन मात्र विस्मय उल्लेख से हम कोई केन्द्रीय दृष्टि नहीं प्रदान कर सकते हैं ।

भीड़ मनोवृत्ति पर पार्टियों का शासन

स्वातन्त्र्योत्तर समाज-मानस की पीड़ा का एक कारण यह भी है कि आज हर काम भीड़ के रूप में होता है, भीड़ का अंधानुकरण

---

१ 'एक लकीर
पृथ्वी के सारे अक्षांशों से होती हुई ... ।'
--'अभी बिल्कुल अभी'-- केदारनाथ सिंह, पृ० [illegible]

किसी विवेकपूर्ण कदम के लिए मार्ग नहीं मिल सकता । हम बैठकर क्रान्ति की चर्चा तो खूब करते हैं, लेकिन स्वतन्त्ररूप से उसके लिए बढ़ते नहीं हैं । बढ़ता है तो मोह का अयोग्य निर्वाचित मूर्ख नेता, जिसके पिछलग्गुए उसे समय-समय पर उकसाते रहते हैं । `राजनीति` तो सबसे अधिक बेकार की व्यवस्था है । `लोकतंत्र` मात्र शब्द बनकर रह गया है । कहां लोकतंत्र अर्थात् समस्त व्यक्ति-इकाई का समाज देश, कहां नौकरशाहियों का समाज ? कितना बड़ा अन्तर है आज की लोकतंत्रीय शासन-व्यवस्था के अर्थ में । जब रघुवीर सहाय की पीड़ा `बीस साल धोखा दिया, वहीं मुझे कहा जायगा विश्वास करने को` में व्यक्त होती है तो आज की लोकतंत्रीय व्यवस्था को अधिक सरलता से समझा जा सकता है । हर जगह एक बुराई को मिटाने के लिए दूसरी बुराई बढ़ जाती आ रही है । देश दलों में, पार्टियों में बंटा हुआ है । आज व्यक्ति की समस्यायें पार्टी एवं दलों के द्वारा सुनी और समझी जाती है । योग्यता-अयोग्यता की परीक्षा सिफारिश से होता है । देश का नेतृत्व बूढ़े-से-बूढ़ा व्यक्ति कर रहा है, चाहे उसकी बुद्धि काम दे अथवा न दे, साम-दाम-दण्ड-भेद से उसे कुर्सी तो मिल ही जायगी और उसके पदच्युत होते-होते कोई दूसरा `कम बूढ़ा` उपरोक्त नीति से अपना स्थान सुरक्षित कर लेता है[1] ।

युवा असन्तोष

आज के स्वातन्त्र्योत्तर समाज के युवा मन की सबसे बड़ी समस्या और पीड़ा का कारण अपने परिवेश से, अपने देश से सन्तुष्ट न होना ही है । एक ओर हम प्रगति कर रहे हैं, जाति-पांति के बन्धनों को ढीला

१...`जितना बड़ा दल होगा उतना ही खायेगा देश को
सबसे बड़े नेता के बूढ़े हो जाते ही
उग लेगा पीछे एक कम बूढ़ा
जाने किस वक्त वह मर जाये जो ज्यादा बूढ़ा..।`
--`आत्महत्या के विरुद्ध` -- रघुवीर सहाय
`एक अधेड़ भारतीय आत्मा`, [illegible] ।

कर रहे हैं, सब को प्रगति के समान अवसर दे रहे हैं, वहीं दूसरी ओर किसी भी जाति का उच्च पदासीन कुर्सी हाथ आते ही, ऐसा जातिवाद का ठेकेदार बन बैठता है कि योग्य अपने भाग्य को गालियां देते, कोसते, आत्महत्या तक पर उतारू हो जाते हैं। जब कि अयोग्य, सिफारिशयुक्त ऊंचे-ऊंचे पदों पर विराजते हुए भाग्य को सराहते हैं। ऐसी व्यवस्था में समाज का युवा वर्ग अवश्य कुण्ठा, पीड़ा अवसाद का शिकार होगा ही।

इसके अतिरिक्त यंत्र, विज्ञान के आविष्कार ने भी आज के युवा समाज-मानस को व्यथित किया है। कुछ परिवार आर्थिक रूप से हीन होने के कारण अपने बच्चों को उचित वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा नहीं दे पाते हैं, यद्यपि उनमें प्रचुर बौद्धिक एवं प्रतिभाजन्य क्षमता होती है। इस प्रकार का वर्ग उचित आजीविका न पाने की स्थिति में दुःखी है, असन्तुष्ट है। यहां भी यही प्रश्न उठता है कि सरकार क्या ऐसे व्यक्तियों के लिए कुछ नहीं कर सकती? पर समस्या एक हो तो उसे सुलझाया जाय, जहां पग-पग पर समस्यायें मुंह बाये खड़ी हों, वहां हर बात की आशा सरकार से नहीं की जा सकती। क्यों न हम स्वयं प्रारम्भ से स्कूल एवं कालेजों में ऐसी शिक्षा, आत्मबल एवं आत्म-निर्भरता को व्यक्तित्व में पैदा करें, जिसके द्वारा युवावस्था तक व्यक्ति स्वयं अपनी योग्यतानुसार अपने को भविष्य के लिए तैयार कर सके? अपने ही देश में कितने महान व्यक्ति ऐसे हो चुके हैं, जिन्होंने खाली समय में 'कुली' जैसे छोटे काम करके अपने भविष्य को उज्ज्वल एवं कीर्तिमान किया है। नयी कविता का उत्तरदायित्व आज के युग में बढ़ गया है, केवल समस्याओं की दुहाई देकर ही नयी कविता अपने उत्तरदायित्व को पूरा नहीं कर सकती। आवश्यकता है नयी कविता द्वारा ऐसी चेतना-स्वर पैदा करने की जो आज देश में और समाज में हो रही बुराइयों को तथा कमियों को किसी सीमा तक हल कर सके। आवश्यकता है, ऐसे नये कवियों के ठोस व्यक्तित्व की जो दिन-प्रतिदिन क्षीण होते व्यक्तित्व को उबार दे सके।

पलायन

नयी कविता इसी कारण अनेकोन्मुखी विशेषताओं के बावजूद भी कई कमियों से भरी है। आज कविता का स्वरूप स्पष्ट हो जाने पर भी इसमें पलायनवादी जैसा स्वर यत्र-तत्र सुनाई पड़ता है। कारण स्पष्ट है -- उसे `जीवन अपाहिज` लगने लगता है, `धान की मामूली खाट सी इसे घिरी बंधी दुनिया में पाटी से पाटी तक रहना है, सहना है।` इसकी मजबूरी के बाद उसे सन्देह है कि उसका समय भी रंग बदलेगा[1]।

अजनबीपन

आज जैसे-जैसे ज्ञान-विज्ञान की प्रगति हुई हमारे सोचने-विचारने का ढंग बदला एवं विकसित हुआ, हम एक देश से दूसरे देश के निकट आये, एक-दूसरे की सभ्यता-संस्कृति का आदान-प्रदान हो रहा है। वहीं हम अपने ही देश में अपने ही देश के व्यक्तियों से अपरिचित एवं कटते जा रहे हैं। भारतवर्ष की सबसे महत्वपूर्ण एवं विशेष निधि थी, भावनात्मक एकता, उसे भी हम खोते जा रहे हैं, चमक-दमक तथा बाहर से सम्मानित एवं

१- `जीवन अपाहिज है
रोगी असाध्य बहुत काल से
....
धान की मामूली खाट सी
घिरी बंधी दुनिया है
इसमें पाटी से पाटी तक
रहना है
सहना है
दो सौ बरस तक
एक एक पल में
पार फिर जाती है नयी स्वस्थ दुनियां
क्या इसकी रोगी हुई
चिन्ता की रेखा में
व्यथा की रेखा में
बदलेगा नहीं रंग...।`
`शिलापंख चमकीले` --गिरिजाकुमार माथुर, `[illegible]`, पृ० २२-२३-२४ ।

दूरी से पिछले व्यक्ति तक हम सम्बन्ध रखना चाहते हैं । अपने को बड़ा और सम्मानित घोषित करने के प्रयास में अपने ईमान को झूठे-झूठे बहाने बनाकर नीचे गिराते हैं । व्यक्ति का सम्मान न कर उसे रुपयों-पैसों से सम्बन्धों को जोड़ते हैं । आज के समाज-मनस की पीड़ा का कारण दिन-प्रति-दिन आदमी-आदमी में बढ़ती दूरी भी है । हम एक कमरे में रहते हुए भी एक-दूसरे से अजनबी हैं । महानगरीय सभ्यता की तो यह प्रमुख विशेषता ही है कि हम साथ-साथ फ्लैट्स में रहते हुए भी एक-दूसरे को जानने-समझने का प्रयत्न न करें । सात समुद्र पार तो मित्रता का हाथ बढ़ाते हैं,लेकिन पास में मित्र होते हुए भी कतराते हैं । आज समय कितना भी बदल गया हो, जीवन कितना ही यांत्रिक हो गया हो, लेकिन मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है,उसे समाज में रहना अच्छा लगता है । खाली समय में वह एक-दूसरे से मिल-बैठकर अपना दु:ख-दर्द बंटाना चाहता है । इसप्रकार के उपेक्षामय व्यवहार से उसे अपनी समस्यायें और भी गहरी एवं कभी न हल होने वाली लगती हैं ।

महानगरीय सभ्यता से भी नयी कविता आक्रांत है । महानगरों के बोझिल एवं यंत्रमय जीवन से ऊब,उकताहट और व्यक्तित्व के क्षरण का नयी कविता में यत्र-तत्र चित्रण हुआ है । यह सब स्थितियां स्वतन्त्रता के बाद ही समाज में उत्पन्न हुई हैं । आज का समाज-मनस चारों तरफ से अपने परिवेश से आक्रान्त है अर्थात् आज की संक्रान्ति और उसका विघटन किसी देश तथा समाज में सीमित न होकर विश्वव्यापी है । इसके पीछे सारे विश्व की राजनीति, अर्थनीति एवं बहुत हद तक कूटनीति भी है । नयी कविता में व्यापक रूप में इन सन्दर्भों से आक्रान्त कवियों की दुश्चिन्ता को देखा जा सकता है[1] ।

१--हर संकट भारत में एक गाय
होता है
ठीक समय पर ठीक कदम नहीं उठा सकती
राजनीति
बाद में जहां कहीं से भी कुछ चारा
बीच सड़क पर गोबर कर देता है विचार
हाय हाय करते हुए हां हां करते हुए हें हें करते हुए
जुगाली···।

--'आत्महत्या के विरुद्ध' -- रघुवीर सहाय,'एक अधेड़ भारतीय आत्मा' पृ०८४-८५।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय समाज-मनस को विभिन्न समस्याओं एवं परिस्थितियों से संगति बैठाने में तमाम कठिनाइयों एवं असंगतियों का सामना करना पड़ा है और इनसे समाज-मनस कभी चोट खाकर व्यंग्यशील हुआ है तो कभी टूटा है, निराश हुआ है तो कभी सन्दर्भों से कट गया है। कहना न होगा कि नयी कविता में समाज-मनस की पीड़ा खुल कर सामने आई है।

-o-

(ग) आधुनिकता का आग्रह

मानवतावाद

साम्राज्यवाद के दो-दो भीषण युद्धों तथा अन्य कई छुट-पुट युद्धों ने समस्त विश्व की व्यापकता को संकुचित करके सर्वदेशीय स्तर पर मानवतावाद एवं अभाव-ग्रस्त की पीड़ा को आधुनिक सन्दर्भ में उठाने के लिए बाध्य किया है । नयी कविता के सन्दर्भ में आधुनिकता को सम-सामयिक बोध के अर्थ में स्वीकार करना चाहिए । आधुनिक होने का अर्थ फैशनपरस्ती से नहीं है,! युग-जीवन की समस्याओं को नवीन अर्थों में समझने एवं हल करने से है । आज के क्षण-प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहे युग में किसी विशेष सिद्धान्त, मूल्य अथवा नैतिक आचरण से बंधे रह सकना कदापि सम्भव नहीं है । जीवन-मूल्य,जीवन-दृष्टि जिस तेजी से रूप बदल रही है,उसके साथ संगति न बैठा पाने की अवस्था में हम युग से पिछड़ जायेंगे। यह बात तो आज बिना किसी संकोच के स्वीकार की जायगी कि आज का युग अनेकानेक विषमताओं,जटिलताओं एवं विकास का युग है । प्रविधि,विज्ञान एवं औद्योगीकरण ने जहां एक ओर जीवन को सरल,सुगम्य एवं सम्पन्न बनाया है,वहीं उसने जीवन को अनेकानेक दुश्चिंताओं से भी भर दिया है । यंत्रों ने जीवन में जिस तरह की निष्क्रियता, ऊब तथा उकताहट लादी है, उससे मानव-व्यक्तित्व का क्षरण ही हो रहा है । उद्योगीकरण ने जहां हजारों व लोगों की रोजी-रोटी आसान की है,वहीं हस्तकला के शिल्पियों को बेरोजगार भी कर दिया है । यद्यपि भारत में महानगरीय सभ्यता बहुत कम दृष्टिगोचर होती है,क्योंकि भारत में महानगर हैं ही कितने, लेकिन महानगरों के निष्क्रिय,यांत्रिक जीवन से जिसप्रकार व्यक्तित्व विघटित हो रहा है,उसका चित्रण नयी कविता में जगह-जगह हो रहा है । केवल व्यक्तित्व में ही निष्क्रियता नहीं दिखायी देती , बल्कि इस प्रकार से जीवन-दृष्टि एवं जीवन का लगाव भी उखड़ा-उखड़ा सा लगता है । आदमी,आदमी के लिए अजनबी होता जाता है । यह आज के वैज्ञानिक विकासवादी युग के मनुष्यों की

नियति है कि वह युग में न जीकर युग उसमें जीता है । ऐसी यांत्रिकता एवं निष्क्रिय जीवन से ऊबकर व्यक्ति 'हंसते-खेलते' शहर के लिए लालायित हो उठता है । वह ऐसे शहर को प्राप्त करना चाहता है, जिसमें किसी वस्तु पर कृत्रिमता का छाप न लगी हो, एक जीवित शहर जहाँ सब कुछ स्वाभाविक मुक्त रूप में होता रहे । किसी प्रकार की कृत्रिम व्यवस्था के वश में व्यक्ति न हो[1] ।

युद्धों का प्रभाव

विश्व-युद्धों ने मानवतावाद के प्रश्न को उठाने के लिए विवश किया । युद्धों की लपटों में मानवता किस प्रकार रौंदी गई, असहाय, भोले व्यक्ति जिन्हें युद्धों से कुछ भी सरोकार नहीं था, वह भी किस प्रकार गोली एवं बमों के शिकार हुए, यह सभी देशों के व्यक्तियों ने देखा । व्यक्ति का अस्तित्व, उसकी उपादेयता विस्फोटक बमों से आंकी गई । संवेदनशील व्यक्तियों के लिए मनुष्यता की यह बहुत बड़ी हार थी । सृजनात्मकता के स्थान पर मनुष्य का संहारक रूप जीवन के प्रति वितृष्णा एवं पलायनवादी प्रवृत्ति उत्पन्न करने वाला सिद्ध हुआ । इसके अतिरिक्त युद्धों के लिए आवश्यक सामग्री जुटाने के कारण देश की आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था में भी अवरोध उत्पन्न होते हैं । जीवन अभावों से ग्रस्त हो जाता है । तरह-तरह के मनोविकार एवं ग्रंथियां घर करने लगती हैं। जिससे मानव व्यक्तित्व का क्षरण होना स्वाभाविक है । इसके साथ-ही-साथ युद्धों के समय सम्बद्ध राष्ट्रों को तनाव एवं कटुता मय जीवन भी बिताना पड़ा । जिससे सुरक्षा

---

१ 'मुझे हंसता खेलता शहर दो
 जिंदा शहर
 जिसकी सड़कों पर न हो पुलिस की क्यारियां
 न फूलों पर पहरा
 और
 सब ओर मुस्कराते चेहरों की भीड़ हो... ।'
 —'नयी कविता'-अंक -८, सम्पा० डा० जगदीश गुप्त
 'एक हांफता शहर के लिए' — [illegible], पृ० १४८-१४९ ।

का प्रश्न भी उठना स्वाभाविक ही था । इन सब परिस्थितियों से जहां एक ओर देश को सम्पन्न एवं सुरक्षित बनाने के लिए विज्ञान,प्राविधि एवं उद्योगीकरण का विकास किया,वहीं दूसरी ओर मानव निर्मित संकटों से बचने का उपाय भी हुआ । नयी कविता में एक नये प्रकार के तत्व के दर्शन हो रहे हैं : मनुष्य को समूह की दृष्टि से न देखकर व्यक्तिगत स्तर पर उसकी विशिष्टताओं एवं व्यक्तित्व को महत्व-पूर्ण एवं मूल्यमय मानना । पिछले किसी भी युग में मानव-इकाई के प्रति ऐसा ठोस एवं उच्च दृष्टिकोण नहीं देखा जा सकता है । आज की आधुनिकता का अर्थ मात्र सामयिकता ही नहीं है,बल्कि सामयिकता के साथ-साथ आन्तरिक एवं मूल्यगत भाव भी है । मात्र बाह्याकार की नवीनता को आधुनिकता नहीं माना जा सकता है, क्योंकि बाह्य रूपाकार को आधुनिकता मान लें तो अर्थ संगति एवं मूल्यमय होना आवश्यक नहीं रह जाता । इस दृष्टि से प्रयोगवाद को अधिक आधुनिक मान सकते हैं । लेकिन आधुनिकता नयी कविता में मानवीय गरिमा,व्यक्ति-स्वातन्त्र्य,असंगतियों एवं अमानवीय तत्वों का बहिष्कार, भविष्य में आस्था तथा व्यक्ति की मानसिक पीड़ा को व्यापक अर्थ में समझने तथा हल करने के सन्दर्भ में है । इसके साथ-साथ सम-सामयिक अर्थ में नयी कविता में आज के प्राविधिक,वैज्ञानिक,युग के आविष्कारों का, उसके स्वभाव एवं विकृतियों का चित्रण हो रहा है । सायरनों,चिमनियों, धड़धड़ाती रेलगाड़ियों और मशीनों का स्वर आज अधिक तीव्रता के साथ नयी कविता में सुनायी देता है । इसके साथ-ही-साथ नगरीय सभ्यता एवं व्यवस्था से उत्पन्न शुष्क एवं संवेदनहीन जीवन-दृष्टि ने मनुष्य-मनुष्य में आश्चर्यजनक भावनात्मक दूरी ला दी है,जिसका चित्रण नयी कविता में यत्र-तत्र हो रहा है ।

विज्ञान प्राविधि एवं उद्योगीकरण ने जहां एक देश से दूसरे देश तक की दूरी को संकुचित कर दिया है, वहीं हम अपने देश में एक-दूसरे के लिए अजनबी होते जा रहे हैं । मनुष्य, मनुष्य के लिए सबसे बड़ा खतरा साबित हो रहा है । यह सब भीषण युद्धों के परिणामस्वरूप हुआ । जीवन की अनिश्चितता एवं असमय काल की भेंट हो जाने के कारण व्यक्तित्व में असन्तुलन एवं विकार उत्पन्न हुए । अपने जीवन को हर तरह से सम्पन्न एवं सुरक्षित बनाने के प्रयास में हर

तरह के मानुषिक-अमानुषिक व्यवहार को अपनाने में किसी प्रकार का संकोच नहीं रहा । सभ्यता का जो पशुतर रूप हो सकता था वह अपनाया गया । यही नहीं, पश्चिम देशों में जहां-जहां यांत्रिक एवं वैज्ञानिक प्रगति बहुत पहले हो चुकी थी, वहां मानसिक असन्तोष एवं मनोग्रंथियों को बहुत प्रबल रूप में देखा जा सकता है । शक्ति का उपयोग अन्य छोटी अल्पसंख्यक, जातियों को विनष्ट कर देने में हो रहा है । मानवता का अर्थ शक्ति में सिमट गया है । समस्त विश्व की शक्ति को संगठित करने का प्रयत्न किया गया है । ये शक्तियां राजनीतिक शक्ति बनकर रह गयी हैं । विश्व में यत्र-तत्र हो रहे छुटपुट युद्धों को शान्त करने के लिए ये संघ निष्पक्ष एवं मानवीय कदम नहीं लेते, बल्कि अपने देश के स्वार्थ के लिए अमानवीय तत्वों को बढ़ने देते हैं, जिसका परिणाम भयानक नरसंहार के रूप में सामने आता है । ये सब तत्व आज की नयी कविता के समाज-मानस की पीड़ा के स्वर बन गये हैं ।

संक्रमणकालीन विघटन में व्यक्ति की पीड़ा

नयी कविता की विषय-वस्तु इतनी विस्तृत हो गयी है कि पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं से उसकी आधुनिकता भी भिन्न प्रकार की हो गई है । आज के युग में ऐसी अकल्पनीय, अमानवीय विश्वव्यापी वस्तुस्थितियां उत्पन्न हो गई हैं, जिससे मानवीय भाव-बोध को गहरा आघात लगा है । समस्त पूर्ववर्ती मान्यतायें एवं दृष्टियां संक्रमण में बह चुकी हैं, सुनिश्चितता का स्थान अनिश्चितता, आशंका, भय एवं संशय ने ले लिया है । अवसाद, निराशा, कुण्ठा, क्षोभ, आक्रोश एवं विडम्बना से मानव जीवन एवं मानव-मन आक्रान्त हो उठा है। वह अपने को निरर्थक एवं कटा-कटा-सा अनुभव करता है, परिणामस्वरूप उसमें विभिन्न प्रकार की मनो-ग्रन्थियां उद्भूत होने लगी हैं । उसके जीवनाचार में तथा विचार में भारी परिवर्तन होने लगता है । वह एक विशेष प्रकार का तनाव, विघटन, खण्डितता, अशान्ति एवं पीड़ा का अनुभव कर रहा है । इन्हीं सब मनोभावों का चित्रण आज नयी कविता में विशेषरूप से हो रहा है । मानवतावादी दृष्टिकोण की प्रमुखता मिलने के कारण प्रत्येक व्यक्ति की, व्यक्तिगत स्तर पर उसकी पीड़ा की, उसकी कठिनाइयों की

समझने का और दूर करने का प्रयत्न किया गया है । आज की नयी कविता की यही आधुनिकता है ।

असम्पृक्तता और अर्थहीनता

आज जो समस्यायें उठ खड़ी हुई हैं, उनका सबसे मुख्य कारण विश्व की सीमा का संकुचित हो जाना ही माना जायगा । विश्व-क्षितिज पर जो भी घटनायें उठती है, उनका प्रभाव पृथ्वी के कोने -कोने तक पहुंचता है, जब सीमा-परिधि संकुचित नहीं थी तब तक कोई घटना यदि होती भी थी तो वह क्षेत्र-विशेष तक ही सीमित रहती था । लेकिन आज समस्त विश्व सिमट गया है । नयी प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव हुआ है और वह अन्तर्राष्ट्रीयता काल्पनिक बोध न होकर मानवीय धरातल का ठोस मूल्यमय यथार्थ बन गया है, क्योंकि विश्व में हो रहे तमाम संकटों का प्रभाव सारे विश्व पर छा गया है । ऐसा संकट मय परिस्थितियों के कहीं भी उत्पन्न हो जाने की आशंका से सारा विश्व भयभीत है। यही सामूहिक आत्महत्या का भय आधुनिकता के अन्य बोध को अधिक तीव्र, विषम एवं आशंकामय बना बैठा है । एक ओर युद्धों की भयानकता ने और दूसरी ओर जीवन की त्वरित गतिमयता तथा प्रकृति की अनिवार्य परिवर्तनशीलता ने नयी कविता को आधुनिक भाव-बोध प्रदान किये हैं । पिछला इतिहास आज के युग में इतना झूठा पड़ गया है कि वह आज के मनुष्य का इतिहास लगता ही नहीं । सारी सांस्कृतिक मान्यताएं और परम्परायें झूठी पड़ गयी है, और अब तो ऐसा लगता है कि चुक गये हैं अर्थ : पुरुषार्थ के, प्यार के बुनियादी सम्बन्धों के और उन अनेक नामों के जिनके लिए उत्सव आयोजित थे । राज्य और धर्म के टूटने और अलग होने में

आज व्यथित हो रहा है[1]। बाह्य परिस्थितियों से सामन्जस्य न बैठा पाने की विवशता में वह बिखरता जाता है। चारों ओर एक प्रकार की असम्पृक्तता दिखाई पड़ने लगती है। यही सामाजिक सम्बन्धों में नयी कविता का आधुनिक बोध है। इसीलिए जब नयी कविता में संक्रान्ति, विघटन, आक्रोश, व्यंग्य और परिस्थितियों से सामन्जस्य न बैठा पाने की विवशता, सामूहिक भय, व्यक्तित्व की चर्चा होती है तो वह एक ओर आधुनिक युग-बोध तो है जो साथ-ही-साथ ईमानदारी एवं न्यायसंगत पक्ष भी है। आज के युग की यही समस्यायें हैं। अस्पष्ट आवाजों में कुछ भी स्पष्ट नहीं सुनाई देता है, सब ओर भीड़-ही-भीड़ है। लगता है `खामोशी` का दम घुट जायेगा। कवि को यह सब ऐसा लगता है, मानो बेतरतीब होती सड़कें मकानों पर चढ़ गई हैं, अफवाहें चौराहे पर पसर गयी हैं, आत्महत्याओं का जुलूस धीरे से सरक गया है आदि आदि[2]। अनुभव एवं

---

१ `अक्सर लगता है :
बदल गये हैं अर्थ
प्रणाम के,
प्यार के
बुनियादी सम्बन्धों के,
और उन अनेक नामों के
जिनके लिए उत्सव आयोजित थे
अक्सर लगता है--

....
राख और राख
के ढूहे पर और अकेला होने में
हूं।`

--नयी कविता, अंक ४ सं०-डा० जगदीश गुप्त, विजय देव नारायण साही, `आज होने के बावजूद`-- पद्मधर त्रिपाठी, पृ०८८।

२ `अस्पष्ट आवाजों के बीच
दब गया है स्वर
खामोशी का दम घुटने लगा है
बेतरतीब होती सड़कें
फड़फड़ाकर मकानों पर चढ़ गयी हैं
....
अफवाहें
चौराहे पर पसर गयीं... ...
आत्महत्याओं का जुलूस
धीरे से सरक गया है
....
मांसल चर्बी की रट गये हैं
खड़खड़ाते फुटपाथ और उधर पड़ता -
हुजूम आसमान।`

--`नयी कविता` अंक-८, सं०डा० जगदीश गुप्त, विजय देवनारायण साही, छन्द-- विजयबहादुर सिंह, पृ०१३१

अभिव्यक्ति के ये माध्यम सर्वथा नवीन एवं आधुनिक भाव-बोध से उद्भूत हुए हैं । संवेदनानुभूति की इतनी सूक्ष्म अभिव्यंजना पहले के युग में नहीं देखी जा सकती है ।

असन्तुलन और व्यग्रता

आज का युग समाधानहीन प्रश्नों एवं समस्याओं से भरा हुआ है । जीवन में उपभोग की सामग्री विज्ञान एवं उद्योगीकरण द्वारा इस सीमा तक सुलभ हो गई है कि एक ओर जीवन की सम्पन्नता से भर गया है । जीवनस्तर विस्तृत हो गया है तो दूसरी ओर इन सुख-सुविधाओं ने मनुष्य को खोखला कर दिया है । विज्ञान, उद्योगीकरण एवं प्रगतिवादी प्रवृत्तियों ने मनुष्य को बाह्य सम्पन्नता तो दी, लेकिन संस्कार विहीनता भी कम नहीं दी । किसी पूर्ववर्ती आस्था अथवा सिद्धान्त पर खड़े रह सकना सम्भव नहीं रह गया है । मानव-निर्मित संकट का अहसास हर क्षण सब को सताता रहता है । इसी कारण जीवन को ह ज्यादा-से-ज्यादा अपने ढंग से जी लेने की प्रवृत्ति आधुनिक प्रवृत्ति ही कही जायेगी । आज के व्यक्ति के व्यक्तित्व में जो उच्छृंखलता एवं असन्तुलन दिखाई देता है, उसके पीछे जीवन का असमय कालग्रसित हो जाने का भयानक डर भी है । इसी शायद आधुनिक बोध के कारण कवि का मन समाज-व्यापी पीड़ा से कह देता है कि हम सब कालक्रमानुसार पृथ्वी में छिप जायेंगे, हमारी सभ्यता का नामोनिशान भी नहीं रहेगा[1] । इस तरह की निराशा आज के विश्व में सर्वत्र व्याप्त है । निरर्थकता

---

१. "...हम, तुम और वे
सभी भूगर्भ में छिप जायेंगे
कहीं गर्त में दबे
हम बस चिन्ह ही रह जायेंगे
....
हमारी पीठ पर इतिहास की भाषा लिखी होगी,
न कोई सब हमारा मर्म जानेगा
न कोई हमारा कर्म जानेगा,
हमारी सभ्यता की व्याकरण सब पर खुली होगी..।"
--"[illegible]" -- कुंवरनारायण, '[illegible]', पृ० ५० ।

का अवसाद आज व्यक्ति सभ्यता पर छाया जा रहा है । आज का विषम परिस्थिति में व्यक्ति का मन उद्वेलित तथा पीड़ित होता है । सही सन्दर्भ को ठीक समय में ठीक अभिव्यक्ति देना यथार्थ युक्त वैज्ञानिक दृष्टि ही है । आज की कविता में रुग्णता एवं आक्रोश इसीलिए कम दिखाई देता है ।

नयी कविता की आधुनिकता के विषय में जब तब प्रश्न उठते रहते हैं, लेकिन नयी कविता अब इतनी लम्बी अवधि पार कर चुकी है कि उसकी आधुनिकता के विषय में निश्चित रूप से कुछ कह पाना सम्भव हो गया है । नयी कविता केवल बाह्य रूपाकार तथा नवीन वस्तु-स्थितियों को नये रूप में स्वीकार करने के कारण ही आधुनिक नहीं मानी जा सकती । आधुनिकता का अर्थ नयी कविता में अधिक गहराई से लिया जाना चाहिए, आधुनिकता का अर्थ फैशनपरस्ती नहीं है न ठाट-बाट दिखावा ही है । आज नयी कविता में हिप्पियों,बीटलों का स्वागत हो रहा है,लेकिन इसे आधुनिकता नहीं मानी जा सकती । वस्तुत: नयी कविता की आधुनिकता अपने अंक में चारों ओर हो रहे मन्थन की प्रक्रिया को समेटे हुए हैं । जिन परिस्थितियों में आदमी जी रहा है, उसकी अभिव्यक्ति एवं अनुभूति के लिए पुराने माध्यम सार्थक नहीं प्रतीत होते । संवेदना का इतना सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विस्तार होता जा रहा है कि उसकी अभिव्यक्ति पुराने प्रतीकों,पुराने उपमानों और पुराने बिम्बों यहां तक कि पुरानी भाषा तक में सम्भव नहीं लगता । इसलिए आधुनिकता ने सारे उपकरण को ही उलट-पुलट कर रख दिया है । आज के युग के व्यक्ति में सचेतना एवं संवेदनशीलता अधिक है,इसलिए वह आज की परिस्थितियों से बहुत जल्दी प्रभावित होता है । यही नहीं वह विश्वव्यापी समस्याओं से भी व्यथित होता है । उनको अपने ऊपर ओढ़ कर उनके अच्छे-बुरे परिणाम के विषय में सोचता है । इस प्रकार एक ओर वह सब से कटना भी चाहता है तो दूसरी ओर अधिक संवेदनशीलता के कारण आज की आर्थिक, सामाजिक और यहां तक कि राजनीतिक समस्याओं में फंसता भी जाता है । परिणामस्वरूप वह विषमताओं में घिरता जाता है । चारों ओर से अपने को व्यथित एवं कुण्ठित रूप में घिरा हुआ पाता है । इससे दूर न भाग-कर उसकी

युक्तियों से आक्रान्त हुआ था और न ही मानवता की सुरक्षा एवं प्रतिष्ठा पर इतना बड़ा प्रश्नचिन्ह ही लगा था । इसलिए आज मानव-मन की विवशता, उथल-पुथल, अवसाद, कुण्ठा, पीड़ा, पराजय, अनिश्चय, आशंका, सन्देह आदि के चित्रण में आधुनिकता का आग्रह स्पष्टरूप से परिलक्षित होता है । लेकिन यह भी स्वीकार करना होगा कि कहीं-कहीं कवियों ने जिस पीड़ा-कुण्ठा, अवसाद, पराजय का चित्रण किया है, वह वास्तविक सन्दर्भों से च्युत कवि के व्यक्तिगत अन्तर का ही चित्र खींचती है । मानव-समस्या का रूप धारण नहीं कर पाती है, जब कि आवश्यकता है, ऐसी व्यापक अन्तर्दृष्टि पैदा करने की, जिससे हम विश्व के मूल संकट को समझकर उसकी व्याख्या के साथ-साथ समाधान भी प्रस्तुत कर सकें । केवल संकट को बार-बार कह देने से संकट दूर नहीं हो सकता । हमें ऐसी दृष्टि का विकास करना चाहिए, जिससे हम आधुनिक सन्दर्भ में अपने युग को जी सकें, समझ सकें और सुलझा सकें ।

देखना यही है कि आज की विश्वव्यापी समस्याओं के सन्दर्भ में नयी कविता मानव-प्रतिष्ठा एवं समाज व्यापी पीड़ा का आधुनिक बोध किस सीमा तक इन समस्याओं का समाधान कर पाता है । यह तो नहीं कि आधुनिकता के प्रेमी इन समस्याओं को फैशन के रूप में लेकर बार-बार ऐसे ही चित्रण प्रस्तुत कर इन प्रश्नों की गम्भीरता को झुठलायें । निश्चय ही इस एकालाप से आधुनिकता का कोई महत्वपूर्ण अर्थ नहीं निकलता तब आधुनिकता मात्र फैशन बनकर रह जायेगी ।

--o--

सप्तम परिच्छेद

-0-

मूल्यान्वेषण

मूल्य संकट की स्थिति

नवीन मूल्यों की खोज या मूल्यहीनता की स्वीकृति

औद्योगिक युग में प्राचीन मूल्यों की अनुपादेयता

नये मूल्यों की समस्या : मानव-विशिष्टता

दिशाहीनता : असंगतियां

अभिव्यंजना के नये मान

समूह वृत्ति में नया आत्म-बोध

पलायन ।

-0-

सप्तम परिच्छेद

-0-

मूल्यान्वेषण

मूल्य संकट की स्थिति --
नवीन मूल्यों की खोज या मूल्यहीनता की स्वीकृति

नयी कविता पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं को अपने व्यापक अंक में समेटती, पुराने जीर्ण-शीर्ण मूल्यों को, क्षीण होती परम्पराओं को अपदस्थ करती हुई आज जिस स्थिति में आ गई है, वह स्थिति मूल्य संकट की स्थिति है । नयी कविता को इतिहास से जो दृष्टि मिली वह वांछित दृष्टि थी, क्योंकि आज व्यक्ति यथार्थवादी खुली दृष्टि से जीवन को समग्रता के साथ स्वीकार करने का प्रयत्न करता है (जब कि हमारे पूर्वज वर्तमान के प्रति काल्पनिक एवं स्वप्नमय दृष्टिकोण रखते थे, उनका वर्तमान के प्रति ऐसा दृष्टिकोण अधमरे जीवन का प्रमाण है) इसके अलावा नयी कविता का वर्तमान नये और पुराने के संघर्ष का वर्तमान है, परिवर्तन का वर्तमान है ,संक्रमणशील वर्तमान है । इन सब स्थितियों ने आज मानव को और मूल्यों को फिर से नये ढंग से निर्धारित करने के लिए बाध्य किया है । इससे पूर्व मूल्यों के आमूल परिवर्तन की स्थिति नहीं आई थी, क्योंकि जिस तरह का संकट आज देश में उठ खड़ा हुआ है, उसकी अपेक्षा में पुराने मूल्य थोथे और निरर्थक लगने लगे हैं, इसीलिए आज मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन करने की आवश्यकता है ।

प्रत्येक युग के साहित्य में एक दृष्टि उस युग के साहित्य के मूल्यांकन की होती है, क्योंकि किसी वस्तु की परख, उसका मूल्यांकन

मानना मूल्यांकन की दृष्टि से ही सम्भव हो सकता है । प्रत्येक युग में साहित्य के मूल्यांकन का प्रश्न उठता ही है,क्योंकि बिना मूल्यांकन के हम नहीं कह सकते कि अमुक साहित्य युग की सापेक्षता एवं अनिवार्यता में मूल्यमय है अथवा नहीं ।जो साहित्य अपने युग में मूल्यहीन सिद्ध होता है, वह युग-युग के साहित्य होने का महत्व नहीं प्राप्त कर सकता । यहां `रामचरितमानस` का उदाहरण श्रेयस्कर है । क्या कारण है कि `मानस` ने जितना अपने युग को प्रभावित और सम्प्रेषित किया उतना आज भी,कई शतियों के बीत जाने के बाद भी उसमें निरूपित आदर्श और नैतिक जीवन-सिद्धान्तों के सहारे मूल्यमय बना हुआ है । स्पष्ट है कि मूल्यमय वस्तु अपने युग के अतिरिक्त आगे आने वाले युग को भी प्रभावित करता है ।

नयी कविता को यदि `नयी कविता` के प्रथम अंक से प्रमाणित रूप में स्वीकार करें तो भी आज उसे लगभग पन्द्रह वर्ष व्यतीत हो चुके हैं । इतने लम्बे समय में नयी कविता अनेकों विरोधों, आक्षेपों को झेलती हुई आज काफी मजबूती के साथ खड़ी हो गई है । यह सर्वमान्य है कि नयी कविता प्रगतिवाद-प्रयोगवाद के सार्थक एवं नवीन तत्वों को आत्मसात् कर प्रगतिवादी-सुधारवादी नारेबाजी से मुक्त होकर,छायावादी काल्पनिकता, अतिरहस्यवादिता एवं गोपनीयता के आवरण को हटाती हुई यथार्थयुक्त नवीन धरातल पर उतर आई है । अब नयी कविता का रूप स्पष्ट हो गया है तो कविता में मूल्यान्वेषण की दृष्टि उठेगी ही । हर युग अपने तरह की समस्याओं से घिरा होता है । यह और बात है कि किसी युग में अधिक समस्यायें, अधिक क्रान्तियां होती हैं और किसी युग में कम, लेकिन हर युग अपने समय के संकट को बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण समझता है । नयी कविता हिन्दी कविता की सर्वाधिक एवं महत्वपूर्ण कविता कही जा सकती है, क्योंकि जितने परिवर्तन एवं विकास तथा आविष्कार नयी कविता के युग में हुए और हो रहे हैं,उतने अन्य समय में नहीं हुए । ये परिवर्तन इतनी तीव्रता से हो रहे हैं कि चीजों की शक्लें भी पहचान में नहीं आतीं । सबसे बड़ी मुश्किल तो यह है कि चीजों को किस नाम से पुकारा जाये, क्योंकि परिवर्तन के तीव्र आवर्तन में कुछ भी स्थायी

और स्पष्ट नहीं लगता है[1]।

<u>औद्योगिक युग में प्राचीन मूल्यों की अनुपादेयता</u>

आज का युग यन्त्रों का युग है । यन्त्रों से आपूर्ति की सम्भावना तो है,लेकिन आन्तरिक भावनात्मकता के लिए यान्त्रिकता में स्थान नहीं । इसके साथ-ही-साथ औद्योगिक परिवर्तन से प्राचीन संस्कृति जो कि कृषि प्रधान थी, उसका भी ह्रास हो गया । वैज्ञानिक पद्धति द्वारा शिक्षा देने के कारण पुराने अन्धविश्वासों के साथ-साथ नैतिक और धार्मिक मान्यताओं को भी अस्वीकार कर दिया गया,क्योंकि आज की समस्यायें पूर्व युगों से नितांत भिन्न एवं संकटपूर्ण हैं । आज दुनिया की गति इतनी तीव्रता से पलटा खा रही है कि आदमी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया है । आचार-विचार,व्यवहार,तर्क-वितर्क दृष्टि-रुचि एवं बोध सभी कुछ अनिश्चय एवं बदला बदला हो गया है । ऐसे में मूल्य संकट की स्थिति का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है । आज का व्यक्ति मन और तन दोनों से ही खाली-खाली हो गया है[2]। पुराने मूल्यों की अपेक्षा में आज का युग मूल्यहीन हो गया है या यों कहना चाहिए कि पुराने मूल्यों एवं सिद्धान्तों से आज के युग की कविता का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। इसी दृष्टि से आज का युग मूल्यों के संघर्ष,विघटन का युग है । अतः आवश्यकता है नये मूल्यों के अन्वेषण,सर्जन एवं स्थापना की । जब पुराने मूल्य नये युग में अक्षांत

---

1. "चीजें एक ऐसे दौर से गुजर रही हैं
   कि सामने की मेज को सीधे मेज कहना
   उसे वहाँ से उठाकर अज्ञात अपराधियों के बीच रख देना है.. ।"
   — केदारनाथ सिंह

2. "खाली मन, खाली तन
   जीवन के क्षणों से
   कभी नहीं अपनापन ।"
   'कविताएँ' —कीर्ति चौधरी,पृ०३२ ।

और अर्थहीन सिद्ध होने लगते हैं तो जीवन में नये मूल्यों की सर्जना का प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है । आज न तो कोई नैतिक मूल्य ही जीवन की व्याख्या के लिए पर्याप्त सिद्ध होते हैं और न कोई आदर्शवादी, धार्मिक, सांस्कृतिक मूल्य ही । आज मूल्यों में टकराहट हो रही है; नयी परम्परायें, नयी मान्यतायें अथवा नवीन मूल्य जड़ नहीं जमा पा रहे हैं । पुराने मूल्य निरर्थक लगने लगे हैं । अपने परिवेश से आदमी असन्तुष्ट है, संत्रस्त है । यह संत्रस्त स्थिति आज की परिवर्तित होती परिस्थिति में मूल्यों के संघर्ष को व्यक्त करती है । 'संशय की एक रात' में राम ऐसे ही व्यक्ति हैं, जिनके लिए मूल्यों का द्वन्द्व संशय बन कर भिन्न-भिन्न रूपों में उठता है । यह संशय इतनी तीव्रता से उठता है कि आज की परिस्थिति में जी रहे व्यक्ति की सही मनःस्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है[1] ।

नये मूल्यों की समस्या : मानव-विशिष्टता

आज की व्यापक अर्थहीनता ने फिर से नये मूल्यों की सर्जना करने के लिए बाध्य किया है । आज आदमी यह निश्चय नहीं कर पाता कि वह क्यों और किसलिए जीता है ? क्योंकि जो परिस्थितियां आज सामने हैं, उसमें उसका अपना कुछ भी नहीं है, वह तो दूसरों के बनाये और दिखाये रास्ते पर चलने के लिए बाध्य है । उसके स्वचिन्तन उसकी अन्तर्दृष्टि उसके निर्णय का कुछ भी अर्थ नहीं है । समाज-व्यवस्था, संस्कृति में वह इस तरह

---

1. "यदि मैं मात्र कर्म हूं
तो यह कर्म का संशय है
यदि मैं मात्र प्राण हूं
तो यह प्राण का संशय है
यदि मैं मात्र घटना हूं
तो यह घटना का संशय है .. ।"
—'संशय की एक रात'— नरेश मेहता, पृ०१२ ।

बंधा हुआ है कि उसकी सारी क्षमताएं समाप्तप्राय हो गई हैं । चेतना पर इस भांति कुहासा छा गया है कि हम अपना अच्छा-बुरा कुछ भी सोच नहीं पाते हैं । आदमी स्वभाव से ही नहीं, आचार-विचार सबसे बदल गया है । जीवन की धारा बदल गई है, मनुष्य की दृष्टि, रुचि एवं बोध भी बदल गये हैं । जीवन का सीधे साक्षात्कार करना चाहता है । कड़ुआ, तीखा, शोभन-अशोभन, सत्य-असत्य--सब को समेट कर चलता है । यही नहीं, बल्कि आज तो दृष्टि में इतना भारी परिवर्तन आ गया है कि प्रायः विरोधी लगने वाली स्थितियों, व्यवहारों में भी आज का व्यक्ति विभाजक रेखा नहीं खींचता । उसके लिए असुन्दर भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना सुन्दर । इस तरह की दृष्टि के विकसित हो जाने पर मूल्यों के निर्धारण में कठिनाई आयेगी ही । इसके अतिरिक्त हमारे देश में मूल्यों में जो संक्रान्ति आई है, वह अन्य योरोपीय देशों से भिन्न है । वहां मूल्यों में संक्रान्ति औद्योगीकरण, अत्यधिक बढ़ती एवं बढ़ी हुई सभ्यता तथा वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण हुई परन्तु अपने देश में यह संक्रान्ति सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों में विघटन आने से हुई है । इसके अतिरिक्त आर्थिक एवं सामाजिक वैषम्य ने भी व्यापक प्रभाव डाला है । जब सारी मान्यतायें बदल गईं, सारे सन्दर्भ बदल गये, नयी समस्यायें उठ खड़ी हुई हैं, जीवन की सारी परिभाषायें बदल गई हैं तो नये मूल्यों की सर्जना करने की आवश्यकता है ।

नयी कविता में नये मूल्यों की सर्जना का प्रश्न मानव-विशिष्टता से जुड़ा हुआ है । विश्व-क्षितिज पर हो रही घटनाओं ने मानवता के प्रति हो रहे तिरस्कार एवं घात को सभी देशों के चिन्तनशील प्रबुद्ध वर्ग ने समझ लिया है। इसीलिए मानव-सुरक्षा एवं प्रतिष्ठा के प्रश्न को नयी कविता में उठाया गया है । आज हम प्रगतिवादी प्रवृत्तियों, वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं आविष्कारों के कारण समस्त विश्व की दूरी को मिटाकर सिमट आये हैं । लेकिन फिर भी हम आन्तरिक रूप से इस दूरी को नहीं मिटा सके हैं । इसमें

ऐसे संस्कार नहीं पैदा हो सके हैं कि हम वास्तविक रूप में इस दूरी को जड़ से मिटा दें । यही आन्तरिक वैषम्य एवं दूरी हमें जब तब दूसरे देशों से युद्ध करने के लिए, उनकी शक्ति को मिटाने के लिए उकसाती रहती है । नयी कविता में आज के जीवन की मूल समस्या को उठाया गया है और यह मूल समस्या जीवन के उस नैतिक आधार की खोज में है, जो व्यक्ति इकाई को समूह मानव की सापेक्षता में पूर्ण चिन्तन एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता दे तथा उसके अपने अधिकारों की पूरी छूट हो । आज की विषम, क्षण-क्षण परिवर्तित होती परिस्थितियों में टूटते-बिखरते मानव की रक्षा आज की कविता का मूल समस्या है । प्रश्न उठ सकता है कि आज आदमी क्यों आत्मा से इतना छिछला एवं नंगा हो गया है ? कोई भी नैतिक अथवा आदर्शवादी विचार उसे गलत रास्ते पर चलने से नहीं रोकते । अवसरवाद का तो इतना जोर है कि जिन गलत अनैतिक कार्यों के विरुद्ध हम नारे लगाते हैं, उनका विरोध करते हैं, बड़ी-बड़ी बातें करते हैं । उनसे मुक्त हो जाने पर और ऊंचे पद मिल जाने पर हम स्वयं वैसा ही आचरण करने लगते हैं । इन सब बातों के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि आज का मनुष्य अणुबम और उद्जन बमों के खतरों में जी रहा है । जीवन की अनिश्चितता की काली छाया सदैव उसके सिर पर मंडराती रहती है । इन्हीं सब बातों से आक्रान्त वह जीवन को अपने ढंग से जी लेने के लिए उचित-अनुचित कुछ भी करने में नहीं हिचकता । समाज में गांधीवादी समाज व्यवस्था की आशा ने व्यक्ति को और भी निराश किया । स्वतन्त्रता के बाद जैसी शासन-व्यवस्था की कल्पना की गई, वैसा न हो सका । अतएव असन्तुष्ट जनता में एक प्रकार का विद्रोह जाग उठा । जिसका परिणाम समाज में अकर्मण्यता, घूस, चोरी, कालाबाजारी आदि तत्व तेजी से बढ़े । जब ये तत्व बढ़े तो उनमें निराशा, बिखराव, पीड़ा अराजकता भी बढ़ती ही । इस प्रकार आज के युग की जोखरी समस्याओं ने मूल्यों को फिर से रचने के लिए विवश किया है ।

दिशाहीनता : असंगतियां

नयी कविता के रचनाकारों ने अपने युग की समस्याओं को समझा है और उसका अपने चिन्तन द्वारा समाधान भी करना चाहा है । लेकिन ऐसा निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि नयी कविता पूरी तरह से उन विरोधी, असंगत परिस्थितियों को दूर कर सकी है, जिन परिस्थितियों ने आज के मानव को कुण्ठा, अवसाद, पराजय, पलायन, टूटन आदि विकृतियों से भर दिया है । कहीं-कहीं नया कवि नये मूल्यों को खोज लाने एवं प्रतिष्ठित करने में संलग्न ही नहीं दिखाई देता, वरन् उसकी उपलब्धि भी उसे हो जाती है और कहीं-कहीं परिस्थितियों एवं अपने परिवेश से संगति न बैठा पाने की स्थिति में व्यक्त खीझ, उकताहट और मूल्यहीनता की स्वीकृति ही कही जायगी । `माया-दर्पण` की रचना में कवि अपने चारों ओर फैली समस्याओं के लिए समाधान नहीं ढूंढ़ पाता और अन्त में जिस निराशा एवं प्रश्नसूचक ढंग में कविता खत्म करता है, वह सर्वथा मूल्यहीनता की स्वीकृति है[1] ।

श्रीकान्त की `मायादर्पण` की अन्य कई कविताएं भी मूल्यनिरपेक्ष कही जा सकती हैं । यह मूल्यनिरपेक्षता एक प्रकार की मूल्यहीनता की स्वीकृति ही है, क्योंकि कोई समाधान न खोज पाने की स्थिति में केवल जो मुझसे नहीं हुआ, वह मेरा संसार नहीं ` या `तुम जाओ अपने बहिरंत में, मैं जाता हूं अपने अन्तर्मन में` जैसी पंक्तियां मूल्यहीनता की द्योतक हैं । केवल श्रीकान्त ही नहीं, नयी कविता में तो जहां एक वर्ग आज की परिस्थिति को न केवल उघाड़ कर रखने में विश्वास करता है, बल्कि ऐसे समाधान भी प्रस्तुत करता है जो परिस्थितियों की जटिलता को हलका भी करता है ।

---

१ `मैं क्या करूं ? क्या मैं जीने की कोशिश में
किसी और दुनिया में जा मरूं ?`
—`मायादर्पण`— श्रीकान्त
`एक दिन`, पृ०१४ ।

मानव जीवन मात्र विडम्बना ही नहीं है कि हम दु:खों में घिरे और दु:खित होते रहें । उससे त्राण पाने का कुछ भी उपाय न करें न ही मानव जीवन पशु के स्तर को प्राप्त कर सन्तुष्ट रह सकता है । मनुष्य तो सबसे अधिक संवेदनशील, बौद्धिक, तर्क-वितर्क की क्षमता से युक्त सचेतन प्राणी है, इसलिए वह परिस्थितियों की असमानता, असंगतियों से बहुत शीघ्र प्रभावित होता है, दु:खी होता है । लेकिन उससे त्राण पाना भी चाहता है । लेकिन सबसे आश्चर्य की बात तो यह लगती है कि आज जब मनुष्य दावे के साथ अपना भाग्यनिर्माता स्वयं को घोषित करता है,[1] वहीं पर आज के ठाट-बाट दिखावे, आडम्बर, फैशनपरस्ती आदि से उद्भूत कृत्रिम वातावरण से उबरने के लिए पुन: ईश्वर की शरण में जाना चाहता है[2] । समझ में नहीं आता एक ओर भाग्यवाद, नियतिवाद, ईश्वर और धर्म में अनास्था का शोर और दूसरी ओर फिर ईश्वर की शरण में जाने के पीछे कौन सा मूल्य-बोध छिपा हुआ है । केवल मानसिक ऊहा-पोहों का तरह-तरह से चित्रण कर देने से परिस्थितिमात्र का चित्रण हो सकता है, वास्तविक समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता ।

---

१. 'सिर पर - हम नया आकाश
        सूरज उगायेंगे
        स्वयं बन जायेंगे
        अपने रथों को खुद चलायेंगे
        गढ़ेंगे व्यवस्थायें नई
        सुन्दर जीने की...।' — 'नयी कविता' अंक-८ सं० डा० जगदीश गुप्त, वि०के०गा०आ०
                'एक कविता' — श्रीहर्ष, पृ०२१० ।

२. 'हे ईश्वर ! मुझे कथाओं से छील-छील
        दो अपनी बैनी —
        मैं उसी तरह निर्मल
            बहूं के
        सुधर जाऊं...।' -- 'मायादर्पण' -- श्रीकान्त वर्मा
                पृष्ठ ..., पृ०८३।

आज की मूल समस्या है,उसका चित्रण तो यथा-कथा ही हो रहा है । लेकिन सारा काव्य मध्यवर्गीय कुंठाग्रस्त बुद्धिजीवियों का काव्य बनकर रह गया है । आज की समस्या की चर्चा और उसके निदान की चिन्ता दस-पांच व्यक्ति मिलकर किसी पार्क में बैठकर हल कर लेते हैं अथवा `काफी हाउस` में बैठकर । सारी समस्या की गम्भीरता भी फैशन में समाहित हो गई है । ऐसे लोगों के लिए मूल्य संकट कोई समस्या नहीं है,क्योंकि न तो अतीत इनके लिए महत्वपूर्ण और न भविष्य ही । वर्तमान में जीने वालों के लिए वर्तमान भी उतना महत्व नहीं रखता, जितना कि रखना चाहिए, क्योंकि ये कवि परिस्थिति से कटे अपने सुख को सुख और अपने दुःख को सबसे बड़ा दुःख मानने वाले किसी आन्तरिक शक्ति-सामर्थ्य से हीन कविता रचने वाले अ-कवि हैं ।

अभिव्यंजना के नये मान

आज की परिस्थिति की गम्भीरता, सम-सामयिक संकट एवं दिशाहीनता के बोध ने ही अभिव्यक्ति के नये माध्यम[१] खोजने के लिए नये कवियों को बाध्य किया है । छन्द-बंध छूट गये, लय,तुक,ताल की अनिवार्यता भी

---

१ `आपने दस वर्ष हमें और दिये
बड़ी आपकी अनुकम्पा थी ।
हम नत शिर हैं.... ।`
`नयी कविता` अंक-२,सम्पा० डा० जगदीश गुप्त, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी
नयी कविता : एक सम्भाव्य भूमिका -- अज्ञेय
पृ०६५ ।

भुला दिया गया, नये बिम्बों[1] की रचना की गई, नये उपमान[2], नये प्रतीक[3] को अपनाया गया, यहाँ तक कि आवश्यकतानुसार नये शब्द[4] भी गढ़े गये, शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा[5] भी गया । लेकिन यह सब जिस लिए हुआ वह तो भुला दिया गया, बल्कि वस्तु के हलकेपन और स्तरीय अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए

---

१ 'मछुए का
एक जाल
नदी से निकाल कर
धरा हुआ
मेरे इन थिर आकिंचन कंधों पर
यह मेरा नगर है... ।'
'अभी बिल्कुल अभी'—केदारनाथ सिंह
पृ० १८

२ 'ढल गया
झुक गया
एक और धूप-दिन
पत्थर-सा
रंगीन कंचे सा
स्याही सा.... ।'
'जो बंध नहीं सका'—गिरिजाकुमार माथुर
'वर्ष दिन', पृ० २० ।

३ 'एक पीड़ित पत्थर की दो पंक्तियां
[illegible],
कंप कर छूट गई,
मैंने देखा मैं कुछ लिखता जाता हूं ।
'शहर अब भी संभावना है'—अशोक वाजपेयी
'पहला दुश्मन', पृ० [illegible] ।

४० 'तुम जब मुझे
अपमानित करते हो
तब तुम मेरे निकट होते हो ।
प्रभु से प्रार्थना है
वह तुम्हें निकट ही रखे ।'
'नयी कविता'—अंक–८
सम्पा० डा० जगदीश गुप्त, वि० दे०
ना० शाही
'प्रभु के नाम पांच कविताएं'—
नरेश मेहता, पृ० ९४ ।

५ 'सिमट कर — जब नया आकाश
सूरज उगायेंगे
.... ।'
'नयी कविता', अंक–८
सं० डा० जगदीश गुप्त, वि० दे० ना० शा०
'एक कविता'— मो[illegible],
पृ० २१० ।

छंद-बंध हीन स्वतन्त्र कविता लिखी जाने लगी है । इस तरह की वैयक्तिक अनुभूतियों की कविता विश्वव्यापी मूल्यहीनता की स्थिति को नहीं समझ सकती और न ही नये मूल्यों की सर्जना ही कर सकती है ।

समूह भूमि में नया आत्म-बोध

भारत की सांस्कृतिक परम्परा बहुत ही दृढ़ एवं गौरवपूर्ण कही जा सकती है, लेकिन आज स्वतन्त्रता के बाद व्यक्तियों में बाह्य रूप से चाहे जितना परिवर्तन और विकास दिखाई देता हो, लेकिन आन्तरिक सांस्कृतिक रिक्तता और विघटन का स्वर भी तीव्र होता जा रहा है । यह रिक्तता और विघटन की स्थिति इसीलिए बढ़ती जा रही है कि छोटे छोटे नगण्य आचार-विचार बड़े-बड़े मूल्यों को आक्रान्त करते जा रहे सभ्यता-संस्कृति के चरमोत्कर्ष पर खड़े हम फिर से पशुत्व की ओर लौट रहे हैं । जानते बूझते हम वही खतरे पैदा कर रहे हैं, जिनसे बचने के लिए हमने सारी शक्ति-सामर्थ्य लगा दिया । अणुबम एवं उदजन बमों का निर्माण कर हमने बहुत बड़ी विजय प्राप्त की, लेकिन यही विजय मानवता के सर्वनाश के लिए तत्पर है । मानव-निर्मित अनदेखे खतरों से आणविक मृत्यु का आतंक घोर पराजय एवं उच्छृंखलता को जन्म देता है । ऐसी विषम परिस्थितियों में किसे मूल्यमय माना जाये और किसे मूल्यहीन । मूल्यहीनता की स्थिति का प्रश्न मानवतावादी विचारधारा से सम्बद्ध हुआ है । समस्त मानव की पीड़ा, उसकी सम्वेदना तथा उसके अधिकारों को मानव-इकाई के सन्दर्भ में उठाया गया है । आज प्रत्येक समस्या भीड़ के रूप में हमारे सामने आती है। नेतागीरी का इतना प्रभाव है कि एक बोलता है तो हजार लोग संग चलते हैं । व्यक्ति का व्यक्तिगत आचरण समूह के आचरण से संचालित होता है । सारी विवशताओं के बीच खण्डित होता है । अवसाद से भर उठता है । कुंठा, अविश्वास एवं शंका उसके व्यक्तित्व एवं चरित्र को शक्तिहीन बना देते हैं । इन्हीं कमजोरियों से युक्त मनुष्य में कैसे इतना

आत्मबल पैदा किया जाय, जिससे वह अपनी परिस्थिति को स्वयं झेल सके । उससे अपने को मुक्त कर सके । केवल आक्रोश दिखाने से या व्यंग्य-विद्रूप से समस्याओं का निदान नहीं हो सकता । कुत्ते की तरह गिड़गिड़ा कर कुछ नहीं हासिल कर सकते । यदि नये कवि कुछ करना ही चाहते हैं तो क्यों नहीं ऐसी क्रान्ति करते कि सारे समाधान स्वयं ही मिल जायें । दूसरों का मुंह देखकर या नकल करके हम कोई भी नया मूल्य नहीं स्थापित कर सकते । फिर यह तो हमने पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि हर देश की समस्यायें अपने परिवेश के अनुसार होती हैं। उनका निदान भी अपने देश के स्वभाव एवं प्रकृति के अनुसार ही हो सकता है । यदि हम अपने देश की सामाजिक अव्यवस्था को तथा उससे उत्पन्न होने वाली समस्याओं का हल विदेशी रीति से करेंगे तो वही स्थिति अपने देश की भी होगी जो आज पश्चिम देशों का हो रही है । अपने देश में अवश्य कुछ ऐसी विशेषता है, जिसके कारण हम आज इन विषम परिस्थितियों में भी कभी-कभी अपने आचरण के प्रति सजग हो जाते हैं । भावनात्मक एकता या नैतिकतावश हम सब अब भी एक-दूसरे से बंधे हुए हैं । इस गुण द्वारा हम आज की विशृंखलता को और सामाजिक विघटन को दूर करने की सोच सकते हैं ।

मूल्यों में विघटन की स्थिति उत्पन्न हो जाने से नये मूल्यों की सर्जना का कार्य उतना सरल नहीं, जितना आज के ये नये कवि समझते हैं । युग-युग से संचित एवं प्रतिष्ठित मानव-मूल्य जिस झटके से अचानक विघटित हो गये हैं, उनका स्थान कोई ठोस सार्थक एवं नवीन मूल्य ही ले सकता है । यह अवश्य है कि नये मूल्यों की स्थापना के लिए पुराने मूल्य-मान्यतायें और परम्परायें तोड़नी ही होंगी, क्योंकि जब तक गलित-दलित, रूढ़, निरर्थक सिद्धान्त एवं दृष्टि नहीं बदलेगी, तब तक नया कैसे स्वीकार्य हो सकता है । वे सारे सिद्धान्त, सारी मान्यतायें, सारी परम्परायें मानव-प्रतिष्ठा के सन्दर्भ में ही निरर्थक लगने लगे हैं । आज विश्वव्यापी संकट ने यह स्थिति ला दी है कि भौतिकता सदाचरण एवं आध्यात्मिकता से अधिक शक्तिशाली हो गई है । इस कारण मनुष्य

में अनास्था और भय पैदा हो गया है । यही नहीं, अविश्वास ने तो आज के मनुष्यों के व्यक्तित्व में इस सीमा तक असन्तुलन पैदा कर दिया है कि सारी सांस्कृतिक परम्परा एवं जीवन-मूल्यों की धारणा ही बदल गई है । नयी कविता ऐसे संक्रमणकालीन युग में विघटित हो रहे व्यक्तियों में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और व्यक्ति-चेतना का अर्थ बताना चाहती है । व्यक्ति के माध्यम से लोक-कल्याण तक पहुंचने का कार्य करना चाहती है और शायद यह काम सम्पन्न हो जाने पर हम जीवन-मूल्यों की स्थापना कर सकते हैं । लेकिन नयी कविता जिस आशय से, जिन गम्भीर परिवर्तित परिस्थितियों में अवतीर्ण हुई थी, उसके दायित्व को शायद उसने भुला दिया है, क्योंकि आज जिस तरह की कविता हो रही है, उसमें न तो लोक-मंगल की भावना ही मिलती है न आज के परेशान, विक्षुब्ध, पराजित मन को ही कोई समाधान मिलता है । नितान्त वैयक्तिक अनुभूति जिसका सम्बन्ध सामूहिक चेतना या समस्या से सदैव नहीं लगाया जा सकता, भला किस तरह स्वीकार की जा सकती है । या उनसे किसी भी प्रकार की व्यापक भावात्मकता की क्या आशा की जा सकती है । यह बात भी हम स्वीकार कर सकते हैं कि कलाकार का कला के प्रति जितना उत्तरदायित्व है, उतना ही उसका अपने प्रति भी है । लेकिन कलाकार का अपना भी व्यक्ति होना चाहिए । यदि वह कुछ कर नहीं सकता, केवल बड़ी-बड़ी बातें बनाकर नयी कविता के नाम से धोखा देने का प्रयास करता है तो वह नयी कविता के लिए तो घातक सिद्ध होगा ही, साथ ही किसी साहित्यिक अथवा नैतिक या कोई भी मूल्य स्थापित नहीं कर सकता ।

पलायन

व्यक्तिगत कुंठा-घुटन, पीड़ा का बार बार चित्रण कर हम वास्तविक विश्वव्यापी कुंठा-पीड़ा और घुटन को महत्वहीन कर देते हैं । इतना विघटन हो जाने के बाद भी हममें इतनी शक्ति नहीं रह गयी कि हम किसी

मुखर भाव का बिना डरे, निस्संकोच विरोध कर सकें । आज भी हम अपने अन्दर सुलगती आग को छिपा जाना चाहते हैं । अपने अन्तर्मन के बोझ को हल्का करने के लिए किसी निर्जन,एकान्त,परिवार,शहर से दूर स्थान को चुनते हैं,ताकि वहां अच्छी तरह चीख सकें, चिल्ला सकें । लेकिन इतना उपक्रम करने के बाद भी हम कुछ नहीं कर सके । बहुत कुछ कहना चाहते हुए भी यहां-वहां घूमते रहे, आंखें खुली रहीं, ओंठ बन्द । कैसी वेदना है कि सब कुछ जानते हुए भी किस विवशतावश हम कुछ न कह सके ? इन परिस्थितियों से पराजय स्वीकार करते रहने से कुछ भी नहीं होने का । इसी तरह न मालूम कितनी सदियों तक हम आंखें खोले,बन्द ओंठ लिए घूमते रहेंगे ।

--०--

१.--मैं कुछ कहना चाहता हूं
आपसे
अथवा किसी और के सामने नहीं
..... सुनसान में
किसी टीले पर
खड़े होकर ।
....
मैं उस आग को चुपचाप
किसी दरिया के हवाले कर देना चाहता हूं
ताकि
कोई जान न पाये
कि यह आग मुझमें सुलगी थी
मैं कई दिनों से
बहुत कुछ कहना चाहते हुए भी
घूम रहा हूं
यहां से वहां
खुली आंखें
बंद ओंठ
चुपचाप।
चुपचाप ।
... बिल्कुल चुपचाप !!!
--नयी कविता,अंक ८
'एक आत्मकथा'--माधव राघव
पृ० १०८-१११ ।

अष्टम परिच्छेद

-o-

भविष्य में इन नये आयामों की दिशा एवं इनकी परिणति कहां ?

नयी कविता उपलब्धि और सीमाएं

चेतना का विस्तार

युग-चेतना की दिशा

व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और उसकी दिशा

व्यक्ति-स्वातन्त्र्य : संकुचित दृष्टि

परम्परा-मुक्ति और दायित्व

पुनः परम्परा की ओर झुकाव

यथार्थपरकता:कितनी गहरी ?

ठोस मानवीयता : नया उत्तरदायित्व

क्षणानुभूति : शाश्वत के सन्दर्भ में चेतना की नयी उपलब्धि या संतुलन

लौकिकता या अतिलौकिकता ?

नयी सौन्दर्य-दृष्टि : उसकी दिशा

समाजगत चेतना के नये पार्श्वों की दिशा :आध्यात्मिकता एवं मानवतावाद— कितना समाधान ?

पराजय की स्वीकृति : निराशा का चरम बिन्दु

आधुनिकता कितनी ?

नयी कविता का भविष्य ।

अष्टम परिच्छेद

-0-

भविष्य में इन नये आयामों की दिशा
एवं
इनकी परिणति कहां ?

नयी कविता : उपलब्धि और सीमायें

नयी कविता का जो स्वरूप आज हमारे सामने है, उस रूप तक आते-आते नयी कविता ने न जाने कितने रूप बदले और भविष्य में न जाने कितने रूप बदलेगी भी । नयी कविता का कोई स्थायी रूप धारण न करने का तथा नित्य उठने वाली नूतन विषम समस्याओं पर आगे से बढ़कर उनपर विचार-विमर्श करने का जो रुख है, उसके द्वारा नयी कविता भविष्य में काफी दिनों तक स्थायित्व प्राप्त करेगी, ऐसा निर्विरोध तो नहीं ही सम्भवतः कहा जा सकता है । लेकिन नित्य-नूतन रूप भरने वाली नयी कविता क्या भविष्य में इन नये चेतना आयामों को किसी केन्द्रीय समाधान तक ले भी जायगी या फिर मेघों में बिजुरछटा की तरह कोई नयी दिशा भर दिखा कर विलुप्त हो जायगी । मात्र नयी विशेषण लग जाने से नयी कविता अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकती। क्योंकि समयानुसार जो आज नया है, कल वह अवश्य पुराना हो जायगा, नया या पुराना काल के ऊपर निर्भर होता है, परन्तु सार्थक और निरर्थक का भेद गुण के अनुसार होता है । नयी कविता ने बाह्य रूप का कितना ही शृंगार कर लिया लेकिन उसकी आत्मा की स्थिरता एवं दीर्घता की नियति बनाये, बिना भरे कोई भी साहित्यिक उपलब्धि नहीं हो सकती है । इसलिए

नये-पुराने , अच्छे-बुरे का भेद मिटा नये कवियों को नयी कविता के चरमोत्कर्ष तक पहुंचने का प्रयत्न करना चाहिए । केवल नयी दिशा दिखा देने से उस दिशा की उपलब्धि नहीं की जा सकती है ।

नयी कविता पर विचार करने के उपरान्त उसके भविष्य के विषय में प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है । नयी कविता को खिलवाड़ समझने वाले कवि आज भी उसके दायित्व को नहीं समझे हैं । नये के चक्कर में नयी कविता के आन्दोलन को 'ताजी कविता', 'अकविता' में बदलने का प्रयास हो रहा है, लेकिन क्या नाम पर कलई फिरा कर कुछ सार्थक भी किया जायगा कि विघटन पैदा करने का यह एक और मिथ्या प्रयास बनकर रह जायगा ।

साहित्य में जब कोई नयी धारा उदित होती है तो अवश्य ही उसमें कुछ ऐसी विशेष बात होती है,जो वर्तमान धारा में नहीं होती है अथवा वर्तमान से क्षुब्ध तथा नवीनताओं के कारण वर्तमान काव्य-धारा (या कोई भी साहित्यिक धारा) को अपदस्थ कर देती है । नयी कविता का आन्दोलन अपनी पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं छायावाद,प्रगतिवाद,नकेनवाद, प्रयोगवाद के न केवल विरोध में खड़ा हुआ है, बल्कि अपनी पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं को आत्मसात् कर कुछ नया देने, कुछ नया करने तथा उसके साथ-ही-साथ युगबोध को लिए उत्तरदायित्व की भावना से स्वीकारा है यह अवश्य प्रशंसनीय है[1],लेकिन स्वीकार कर लेने से ही नयी कविता का

---

१ 'मुझे स्पष्ट दिखाई देता है कि आधुनिक कहे जाने वाले इस युग के तृतीय युग में काव्य की केन्द्रीय धारा छायावाद की शिथिल मनोवृत्ति को त्यागकर कल्पना और रहस्य के लौकिक आत्मवाद् अध्यात्मवाद पर टिके हुए निराशा एवं अवसाद के धूमिल वातावरण को चीरती हुई 'निराशा' के अभाव एवं अनुभूतिजन्य,प्रखर व्यक्तित्व के साथ विद्रोह की कठोर भूमि पर आ गई है...।'
—नयी कविता: स्वरूप और विकास —डा० जगदीश गुप्त
हिन्दी कविता : प्रवृत्यात्मक विवेचन. पृ० ३८८ ।

उत्तरदायित्व पूरा नहीं हो जाता है । अब भी नयी कविता में कुछ ऐसी पूर्ववर्ती प्रवृत्तियां चिपका बनाये बैठी हैं, जिनसे नयी कविता अपेक्षित ऊंचाई को नहीं प्राप्त कर पा रही है । चेतना

चेतना का विस्तार

नयी कविता का विषय एवं वस्तु पक्ष देश-काल की सीमा को लांघ कर विश्व-व्यापक हो गया है । नया कवि न केवल अपने देश और अपने समाज की समस्याओं से प्रभावित एवं संवेदित होता है,बल्कि उसकी संवेदना देशकालातीत है । भविष्य में होने वाली घटनाओं एवं समस्याओं की सम्भावनायें भी उसे आज आन्दोलित करती हैं। इसीलिए आज का कवि यथार्थ के खुरदुरे धरातल पर चलना अधिक श्रेयस्कर समझता है,क्योंकि इसमें रहकर वह छायावादियों की तरह सुखी होना नहीं चाहता, अपने ही दु:ख को अपनी ही पीड़ा को सबसे महान मानने वाले छायावादियों की मनोवृत्ति नयी कविता में मानवतावादी विचारधारा में बदल गई है । जहां मानव-प्रतिष्ठा जैसे गहन विषय को नयी कविता ने पहचाना एवं स्वीकारा है,वहां तो उसका दायित्व और भी बढ़ गया है । स्वतन्त्रता के बाद देश में व्यक्ति और समाज की जो स्थिति रही है,उसे नयी कविता के प्रमुख कवियों ने देखा है, उनकी विसंगतियों, कुण्ठाओं एवं जटिलताओं को समझा और उनके विघटन को झेला है,इसीलिए नयी कविता नयी विचार-भूमियों पर विचरण करने के लिए बाध्य हुई है । मानव मन और उसके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अन्तर्द्वन्द्वों एवं भावनाओं तक अपनी अनुभूति को अपनी अन्तर्दृष्टि से उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है । इस प्रक्रिया में ही चेतना के नये आयामों का उद्घाटन हुआ है । चेतना के नवीन पार्श्व व्यक्ति एवं समाज से सम्बद्ध होने के कारण आत्मपरक एवं समाजपरक दोनों ही हैं । चेतना यह है कि नयी कविता के प्रमुख रचनाकार इन आयामों

को किन परिणतियों तक ले जाते हैं ? ऐसा तो नहीं कि ये आयाम केवल अपना रूप दिखाकर विलुप्त हो जायेंगे या ये आयाम किन्हीं-उपलब्धियों तक पहुंचा सकेंगे ?

आत्मगत चेतना के आयामों की चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है । चेतना के ये आयाम नयी कविता के इतनी लम्बी अवधि तक विद्यमान रहने पर किन परिणतियों तक पहुंचे हैं, यह देखना आवश्यक है ।

<u>युग चेतना की दिशा</u>

विश्व-क्षितिज पर नित्य घटने वाली नवीन तथा अनहोनी घटनाओं ने सारे युग को ही चकित कर रख दिया । जीवन की गति एवं दृष्टि दोनों में भारी परिवर्तन आये । संस्कृति, परम्परा और मान्यतायें सब कुछ इस संक्रमणकालीन युग के लिए अपर्याप्त लगने लगे । मानव-तिरस्कार एवं मानव-मन की दुर्बलताओं एवं पीड़ा को समझने के लिए नवीन संवेदना एवं नवीन दृष्टि की आवश्यकता महसूस की गई । सर्वत्र व्याप्त असंतोष, अराजकता, आत्महारापन ने नये कवियों को दूसरे ढंग से सोचने-विचारने के लिए बाध्य किया । इसके अतिरिक्त समाजव्यापी कुंठा, युद्धों का भयानक संत्रास, सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक विसंगतियों से उद्भूत विषमताओं ने भी आज के युग को आंदोलित किया है । इन सब परिस्थितियों से आज का मनुष्य टूट गया है । उसका मन पीड़ा से भर उठा है । समाज में सामंजस्य न बैठा पाने की विवशता ने उसमें आक्रोश एवं विद्रोह की भावना भर दी है । इन सब विकृतियों से आज के मनुष्य में विविध प्रकार का असन्तुलन एवं क्षोभ पैदा हो गया है । इन्हीं सब परिस्थितियों में नये कवियों ने संघर्ष की आकांक्षा महसूस की एवं पूर्ववर्ती सभी काव्य-परम्पराओं के विरोध में कविता नये रूप में यथार्थोन्मुखी भाव-बोध के साथ नयी कविता सामने आई । इसीलिए नई

कविता में युग-चेतना की जागृति अभिव्यक्त है । मानव-प्रतिष्ठा आज के युग की, जागृत एवं विषम समस्या है । नयी कविता ने अपने उत्तरदायित्व को, अपने युग को समझा है, स्वयं इन परिस्थितियों को गहन अनुभूति के साथ झेलने का प्रयास किया है । संसार की पुनर्रचना जैसे महान कार्य का बीड़ा उठाने का साहस किया है । तभी तो आज का कवि बड़े साहस एवं विश्वास के साथ कहता है कि आजकल की सीमा में इनको मत बांधो, जल्दी मुरझा जायें, ऐसे ये कुछ नहीं ।[1] प्रत्येक युग की कविता में उस युग की अभिव्यक्ति हल्के-गहरे रूप में अवश्य ही होती है, या यों कहना चाहिए कि हर युग की मांग के अनुसार ही नई धारा वर्तमान धारा को अपदस्थ करके सामने आती है । नयी कविता के साथ भी यही हुआ । सत्य को सत्य न कह पाने की विवशता कभी-न-कभी तो छटनी ही थी, लेकिन सत्य को सत्य कह पाने और मनवाने में नये कवियों को बहुत ही विरोधों, संघर्षों एवं आक्षेपों का सामना करना पड़ा है ।

यह बात सर्वमान्य है कि कोई-कोई व्यक्ति अपने युग में बहुत प्रगतिशील नवीन विचारों वाला होने पर भी कम हो जाने पर उस युग के समाप्त हो जाने पर तथा उन विचारों की महत्ता कट्टर एवं पुरातनपंथी हो जाता है, नवीनतायें उसे बकवास प्रतीत होती हैं । ऐसी परिस्थितियों में नयी कविता को वादयुक्त, छंदबद्ध रहित, लयविहीन नितान्त नग्न रूप में देखकर

---

१ .... आजकल की सीमा में
इनको मत बांधो तुम
जल्दी मुरझा जायें
ऐसे न ये कुछ नहीं... ।
नव युग, आगत है
कभी भी मुरझा जायें
ऐसे तो कुछ नहीं ।
मन के वातायन—कुन्तलिका गुप्ता- ये कुछ, पृ०३५ ।

शोर मचना स्वाभाविक था, लेकिन यह शोर उसी तरह समय के साथ शान्त हो गया, जैसे न बरसने वाले बादल गरज कर शान्त हो जाते हैं । प्रश्न यह है कि जिन परिस्थितियों ने कवियों को सारे संघर्षों, विरोधों एवं आक्षेपों को सह लेने के लिए बाध्य किया, क्या आज उन परिस्थितियों को पूर्ण प्रश्रय एवं अभिव्यक्ति दी जा रही है ? क्या युग को चेतना उस मोड़ तक लाने में सफल हो पायेगी, जिस मोड़ के लिए यह संघर्ष करना अनिवार्य समझा गया। जीवन में कुछ सत्य ऐसे भी होते हैं, जिनको अवहेलना नहीं की जा सकती । ये सत्य न केवल हमारी जिन्दगी पर, वरन् देश के वर्तमान एवं भविष्य पर प्रभाव भी डालते हैं । ये मूलभूत सत्य आज के युग के सामने जटिल रूप में खड़े हो गये हैं । लेकिन नये कवियों का ध्यान उस ओर न जाकर नितान्त वैयक्तिक अनुभूतियों एवं समस्याओं की ओर खिंचता जा रहा है । यह बात तो अवश्य सच है कि कलाकार का केवल कला के लिए ही उत्तरदायित्व नहीं होता, बल्कि उसका अपने प्रति भी अवश्य कुछ उत्तरदायित्व एवं अधिकार होता है । लेकिन यह भी मानना ही होगा कि कलाकार का व्यक्तित्व सामान्य व्यक्ति के व्यक्तित्व से भिन्न होता है । उसकी दृष्टि व्यापक होती है, उसकी संवेदना अत्यधिक सूक्ष्म एवं गहन होती है । इसलिए कलाकार अपने माध्यम से युग को अभिव्यक्त करता है । वह युग में जीता है और युग उसमें । उसकी समस्यायें युग की समस्यायें होती हैं, उसकी चेतना, समष्टि की चेतना बन जाती है । इतनी विशेषताओं से युक्त कवि से नितान्त हल्केपन, हास्य-विनोद से युक्त, वैयक्तिक भाव-बोध युक्त रचनाओं की कल्पना नहीं करनी चाहिए । हाँ कुछ अंश का समावेश स्वीकार किया जा सकता है । प्रश्न यह है कि नया कवि अपने उत्तरदायित्व को भुलाकर उस मार्ग पर न चले । जब कि आज का व्यक्ति दोहरे सन्दर्भों में जी रहा है । एक ओर उसका व्यापक जगत, देश एवं समाज है, दूसरी ओर उसकी स्वयं की समस्यायें एवं दुर्बलतायें हैं । नव कवि से कुछ लोग,

कुछ विशेष की आशा की जाती है । नितान्त वैयक्तिक अनुभूतियाँ आज के युग की अर्द्ध सुप्त चेतना को झिंझोड़ कर नहीं जगा सकती । आज तो आवश्यकता है, ऐसी रचनाओं की, ऐसी दृष्टि की जो युग-चेतना की जागृत अभिव्यक्ति कही जा सके । विपिनकुमार अग्रवाल की एक कविता 'के प्रति' ऐसी एक कविता है जो कवि की नितान्त वैयक्तिक अनुभूति ही कही जा सकती है । सच तो यह है कि कवि की वैयक्तिक अनुभूति में न तो कोई विशेष बात है और न ही ऐसी अनुभूति की कोई कलात्मक उपलब्धि ही हो सकी है । दैनिक कार्यों में संलग्न कोई भी गृहिणी ऐसे अनुभवों से परिचित होगी । ऐसा लगता है कि अनुभूति का इतना स्तरीय प्रदर्शन अंतिम पंक्ति द्वारा चमत्कार पैदा करने के विचार से ही किया गया है[1] । नयी कविता युग की जागृत अभिव्यक्ति के रूप में हमारे सामने आई है, इसलिए उसका उत्तरदायित्व इतना सीमित और संकुचित नहीं माना जा सकता और न इस तरह हम कोई साहित्यिक- उपलब्धि ही कर सके हैं ।

व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और उसकी दिशा

युग-चेतना को जागृत अभिव्यक्ति देने के लिए वैयक्तिक स्वतन्त्रता की बात नयी कविता में उठाई गई है । युग जिन नित्य परिवर्तित होने वाली परिस्थितियों एवं समस्याओं में जी रहा है, उसके लिए

१... यूं ही दिन गुजरता है और रात आती है
थकन से चूर गुमसुम लेट जाता हूं
तब तो काम निपटेगा मन में बात आती है
तुम्हारी खाट की चद्दर अभी से हटाता हूं
सदियों बाद तुम्हारे लेटने की आवाज आती है
फिर न इसलिए तुम्हीं को अभी और पाता हूं ।

— नभी पर : विपिनकुमार अग्रवाल
— के प्रति, पृ० २०

वैयक्तिक सुधार एवं चेतना लाने का प्रयत्न किया गया है । प्रयोगवाद में व्यक्तिवादी एवं अहंवादी प्रवृत्ति ने युग-बोध के प्रश्न को तीव्रता से उठने नहीं दिया और अन्ततः इसी एकांगिता ने नयी कविता में व्यक्ति स्वातन्त्र्य की बात दूसरे ढंग से उठायी । नयी कविता में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की बात इस दृष्टि से उठाई गई है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने कर्तव्यों एवं अधिकारों के प्रति सचेष्ट एवं जागरूक हो, अपने युग,अपने देश , अपने समाज की समस्याओं को स्वयं समझ सकने योग्य बन सके । व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का अर्थ उच्छृंखलता एवं व्यक्तिगत स्वार्थों तक निहित नहीं है । नयी कविता प्रत्येक मानव को अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता देना चाहती है । इसके लिए ऐसा आत्मबल एवं दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता है कि वह असामान्य,असंगत,व्यवहार एवं व्यवस्था के प्रति आवाज उठा सके । किन्हीं संगत अथवा असंगत दबावों से डर कर घुटता,व टूटता अपना जीवन यों ही शेष न हो जाने दे ।

शायद नयी कविता के आलोचक भूल गये हैं कि नयी कविता में वैयक्तिक स्वातन्त्र्य को किस रूप में उठाया गया था । स्वतन्त्रता के बाद जो समाजव्यापी कुंठा एवं अवसाद परिलक्षित हुआ उसको दूर करने के लिए अनिवार्य था कि व्यक्तिगत स्तर पर ऐसा प्रयत्न किया जाय कि पर्याप्त चरित्र-बल एवं आत्मबल पैदा किया जा सके । इसलिए व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का उद्देश्य व्यक्ति के माध्यम से समाज की पीड़ा को समझना था । यद्यपि अधिकतर कवियों ने इस दृष्टि से रचनायें की हैं, लेकिन कुछ कवि ऐसे भी हैं, जो व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का अर्थ अपने तक ही सीमित रखते हैं ।उनके लिए उनका दुःख, उनकी पीड़ा, उनकी समस्यायें ही महत्वपूर्ण हैं । समाज के प्रति, देश के प्रति उनका कुछ भी दाय नहीं है । छायावादियों एवं प्रयोग-वादियों की व्यक्तिवादिता की आस्था नहीं बनती है । इसका अपवाद अवश्य स्वीकार किया जा सकता है । शमशेर बहादुर,अज्ञेय,गिरिजाकुमार माथुर

आदि का स्वर समाजोन्मुखी अधिक लगता है । यह सच भी है कि नयी कविता का अधिक स्वर वैयक्तिकता-प्रधान होता जा रहा है । ऊट-पटांग अनुभूतियों से कलाकार अपने लिए कोई उपलब्धि कर भी ले, लेकिन साहित्य एवं युग-बोध के परिप्रेक्ष्य में ये अनुभूतियां कोई उपलब्धि नहीं कही जा सकती हैं । आज का कवि इतनी जटिल समस्याओं के बोध रखकर भी क्यों एक ओर पुन: शिल्प के प्रति आसक्त हो रहा है और दूसरी ओर भाव पक्ष की ओर भी उसका वैयक्तिक दृष्टिकोण होता जा रहा है, इससे नयी कविता के भविष्य के प्रति आशंका होने लगती है और शायद मुक्ति-बोध के अनुसार हम समय-समय पर उठने वाले आक्षेपों और विरोधों से डरते हैं, क्योंकि किसी असंगत लगने वाले व्यवहार अथवा व्यवस्था की हमने निन्दा की तो हमें कहीं कोई राजनैतिक न कह दें, कोई हमें कम्युनिस्ट न कह दे अथवा कोई हमें कुछ और न कह दे।[१] इन्हीं सब बातों से आक्रान्त हम व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की बात तो करते हैं, लेकिन वैसी न दृष्टि ही दे पाते हैं न वैसे व्यक्तित्व का विकास ही कर पाते हैं । फलस्वरूप निरर्थक नितान्त वैयक्तिक अनुभूति को ही व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के अर्थ में लिया जाने

---

१ '... व्यक्ति स्वतन्त्रता की बात तो करते हैं, लेकिन वह स्वातन्त्र्य किस मानवीय उच्च आदर्श के लिए होता है या होना चाहिए, वह अपनी शून्य रिक्तता के धुएं में खो जाता है । आज के जीवन के जो बुनियादी तथ्य हैं..... हमें कोई राजनैतिक न कह दे, कहीं कोई हमारी कविता को गद्यात्मक न कह दे । संक्षेप में कवियों में कहीं सौन्दर्यवाद के नाम पर तो कहीं अन्य किसी नाम पर यह भय समाया रहता है ..... ।'

—'नयी कविता का आत्म-संघर्ष तथा अन्य निबन्ध'
गजाननमाधव 'मुक्तिबोध', पृ० ३२ ।

लगा है । लेकिन नयी कविता का शिल्प-नूतन रूप भरना जहाँ उसके अधिक दिनों तक साहित्याकाश में चमकते रहने का प्रमाण है, वहीं यह गलत दिशा उसे दिग्भ्रमित कर देगी और नयी कविता वादों तथा पुनरावृत्ति के कारण युग की सही अभिव्यक्ति भी नहीं कही जा सकेगी ।

वैयक्तिक स्वातन्त्र्य का नये कवियों ने इतना गलत अर्थ लगाया है कि प्रेम जैसी पवित्र भावना का इस सीमा तक कुत्सा प्रदर्शन किया है कि इन कवियों के अन्दर में छिपी दमित यौन भावना अनायास सामने आ जाती है । ऐसी मर्यादाहीनता तथा असंयत व्यक्ति-स्वातन्त्र्य द्वारा मानव-स्वातन्त्र्य के गम्भीर कार्य को कदापि सफल नहीं बना सकती है । इसलिए आवश्यकता है व्यक्तिस्वातन्त्र्य की भावना के पीछे छिपे मानव-प्रतिष्ठा के उद्देश्य को समझने की तथा उसके अनुसार नयी कविता को दिशा प्रदान करने की । वरना नयी कविता अन्य काव्य-धाराओं की तरह कुछ काल तक चमक दिखाकर विलुप्त हो जायगी ।

<u>व्यक्तिस्वातन्त्र्य : संकुचित दृष्टि</u>

यदि कविता का उद्देश्य अपने युग की विषम परिस्थितियों और मानव-मन की उथल-पुथल की सच्ची तस्वीर ही खींचना है तो प्रगतिवाद और नयी कविता की मौलिक दृष्टि में कुछ भी विशिष्टता एवं भिन्नता नहीं स्वीकार की जा सकती । इधर कुछ कवियों की दृष्टि प्रयोगवादियों की तरह दिखायी पड़ने लगी है । नयी कविता में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के पीछे मानव-स्वातन्त्र्य की भावना छिपी हुई है, ऐसा स्वीकार किया गया है, लेकिन यह पूर्णतया स्वीकार नहीं किया जा सकता कि नयी कविता में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की माँग मानव-स्वातन्त्र्य के महत्व उद्देश्य की पूर्ति कर रही है । क्योंकि आज जो निजी कवितायें नये कवि प्रस्तुत कर रहे हैं, उन्हें पाठक मानव-समस्या के सम्बन्ध से नहीं जोड़ पा रहे हैं । जो लगता है कि आध्यात्मिक एवं रहस्यात्मक मनोभावों से हीन होने पर भी उन्हें

छायावादियों से जोड़ दिया जाय या अपनी ही समस्यायें, अपनी ही कुंठा, पीड़ा, निराशा का चित्रण करते-करते कोई घोषणा करने वाले नये कवि प्रयोगवादियों की परम्परा से पुनः जोड़ दिये जायं। अधिक वैयक्तिक उपनयन के कारण नयी कविता में आत्मगत विशेषीकरण की प्रवृत्ति नयी कविता के व्यापक चिरन्तन दृष्टि को आघात पहुंचाती है, जो विश्व व्यापकीय स्तर पर मानव-कल्याण एवं मांगलिकता की भावना से जुड़ी हुई है। भावपक्ष के प्रति वैयक्तिकता का आग्रह नयी कविता के लिए हितकर नहीं हो सकता।

परम्परा-मुक्ति और दायित्व

व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की बात से ही नये कवियों ने परम्परा से विनिर्मुक्त होने की बात भी सोची। नयी कविता के पूर्ववादी काव्य-धाराओं की लम्बी परम्परा थी। इन वादों के नियमानुसार ही कविता का बाह्य एवं आन्तरिक स्वरूप तथा स्वभाव परिचालित होता था, लेकिन नयी कविता युग की असीम जटिलताओं एवं परिवर्तनों के समाधान के रूप में सामने आई है, इसलिए इसने पूर्व प्रचलित सभी काव्य-परम्पराओं को अस्वीकार कर दिया। युग की दिन-प्रतिदिन जटिल होती अन्तहीन समस्याओं ने अभिव्यक्ति के माध्यम में भी आमूल परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गई। वर्गीकृत सम्वेदना एवं चेतना के द्वारा आज के युग की समस्या को नहीं समझा जा सकता था, उसके लिए व्यापक एवं गहन दृष्टि की आवश्यकता महसूस की गई, अतः नयी कविता ने काव्य के सारे बन्धन ढीले ही नहीं किये बल्कि उनसे मुक्ति भी पा ली। अभिव्यक्ति की पूर्णता के लिए नयी भाषा का प्रयोग किया। आवश्यकतानुसार शब्दों को तोड़ा, मरोड़ा भी, परन्तु इन सब के बावजूद भी भाषा को सहज एवं स्वाभाविक

बनाने के विचार से ही ऐसा किया गया । काव्य का सैद्धान्तिक परम्पराओं से मुक्ति लेने के पीछे नये कवियों का आशय अनुशासनहीनता से नहीं था, क्योंकि नियमबद्ध कविता से स्वतन्त्र कविता अधिक अनुशासन की मांग करता है, अतः नये कवियों का स्वतन्त्र होना अनुशासनहीनता होना कदापि नहीं था । युग-बोध की समग्रता के लिए सभी पुरानी परम्पराओं का खण्डन करना अनिवार्य समझा गया, क्योंकि यदि हम परम्परा के प्रति विशेष मोह नहीं रखते और दोषों के प्रति अधिक सजग रहते हैं तो दोषों के माध्यम से हम कुछ नया, कुछ सही करने का प्रयत्न कर सकते हैं । इस धारणा से तो परम्परा की अवहेलना करना उचित माना जा सकता है, लेकिन जो कुछ पुराना है सबसब व्यर्थ और खराब नहीं माना जा सकता । अच्छे-बुरे का निर्णय कर सकने के लिए पर्याप्त आलोचना-दृष्टि एवं तर्क-वितर्क की क्षमता भी होनी चाहिए । आज नये के आग्रही ऐसे कवि भी साहित्याकाश में पैदा हो गये हैं जो पुराने की जड़ें उखाड़ कर फेंकने को ही अपना दायित्व समझ रहे हैं । कुछ नया रचने और कुछ नया मनवाने के फेर में पड़े ये न कुछ उपलब्धि ही कर पाते हैं और न तो कुछ नया ही दे पाते हैं ।

नयी कविता छायावादी भावुकता से पूर्ण बहिर्मुखी यथार्थवाद से भिन्न, यथार्थ दृष्टि रखती है । वह यथार्थ के कंकरीले धरातल पर बिखरती हुई प्रत्येक वस्तु के प्रति एक खुली एवं निरपेक्ष दृष्टि रखती है । कोरी कल्पना का स्थान तर्क-वितर्क युक्त आलोचना-दृष्टि ने ले लिया है । कविता ने सभी पूर्व काव्य-परम्पराओं से मुक्ति ले ली है । काव्य के रूप वस्तु तत्व के साथ-साथ शिल्प तत्व को भी नये रूप में ग्रहण किया है । आज सारी पूर्ववर्ती परम्पराओं में भारी परिवर्तन एवं नवीनता दिखाई देती है । आज सत्य-शिव-सौन्दर्य की दृष्टि में व्यापक विस्तार एवं परिवर्तन परिलक्षित होता है । सत्य-शिव-सौन्दर्य के आधार पर ही कोई वस्तु महत्वपूर्ण नहीं

बल्कि सत्य के साथ असत्य, शिव के साथ अशिव और सौन्दर्य के साथ असुन्दर भी अपने यथार्थरूप में स्वीकार्य है । इसीलिए आज जहां जीवन यथार्थ से उद्भूत कठोर एवं क्रान्तिकारी पक्ष को अभिव्यक्ति मिल रही है, वहीं कमनीय एवं स्निग्ध पक्ष को भी अभिव्यक्ति मिल रही है । सामाजिक सम्बन्धों की परम्परा में भी बहुत परिवर्तन दिखाई देता है । व्यक्तिगत आचार-विचार इतने व्यापक एवं परिवर्तित हो गये हैं कि नैतिकता की व्याख्या कर सकना असम्भव-सा हो गया है । कहना यह चाहिए कि कोई भी सामाजिक अथवा व्यक्तिगत आचार-विचार इस परिवर्तन की आंधी में स्थायित्व नहीं ग्रहण कर पा रहे हैं । आज कोई आचरण, कोई सिद्धान्त उचित लगता है तो कल कोई । इसलिए नयी कविता ने सारी परम्परायें तोड़, मुक्त-प्रवृत्ति को अपनाया है । लेकिन यह बात मैं पहले ही कह चुकी हूं कि किसी सीमा या नियन्त्रण में रहने से किन्हीं सिद्धान्तों और परम्पराओं से विनिर्मुक्त होने पर अधिक अनुशासन एवं सन्तुलन की आवश्यकता होती है । आज नयी कविता ने परम्परा से विनिर्मुक्तता तो ले ली है, लेकिन यह सर्व स्वतन्त्र मुक्तप्रवृत्ति युग के और काव्य के गहन दायित्व को क्या निभा रही है ? क्या काव्य में पूर्ण अनुशासन एवं मर्यादा का निर्वाह हो रहा है ?

<u>पुनः परम्परा की ओर झुकाव</u>

कुछ कवियों को छोड़कर लगता है नयी कविता फिर परम्परा गढ़ने की तैयारी कर रही है । जिस मानव-कल्याण की भावना से नयी कविता ने पूर्वकालीन काव्य-परम्पराओं के बन्धन तोड़ कर रख दिये थे उन्हें फिर से बांधने का प्रयास हो रहा है । मानव-मन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तर्भावों का उद्घाटन जिस नवीनता के साथ हो रहा है, उससे आज के फटे-टूटे, झींकते, विशृंखलित होते मानव को कोई भी समाधान नहीं मिल

सकता ,बल्कि पुनरावृत्ति से काव्य की दृष्टि उबाने वाली तथा बासी एवं निष्क्रिय लगने लगती है । पुनरावृत्ति नयी कविता के कवियों की प्रतिभा की ह्रासशीलता का लक्षण है, उनकी दृष्टि एवं संवेदना-शक्तियों के चुकने का प्रमाण है और जाहिर है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाने पर नयी कविता का जो अधिक समय तक साहित्य-क्षेत्र में टिक सकना असम्भव है । जब पूर्ववर्ती परम्परा को तोड़कर हम मुक्त दृष्टि लेकर युग की चुनौतियों के सम्मुख उतरे हैं तो हमें स्वयं किसी परम्परा को नहीं बनाना चाहिए । आज सर्वत्र एक-सी संवेदना, एक-सी दृष्टि ,एक सी ही समस्याओं का प्रस्तुतीकरण हो रहा है, लेकिन कोई विलक्षण केन्द्रीय दृष्टि नहीं दे पा रहा है,जिससे युग को इन समस्याओं से मुक्ति मिले । बाहर से हम परम्पराओं की दीवार गिराना चाहते हैं,लेकिन अन्दर-ही-अन्दर नयी तरह की परम्परा की दीवारें चुन रहे हैं । यह परम्परा की दीवार नयी कविता के भविष्य के लिए घातक सिद्ध होगी । आज के युग-बोध से कुछ गढ़ने के लिए नये कवियों को विशेष प्रकार की अन्तर्दृष्टि की और आलोचना की आवश्यकता है । यह सत्य है कि आज का कवि अपने चारों ओर हो रही उथल-पुथल से प्रभावित होता है, संवेदित होता है और कुछ कर सकने के लिए प्रेरित भी होता है, लेकिन इतना ही नहीं होना चाहिए । इसके अतिरिक्त उसे आज के युग में ऐसी केन्द्रीय और क्रान्तिकारी दृष्टि भी देनी चाहिए जिससे सब की तरफ छाया विषमताओं,विघटन एवं उथल-पुथल का कुहासा छट जाय न कि सब कवि उस कुहासे में घिर जायें ।

इसलिए नयी कविता को इस संक्रमणशील युग में बहुत सम्हल-सम्हल कर कदम रखने हैं । ऐसा न हो कि परम्पराओं से विनिर्मुक्तता लेते-लेते फिर से किसी पुरानी परम्परा से न जोड़ दी जाय या किसी नयी परम्परा का निर्माण कर दे । साधारणीकरण का

सामाजिक प्रेषणीयता के प्रश्न को किसी हठवादिता वश न भी उठाया जाय तो भी कविता मानव-सन्दर्भों से न केवल सम्पृक्त हो, बल्कि मानव-समस्याओं का, मानव के पतन का निदान भी कर सके । वैयक्तिकता से सामाजिकता तक जाने के लिए ऐसी अन्तर्दृष्टि पैदा करे जो उसे 'आत्म-मुग्ध' बनने से बचाये । 'कुमार विमल की आशंका[1] बहुत अंशों तक नयी कविता पर सत्य ही उतरती है' । इन सब अतियों से बचकर नयी कविता यदि चलेगी तो अवश्य ही दिन-प्रतिदिन प्रगति-पथ प्रशस्त कर सकती है, वहाँ अन्यथा ही कालग्रस्त होने की सम्भावना उद्भूत हो सकती है ।

यथार्थपरकता : कितनी गहरी ?

पूर्ववर्ती परम्पराओं से विनिर्मुक्तता ग्रहण करने के पीछे नये कवियों की यथार्थपरक दृष्टि ही थी । द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक एवं उपदेशात्मक यथार्थवादिता, प्रगतिवादी कोरी भावुकता पूर्ण, नारेबाजीयुक्त यथार्थपरकता तथा प्रयोगवादी वैयक्तिक यथार्थ परक दृष्टियों से नयी कविता की यथार्थपरक दृष्टि बहुत अधिक भिन्न एवं विशिष्ट ढंग की है । नयी कविता के कवियों की दृष्टि सम-सामयिक युग-बोध से संचालित है । जीवन-जगत का खुली आंखों और खुली संवेदना

---

1. "नयी कविता प्रयोगवाद के दोषों और अभावों से कुछ बचकर चलने की चेष्टा कर रही है । किन्तु उसकी यह चेष्टा पूर्ण सफल नहीं है, क्योंकि एक ओर उसमें शिल्पपक्ष के प्रति अत्यधिक आग्रह है, दूसरी ओर उसके भावपक्ष के प्रति अत्यधिक वैयक्तिक उपलब्धि है । इसलिए नयी कविता में साधारणीकरण के बदले विशेषीकरण के प्रति मोह मिलता है । फलस्वरूप प्रतीकों, बिम्बों और अभिव्यक्ति-भंगिमाओं के प्रति अति वैयक्तिक रुचि के कारण नयी कविता 'आत्ममुग्ध' कविता बन गई है ।"

—नयी कविता नयी आलोचना और कला"—कुमार विमल (प्राक्कथन)

से नंगा संस्पर्श है । यथार्थ की स्वीकारोक्ति में किसी भी प्रकार के माध्यम अथवा उपकरण की आवश्यकता नहीं महसूस की गई[1] । नयी कविता की पूर्ववर्ती कविताओं में यथार्थ चित्रण की अनिवार्यता तो यदा-कदा स्वीकार की गई थी, लेकिन जिस महत् उद्देश्य एवं युग-बोध की दृष्टि से नयी कविता ने यथार्थ को स्वीकारा है, वह एक बड़े नैतिक साहस का परिचायक है । नये कवियों के लिए भोगा, कटु, दलित-गलित उसी तरह स्वीकार्य है, जिस तरह सुन्दर-शिव एवं सत्य होता है । आज समस्त विश्व में हो रही शुभ-अशुभ, मानवीय-अमानवीय, अनहोनी घटनाओं ने भयानक वातावरण तैयार कर दिया है । मृत्यु की चपेट में किसी भी समय आ जाने की आशंका ने मनुष्य को अवसरवादी बना दिया है । सर्वव्यापी अव्यवस्था ने नये कवियों को नये ढंग से परिस्थितियों पर सोचने एवं सामना करने के लिए प्रेरित किया है । फलस्वरूप नये कवियों ने सारे आचार-विचार, अनुशासन, नैतिकता की संकुचित सीमाओं का अतिक्रमण कर दिया है । भ्रष्टाचार के प्रति, अवसरवादिता के प्रति आवाज बुलन्द करने में नये कवियों ने अपनी बड़े ही साहस का परिचय दिया है, यही नहीं नये कवियों ने अपनी

१ तुम्हारे शब्द तुमको सलामत हों
क्योंकि सत्यान्वेषी मानवरचित शब्दों का बोझा नहीं ढोयेगा
वह कच्ची नई उम्र की पत्तियों से
स्वर व्यंजन सीखेगा
कचनार के फूलों से शब्द-ज्ञान

....

वह मुक्त है-मुक्त उसकी प्रकृति है
दृष्टि और गति ।

अतुकान्त : लक्ष्मीकान्त वर्मा
'एक नया आवाज की मांग' पृष्ठ [illegible] ।

कमियों को ओर अपनी परम्पराप्रियता के मोह को भी त्यागने का प्रयास किया है[१] ।

यथार्थ के प्रति व्यापक एवं निरपेक्ष दृष्टि ने नये कवियों की अभिव्यक्ति की समस्याओं को और भी जटिल कर दिया है, क्योंकि समाज-व्यापी भ्रष्टाचार एवं कमियों को तरफ यदि वह संकेत करता है अथवा विरोध करता है तो उसके मन में भय रहता है कि कहीं उसे कोई विशेष वाद, पक्ष से न जोड़ दिया जाय । फलतः गुटबन्दी का भय नये कवियों को कवि-धर्म से च्युत कर देता है । केवल यथार्थ को समझने एवं देखने भर शक्ति की आवश्यकता नये कवियों को नहीं है । इसके स्थान पर खुली सम्वेदना के साथ-साथ निष्पक्ष, निर्भीक, ठोस एवं मानवीय रूप को प्रस्तुत करने की भी आवश्यकता है । किसी प्रकार के अपमान अथवा गलत विषयों से जुड़ने का भय नये कवियों को इसलिए भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि यदि ऐसा नयी कविता में होता रहेगा, तो युग की यथार्थ अभि-व्यक्ति सही रूप में नहीं हो पायेगी । आज अधिकतर कवि तरह-तरह के मान-अपमान के भय से सही बात कहने में हिचकते हैं या सही बात को कहा

---

१ आस्था की नाव
यह उल्टी हवाओं में पिछड़े मस्तूल
यह भटकन की धूल

....
सच मानो हम इसके विधायक नहीं,
किन्तु हम विरासत के रोगी हैं
क्योंकि जिस विकलांग परम्परा ने
हर उगते ज्योति पिण्ड की तिल-तिल कर हत्या की
उसी के हम वंशज हैं... ।
-- नयी कविता अंक ८, सं० डा० जगदीश गुप्त एवं विजयदेवनारायण साही
राहु के बेटे -- मदन, पृ० ६५ ।

रूप में प्रस्तुत करने में कतराते हैं । नयी कविता के भविष्य के लिए यह विधि पर्याप्त एवं उचित नहीं मानी जा सकती । इसलिए नयी कविता यदि अपने युग की प्रतिनिधि कविता होने का श्रेय लेना चाहती है तो उसे यथार्थ से सामना करने के लिए उचित एवं विस्तृत दृष्टि का विकास करना होगा । तर्क-वितर्क एवं उचित आलोचना के द्वारा समाज में, देश में और विश्व में व्याप्त बुराइयों एवं समस्याओं का पर्दा-फाश करना होगा तथा इन्हें दूर करने का भी प्रयास करना होगा । केवल ज्वालामुखी भड़का कर छोड़ देने से कोई समस्या समाधान नहीं पा सकती । उसे हल करने के लिए ज्वालामुखी को शान्त करने का भी प्रयत्न करना चाहिए । आज नये कवियों के आगे युग-जीवन बाहें फैलाये खड़ा है । जीवन-जगत का कोई भी पक्ष नये कवियों के विषय से बाहर नहीं रह गया है । अब तो न प्रगतिवादी साम्प्रदायिक संकीर्णता ही नये कवियों को अपनी ओर खींचती है और न प्रयोगवादी व्यक्तिवादिता ही, इसलिए वह सभी रूढ़ियों और परम्पराओं को तोड़कर खुली दृष्टि एवं पूर्ण मुक्ति से मानवीय स्तर पर हर सही-गलत, भोंड़ा-कुरूप सहने के लिए तैयार है ।

इतने बड़े साहस के साथ युग की अनिवार्यता में निस्संकोच यथार्थ दृष्टि अपना लेने के बाद इधर कुछ कवि नितान्त वैयक्तिक अनुभूतियों एवं समस्याओं का चित्रण यथार्थ दर्शन के मोह से करने लगे हैं । ये व्यक्तिगत अनुभूतियां और निजी समस्यायें व्यक्ति की अपनी समस्यायें हो न बनकर रह जायें । ये व्यक्तिगत स्थितियां व्यक्तिगत स्तर से उठकर मानवीय स्तर की बन सकें तभी व्यक्तिगत यथार्थ अनुभूतियां कुछीन यथार्थ को प्रस्तुत कर सकती हैं । आज हमारा उद्देश्य व्यक्तिगत समस्याओं के माध्यम से मानव-समस्या[१] को ही प्रस्तुत करना है । यह बात नये कवियों को भूलनी नहीं चाहिए ।

---

१ चित्रित कर निज समस्या वस्तुत: एक वीभत्स मानव समस्या के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत हो कि पाठकों की दृष्टि, उस निज समस्या को मानव-समस्या के रूप में देखे ... मानव समस्या की खिड़की में से जीवन जगत का अवलोकन करे ।
नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबन्ध - गजानन माधव मुक्तिबोध पृ०१४४५

यथार्थ के नाम पर नये कवि बड़ी-बड़ी घोषणायें करते नजर आते हैं । भूखे, आर्तों और दरिद्रों के साथ स्वर-में-स्वर मिलाकर सस्वर भ्रष्टाचार, अनीति का विरोध करते हैं । समय-समय तीव्र एवं कटूक्तियों से इन बुराइयों की जड़ें तक उखाड़ने का दावा करते हैं । द्रष्टा, उन्वेष्टा और सम्प्राता बनने का दम्भ भरते हैं । लेकिन जब स्वयं इन दुःस्थितियों से उबर आते हैं तो उन्हें फिर वह सब कुछ नहीं दिखता, लगता है तब उनका द्रष्टा, उन्वेष्टा रूप उसी तरह विलुप्त हो जाता है,+ जैसे वर्षा के में ओले अपना रूप दिखाकर नष्ट हो जाते हैं । नयी कविता की यदि यही स्थिति रही तो यथार्थ चेतना को 'अवसरवादी यथार्थ चेतना' नाम देना पड़ जायगा ।

ठोस मानवीयता : गहन उत्तरदायित्व

आज मानव दोहरे सन्दर्भों में अपने युग को जी रहा है । एकमें वह स्वयं है, उसकी अपनी समस्यायें हैं, अपना दुःख-सुख है दूसरे में उसका व्यापक समाज, देश एवं विश्व है । इन सब में फंसा मानव मुक्ति चाहता है । अपने अधिकारों की अवहेलना नहीं होने देना चाहता । अपने स्थान के प्रति उसके मन में चाह है । इन सब प्रश्नों ने नये कवियों को संवेदित किया है और मानवता के विषय में सोचने को बाध्य किया है । देश-विदेश में मानवतावादी विचारणा को व्यापक एवं सार्वदेशीय स्तर प्रदान किया है । प्रत्येक देश के प्रबुद्ध रचनाकारों ने मानवतावादी विचारणा के अनुसार कविता में अपनी दृष्टि प्रस्तुत की है । मानव को उसकी समग्र प्रकृति एवं विशिष्टता के अनुसार समझने का प्रयत्न किया गया है ।

नयी कवितायें दिन-प्रति-दिन दृढ़ एवं स्पष्ट होती जा रही हैं और यदि नयी कविता का प्रवाह ठोस मानवीयता को उपलब्ध करा सकेगा तो अवश्य नयी कविता युग की महत्त्वपूर्ण कविता कही जायगी । 'वसुधा को एक परिवार मानें' वाला कवि यदि इसी महत् एवं

कल्याणकारी भावना से अपनी संवेदना एवं चेतना को सजग रखेगा तभी वह जन-जन में आत्म-सम्मान की भावना को उपलब्ध करा सकेगा, तभी हर व्यक्ति अपने आचरण के प्रति , अपने कर्तव्य व एवं अधिकार के प्रति अधिक ईमानदार एवं निष्पक्ष दृष्टि विकसित कर सकेगा । इसीलिए नयी कविता आने वाले युग के मानव की विविध सम्भावनाओं की चिन्ता करना युग-बोध की अनिवार्यता मानती है । आसन्न मृत्यु की भावना से युग इस सीमा तक भयभीत है कि चारित्रिक पतन एवं अनैतिकता बढ़ती हो जा रही है, हरतरह की अव्यवस्था एवं अनीति का बोलबाला है, मानव मन:विकृतियों का पुंज बनता जा रहा है । ऐसे में नये कवियों की जिम्मेदारी बढ़ गयी है । इसलिए युग की विषमताओं में रमकर, उसकी संवेदना एवं अन्तर्दृष्टि द्वारा अपने अन्दर झेलकर ऐसे समाधान प्रस्तुत करना चाहिए था , जो मानव को टूटने से बचा ले,उसे विशृंखलित होने से रोक ले । बिना विकृतियों को हटाये हम नया कुछ नहीं दे सकते हैं । मानव-मन की कुंठा,वर्जना,पीड़ा को दूर किये बिना हम नये मनुष्य की प्रतिष्ठा नहीं कर सकते । भाग्यवाद,बाह्यवाद,धर्म-कर्म,अन्ध-विश्वास की संकीर्ण रूढ़ियों को तोड़कर मानव में कर्म के प्रति सहज आस्था जगाने की आवश्यकता है और यह सहज आस्था जगाने का कार्य सहज नहीं है, क्योंकि शताब्दियों से हम जिस मन:स्थिति में जीते आये हैं,उस संस्कार को एक झटके से नहीं अलग किया जा सकता है । इसके लिए संस्कार एवं परम्परा की निरर्थकता को खोलकर रखना होगा तथा वर्तमान युग की विषम परिस्थितियों को खोलकर सामने रखना होगा । अपनी कविताओं से मनुष्य में सचेतता एवं अपने युग को जीने योग्य बनाने की दृष्टि देनी होगी । लेकिन जिन कवियों में स्वयं ये दृष्टियां विकसित नहीं हुई हैं वे युग के मानव में भला क्यों व ये दृष्टियां पैदा कर सकेंगे ? मानव-समस्या को व्यक्तिगत समस्या समझकर बनाकर देखना चाहिए न कि व्यक्तिगत समस्याओं में पड़कर नयी कविता के उद्देश्य को ठेस पहुंचानी चाहिए ।

आज कितने ही नये कवि हैं,जो व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य का अर्थ निरर्थक अनुभूतियों,निजी समस्याओं और असम्बद्ध अभि-व्यक्ति से लगाते हैं । फलस्वरूप नयी कविता में नित्य-नये प्रयोग होते रहते हैं,उनका जीवन के मूलभूत तथ्यों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता है । मानव-मन के ऊहा-पोहों,आन्तरिक व विसंगतियों, समाज में सामन्जस्य स्थापित न कर पाने की विवशता, विश्व में हो रही घटनाओं से उत्पन्न बेचैनी को अभिव्यक्ति देने, उसे किसी समाधान तक ले जाने के लिए नये कवियों को कुण्ठावादिता,कूटनीति, अवसरवादिता आदि के कुचक्र से बचकर ज्ञानात्मक एवं संवेदनात्मक रूप से मानव-मन की गहराई तक जाना होगा । उसके अन्दर मच रहे तूफान को अपने अन्दर झेलना होगा,उसकी पीड़ा को स्वयं सहना होगा , सहने की पीड़ा की वास्तविकता के साथ अनुभव करना होगा, तभी ये मानव की व्याधियों का निदान प्रस्तुत कर सकते हैं ।

अन्त में नयी कविता के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि आज के मानव-मन एवं जगत् की दिन-प्रति-दिन जटिल होती परिस्थितियों एवं समस्याओं को समझने तथा दूर करने के लिए नये कवियों को बहुत ही सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि एवं संवेदनात्मक अनुभूति की आवश्यकता है । प्रस्तुतीकरण के लिए विशद् आलोचनात्मक दृष्टि तथा सशक्त भाषा एवं माध्यम की आवश्यकता है । आज की कविता कुछ ही शब्दों में सीमित होकर रह गई है । इसके अतिरिक्त सशक्त एवं तीव्र बात कहने में जितनी तीव्रता एवं आक्रोश व्यक्त होना चाहिए,उतना नहीं हो पाता,फलस्वरूप कवि जिस तीव्रता के साथ किन्हीं विचारों को अपने अन्तर्मन में झेलता है, उतनी तीव्रता से व वह पाठक तक नहीं पहुंचा पाता । अतः विचारों की सार्थकता नहीं प्रकट हो पाती है । इसलिए नयी कविता यदि मानव-विशिष्टता एवं उसकी प्रतिष्ठा तथा ठोस मानवीयता की स्वीकारोक्ति के

लक्ष्य को लेकर चलने का दावा भरता है तो उसे पुनरावृत्ति से बचना होगा । मानव को उसके सहज स्वभाव एवं प्रकृति के अनुसार समझना होगा । अपने देश की समस्याओं एवं प्रकृति के अनुसार मानवीय-समस्याओं को हल करना होगा । यह बात और है कि जो समस्यायें दूसरे देशों की समस्याओं से मिलती-जुलती हैं, उनके समाधान के लिए अन्य देशों की दृष्टि को भी स्वीकार कर सकते हैं । नये कवियों को उन खतरों से बचना होगा, जो अन्य देशों में मनुष्य की समस्याओं को हल करने की पद्धतियों से पैदा हो गये हैं । पश्चिम में यांत्रिकता, समाजवादी व्यवस्था एवं अत्याधुनिक सभ्यता से जो खतरे एवं विघटन देखने में आये हैं, उन स्थितियों को नये कवियों को भारतीय परिप्रेक्ष्य में नहीं लागू करना चाहिए । अपने देश के स्वभाव, अपने समाज की समस्याओं को ध्यान में रखकर नये मानव की समस्या को हल करने का प्रयत्न करना उचित होगा ।

क्षणानुभूति :
(शाश्वत के सन्दर्भ में चेतना की नयी उपलब्धि या संकुचन

जीवन की गति आज तीव्रता की ओर जा रही है । सामाजिक और राजनैतिक क्षितिज पर घटनायें इस तीव्रता के साथ घटित हो रही हैं कि जीवन में शाश्वत-मूल्यों के सहारे टिक पाना असम्भव हो गया । इसके अतिरिक्त यथार्थपरक जीवन-दृष्टि के कारण युग-युग से शाश्वत माने जाने वाले सिद्धान्तों एवं मूल्यों को आज के क्षण-प्रतिक्षण बदलते जीवन के नए परिप्रेक्ष्य को नकार कर स्वीकार नहीं किया गया । आज के युग की समस्यायें बहुमुखी समस्यायें हैं । इन समस्याओं का क्षेत्र देश एवं जाति के भेद को मिटा कर सर्वव्याप्त हो चुका है । समाज, राजनीति एवं अर्थ से सम्बन्धित समस्यायें नये मानव की समस्यायें हैं । इनसे शाश्वत मूल्यों की संगति बैठना सम्भव नहीं था । प्रौद्योगिक विकास, वैज्ञानिक चमत्कारिक खोजों एवं उपलब्धियों और नयी-नयी समस्याओं ने भी शाश्वत कहे जाने वाले सिद्धान्तों एवं मूल्यों के

विषय में प्रश्नचिन्ह लगा दिए हैं । विज्ञान की चमत्कारी खोजें जो एक ओर मानवता की चरम विजय की घोषणा करती नजर आ रही थीं, वहीं वे मानव-शक्तियों पर प्रश्नचिन्ह बन कर खड़ी हो गई हैं । मानव ने स्वयं अपने हाथों अपने पैर काट लिये हैं । परिणाम सामने है कि आज जिस संत्रास एवं आकस्मिक काल ग्रसित होने का भय चारों तरफ व्याप्त है, उसने मानव को जीवन के एक-एक क्षण के प्रति भी मोह पैदा कर दिया है । जीवन के प्रति इस तरह का मोह प्रयोगवाद के अतिरिक्त अन्य पूर्ववर्ती काव्य-धाराओं में नहीं मिलता । प्रयोगवाद में क्षण के प्रति यह मोह भोगवाद की ओर इशारा करता है,[1] लेकिन नये कवियों ने क्षण के महत्त्व को किसी विशेष उद्देश्य एवं सर्जनात्मकता के लिए स्वीकार किया है । क्षण के प्रति नये कवियों का मोह जीवन की समग्रता के साथ स्वीकार करता है । जीवन को सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टियों से देखने का यह ढंग नयी कविता की उपलब्धि ही कही जायगी । अब तक की काव्य-धाराओं में जीवन के एक-एक क्षण को कभी भी स्वीकार नहीं किया गया है । आज कवितामात्र भावात्मक प्रक्रिया नहीं है, वह तो कवि के चिन्तन, अनुभूति और विवेक के पथ से होता हुआ अभिव्यक्ति पाती है । इसलिए इस सर्जनात्मक प्रक्रिया में न जाने कौन-सा क्षण कवि की अनुभूति को 'घनी धुंध' से मुक्त कर दे, अनन्तर चाहे उसी धुंध में पुन:

---

1 'इस क्षणवादी विचारधारा के अनुसार जिंदगी का एक क्षण जो व्यक्ति को सुख एवं तृप्ति प्रदान करता है— शेष सारे जीवन से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है । वह अपने में इतना पूर्ण एवं सत्य है कि उसे भोग लेने के पश्चात् भविष्य में और भी अधिक आशा रखना भूला है । वस्तुत: यह क्षणवादी विचारधारा ही प्रयोगवादी कवि को भोगवाद की ओर प्रेरित करती है, .. ।'

—नया हिन्दी काव्य — डा० शिवकुमार मिश्र

प्रयोगवादी काव्य, पृ० २२८

विलीन हो जाये, लेकिन उस क्षण मात्र की चमक में हो सकता है कवि को आलोक, रस तथा चिरन्तन दृष्टि तक मिल जाय । इसलिए नया कवि अपने युग को और जीवन-जगत की हर एक परिस्थिति के साथ एक-एक क्षण जीता है । कभी उससे विरक्त होता है तो कभी अनुरक्त । समूची जीवन-प्रक्रिया में न जाने कितने क्षण, कितनी स्थितियाँ और कितने पक्ष हैं जो आपस में प्रत्यक्षत: अथवा अप्रत्यक्षत: सम्बद्ध होते हैं । लेकिन बाहर से देखा लगता है कि जीवन-प्रक्रिया और रचना-प्रक्रिया अलग-अलग ढंग से चलती है और कभी अकस्मात् रचना का क्षण रहस्यमय ढंग से उदित हो जाता है । जब जीवन और रचना-प्रक्रिया आपस में सम्बद्ध हैं तो क्षण की महत्ता का अर्थ सीमित एवं संकुचित दृष्टि से नहीं लेना चाहिए । कुछ कवि क्षण की महत्ता को मात्र चमत्कार अथवा निरर्थक अनुभूति की प्रस्तुतीकरण के लिए स्वीकार करते हैं । मात्र खिलवाड़ अथवा आनन्द के लिए निरर्थक क्षणों का रसास्वादन नयी कविता में कोई उपलब्धि नहीं करा सकता । जब जीवन-प्रक्रिया एवं रचना-प्रक्रिया सब सम्बद्ध है तो हमें जीवन की सर्जनात्मकता के लिए क्षणों का महत्व स्वीकार करना चाहिए । नये कवियों को उस क्षण की महत्ता स्वीकार करनी चाहिए, जो भूत-भविष्य से कटा हुआ अर्थहीन न हो । अर्थयुक्त क्षणों में अनुभव की सारी तीव्रता, सारी संवेदना घटित होती है इसलिए सर्जनात्मकता के लिए नये कवियों ने क्षण के महत्व को जिस तरह स्वीकारा था, उसी तरह उसे आगे बढ़ाने की आवश्यकता है,[6] न कि क्षण के महत्व को महज नया प्रयोग मानकर भुला देने की आवश्यकता है ।

नये कवियों ने प्रेम-विषयक कविताओं में भी क्षणों की महत्ता स्वीकार की है, यह तो सत्य है कि जीवन की समग्रता में हास्य भी है, पीड़ा भी है, प्रेम भी है, घृणा भी है और गम्भीर उत्तर-दायित्व की भावना तथा मुक्त प्रकृति भी, इसलिए क्षण को किसी भी पक्ष में महत्वपूर्ण माना जा सकता है, लेकिन शर्त यह है कि उसकी शक्ति चारित्रि

कलात्मकता में हो, सर्जनात्मकता में हो, ऊल-जलूल निरर्थक भाव-बोध को प्रस्तुतीकरण के लिए नहीं। नये कवि यदि शब्द के लिए अर्थ को समझने में भूल न करें तो शब्द के अनुभव में सारा जीवन-जगत् भूत, वर्तमान, भविष्य के साथ समाहित हो सकता है।

बौद्धिकता या अतिबौद्धिकता ?

नयी कविता बौद्धिकता से अनुप्राणित है। आज यह बात नयी कविता को समझने वाले पाठक एवं आलोचक सभी स्वीकार करते हैं। नयी कविता की पृष्ठभूमि में, सामाजिक, राजनैतिक एवं विश्वव्यापी वे समस्यायें थीं, जिन्होंने प्रबुद्ध रचनाकारों को प्रभावित किया है। समाजव्यापी अराजकता एवं पलायनवादी प्रवृत्ति ने नये कवियों को अतिरिक्त बौद्धिक चेतना-दृष्टि दी है। जिन विषम परिस्थितियों में आज का मानव जी रहा है, उसकी अपनी समस्यायें तो हैं ही, विश्व के कोने-कोने में होने वाली घटनायें भी उसको प्रभावित करती है, व्याकुल करती है, एक ओर अपने समाज की अव्यवस्था, राजनैतिक षड्यन्त्र और दिन-प्रति-दिन गिरती हुई आर्थिक स्थितियों ने तो व्यक्ति के मन को कुंठा, अवसाद एवं निराशा से भरा ही है, दूसरी ओर विश्व-क्षितिज पर होने वाली अमानुषिक घटनाओं ने भी व्यक्ति-मन को भयावह धारणाओं से आक्रान्त कर दिया है। इन सब कारणों से आज के व्यक्तित्व में सन्तुलन, अनुशासन की कमी आती जा रही है। दिन-प्रति-दिन वर्जनायें बढ़ती जा रही हैं। मानवता के लिए भारी खतरे तैयार हो रहे हैं। सारी परिस्थितियों के बदल जाने पर भी आज भी मनुष्य दूसरों के दिखाये मार्ग पर चल रहा है, देवता, भाग्यवाद, मोक्ष, पाप-पुण्य के नाम पर अंधास्था को पकड़े हुए है, इस स्थिति में न तो नया-पुराना, खण्डित-खण्डित छूट ही पा रहा है और न नया अपनी जड़ें जमा पा रहा है, सारा युग संक्रमण ग्रस्त हो रहा है, ऐसे में नये कवियों ने अपने

युग की व्यापक अन्तर्दृष्टि आलोचना एवं तर्क-वितर्क युक्त सम्मतियों से देखा, समझा और उसके लिए न्यायसंगत अभिव्यक्तियां भी की हैं । युग जिस कृत्रिमता में जी रहा है, वह आज के कवियों से छिपा नहीं है । युग की जिस बौद्धिकता के साथ नये कवियों ने झेला है और श्लील-अश्लील का, आकर्षण-विकर्षण का भेद मिटा व्यंग्य और चोट के साथ परिस्थितियों को न केवल अनावृत किया है,बल्कि उनकी समस्याओं के विषय में तर्कसम्मत विचार भी प्रस्तुत किये हैं ।

नयी कविता की प्रक्रिया बौद्धिकता से परिचालित है,लेकिन कहीं-कहीं बौद्धिकता की अति नयी कविता को अबोध बना रही है ।यह अवश्य स्वीकार किया जायेगा कि आज जिन स्थितियों में नयी कविता का जन्म हुआ है, वह स्थितियां पहले कभी भी नहीं उत्पन्न हुई थी । विज्ञान की नयी-नयी खोजें,प्राविधि एवं उद्योग का विकास,यांत्रिक व्यवस्था ने जो नयी परेशानियां एवं खतरे पैदा किये हैं,उन्हें न तो सामान्य बुद्धि से समझा ही जा सकता है और न उन्हें दूर ही किया जा सकता है । इसलिए नयी कविता में बौद्धिकता की मांग कुछ नया देने के लिए लोभवश नहीं की गई,बल्कि युग-बोध की मांग में उसे स्वीकार किया गया है । बौद्धिकता प्रधान नयी कविता में केवल भावों तक जाने का प्रयास नहीं है । वह तो विचारों तक जाती है और विचार बुद्धि से सम्बद्ध होते हैं । यही कारण है कि नयी कविता में साधारणीकरण और रस प्रवणता के स्थान पर बुद्धित्व को स्वीकार किया गया है । भावों पर बुद्धि का पहरा कभी-कभी इतना कड़ा हो जाता है कि कविता अगम्य हो जाती है, तभी नयी कविता पर यह आरोप लगाये जाने लगे हैं कि नयी कविता सर्वसाधारण की बुद्धि के परे है ।

नयी कविता के प्रति ऐसे आरोपों को सुनकर उसके भविष्य के प्रति चिन्ता तो अवश्य हो सकती है, लेकिन नयी कविता के अधिकतर कवि ऐसे आरोपों से बचकर ही चले हैं । बौद्धिकता कठिन हो सकती है, लेकिन असम्प्रेष्य नहीं । नयी कविता के पाठक, आलोचक वर्ग यदि नयी कविता को उसकी प्रकृति में समझना चाहते हैं तो उन्हें भी अपनी दृष्टि, रुचि एवं भाव-बोध में परिवर्तन एवं परिष्कार करना होगा । मैं तो कहूंगी कि अब नयी कविता को समझने वाला एक बहुत बड़ा समुदाय तैयार हो गया है, नयी कविता अब उतनी असम्प्रेष्य भी नहीं रह गई, जितनी अपने विकास काल के प्रारम्भिक चरण में लगती थी ।

नयी सौन्दर्य-दृष्टि : उसकी दिशा

नयी कविता में सौन्दर्य-बोध के नये आयाम खोले हैं । युग-युग से चले आ रहे सुन्दर-असुन्दर के भेद को मिटाकर जीवन को समग्रता के साथ स्वीकार किया है । नये कवियों के लिए कुरूप, विघटित एवं दलित-गलित भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना सुन्दर एवं सम्पूर्ण । जीवन के प्रति इतनी व्यापक दृष्टि पहले कभी भी नहीं देखने में आई है । नये कवियों की सौन्दर्य-दृष्टि से अनुप्राणित है । इसलिए "वह सौन्दर्य-बोध के जीवन्त तत्वों के प्रति निष्ठा रखता है, जिनका साक्ष्य उसे प्रत्यक्ष जीवन में प्राप्त है ।"[1] सौन्दर्य-बोध आज के युग में जीवन-जगत की छोटी-से-छोटी वस्तुओं से जाग सकता है । नये सौन्दर्यवादी सौन्दर्य की धारणा को एकांगी ढंग से नहीं देखते, उन्हें केवल चांद-तारे फूल या आह्लादकारी में आकर्षण एवं सुन्दर लगने वाली वस्तुएं ही प्रभावित नहीं करतीं, बल्कि धरती की प्रत्येक वह वस्तु सौन्दर्यमयी है, जिसका मानवीय सन्दर्भ से कुछ भी सम्बन्ध है । जीवन को अविभाज्य रूप में

---

1. "नयी कविता" अंक-2 सं०-डा० जगदीश गुप्त, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ० 98 ।

देखने वाला सौन्दर्य-बोध है । सौन्दर्य की नयी व्याख्या तो अवश्य हुई लेकिन उस व्याख्या को अभी नये कवि पूर्णता की ओर ले जाने में सफल नहीं हो रहे हैं । यह बात तो सत्य है कि जो वस्तु कुरूप है, भोंड़ी है, जिससे सौन्दर्य की भावना प्रस्फुटित ही नहीं हो सकती, उसे सौन्दर्य कहना उचित नहीं है । कुरूपता से सौन्दर्य अगर प्रस्फुटित हो तो उस सम्भावना में सौन्दर्य देखा जा सकता है । लेकिन गलित -दलित, बेकार वस्तुओं जिनसे जीवन-सत्य का कोई महत्व न हो, उसमें सौन्दर्य देखना कोई उपलब्धि नहीं कही जा सकती । यह हो सकता है कि किसी क्षण मामूली लगने वाली वस्तु भी कवि के सौन्दर्य-बोध को इतनी तीव्रता प्रदान कर देता है कि उस वस्तु का साधारणपन निखर कर सामने आता है । लेकिन ऐसे क्षणों का भी जीवन के व्यापक अंक में कुछ अर्थ तो होगा ही । इधर नये कवियों का सौन्दर्य-बोध कुछ अपने ढंग का ही दिखने लगा है । जीवन की समग्रता से स्वीकार करने के बाद भी जीवन की समस्यायें, सम-सामयिक-बोध में उन्हें सौन्दर्य-बोध नहीं दिखायी देता, उन्हें तो प्रकृति के नानाविध रूपों में अर्थात् आकाश, तारे, चांद-सूरज, नदी, पुष्प या ऋतुओं व में ही सौन्दर्य दिखता है, या जैसा मैंने पहले कहा है, एक-से-एक घृणित वस्तुओं में सौन्दर्य देखने का प्रयास शायद इस लोभवश होता है कि ऐसी महान दृष्टि पहले के कवियों में नहीं रही होगी ।

यद्यपि नये कवियों का सौन्दर्य-बोध इतने ही निम्नस्तर का रहेगा तो चाहे छिछली छायावादी सौन्दर्य-दृष्टि से पृथकता तो ग्रहण कर लें, लेकिन मानव-सत्य को भी, जीवन की विराटता को व्यक्त नहीं किया जा सकता । जो सुन्दर नहीं है, और जिसका कोई जीवन की समग्रता में अर्थ भी नहीं उसे सुन्दर बनाने का निरर्थक प्रयास नये कवियों को फिर से पीछे जाने का संकेत करता है ।

समाजगत चेतना के नये पार्श्वों की दिशा : सार्वदेशिकता एवं मानवतावाद--कितना समाधान ?

समाजगत चेतना के नये पार्श्वों की चर्चा करते हुए स्पष्ट किया जा चुका है कि नयी कविता ने विश्व-युद्धों की प्रतिक्रिया स्वरूप जन-सामाजिक एवं विश्व-व्यापकीय स्तर पर मानवतावाद की प्रतिष्ठा एवं आत्मसम्मान के प्रश्न को उठाया है । नयी कविता के लिए यह बहुत ही कठिन एवं उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है । आज मानव-समस्यायें हर देश में उग्रतम रूप में बढ़ रही हैं । शान्ति,शान्ति की पुकार सब तरफ सुनाई देता है । मनुष्य इतना चकित और भ्रमित हो गया है कि उसे जीवन-जगत की सत्यता में सन्तुष्टि नहीं है । कहना यही होगा कि धर्म-कर्म,ईश्वर,नियति सब को पीछे छोड़ फिर ईश्वर की शरण में जाना चाहता है । एकाएक आध्यात्मिकता की ओर एक बार इतने आगे बढ़ जाये मानव-समाज को चौंका देता है, इन सब के पीछे कौन-सा ऐसा कारण है,जिससे आज सर्वत्र अराजकता,आत्मप्रताड़ना के दर्शन हो रहे हैं । कृषि,औद्योगीकरण तथा वैज्ञानिक आविष्कारों ने जीवन की तमाम मुश्किलों को तो आसान कर दिया,लेकिन इन क्रान्तियों ने जो निष्क्रियता एवं संवेदनहीनता की स्थिति ला दी,उससे संवेदनशील मानव-मन कुंठाओं एवं अवसाद से भर उठा । समाज में सामंजस्य न बैठा पाने की विवशता ने उसे अवसरवादी बना दिया । कालान्तर से सभ्यता-संस्कृति की वे कड़ियाँ सभी देशों में लागू की गई और उसका वही परिणाम हुआ जो पहले विकसित देशों का हुआ था । इस दृष्टि से आज विश्व की सीमायें संकुचित हो गई हैं । मनुष्य, मनुष्य से इतना निकट आ गया है कि उसकी संवेदना, उसकी अनुभूति भी अत्यधिक निकट आ गई है । इसके अतिरिक्त दो-दो भयंकर विश्व-युद्धों के बाद तीसरे विश्व-युद्ध की सम्भावना की भयावह प्रतीक्षा भी आज विश्व के मानस को व्यथित किए हुए है ।

जब विश्व के मानव की समस्त समस्यायें एक-सी हैं तो नये कवियों ने विश्व-व्यापकीय,सम-सामयिक दृष्टिकोण से मानव-प्रतिष्ठा एवं आत्म-सम्मान की वीणा उठायी है । इतने ऊँचे आदर्श को लेकर चलने का कार्य सहज नहीं है । आज जो कवि इस उद्देश्य को भूल गये हैं, वे व्यक्तिगत स्वार्थों एवं कठिनाइयों की ही चर्चा करते रहते हैं या बार-बार युद्ध-शान्ति की बात कहते हैं । इस तरह की पुनरावृत्तियां और गतानुगतिकता बासीपन और अनाकर्षण से युक्त तो लगती ही हैं, साथ-ही-साथ उनमें मौलिकता तथा नवोन्मेष का भी अभाव दिखाई देता है । मानव-प्रतिष्ठा का सम्बन्ध नये युग की सभ्यता-संस्कृति से है, जो समस्यायें अन्य देशों से मिलती-जुलती हैं,उन्हें हम प्राचीन समाधान से पूरा नहीं कर सकते हैं । इसके लिए हमें आधुनिक तरीके अपनाने होंगे । अपने देश की समस्याओं एवं मानव-प्रतिष्ठा के प्रश्न को अपने देश की प्रकृति के एवं आवश्यकता के अनुसार हल करना होगा । सिद्धान्त रूप में जो `विश्वशान्ति संगठन' बने अथवा जिन विद्वानों ने अपने सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, उन्हें अपने देश की प्रकृति एवं समस्या के अनुसार ग्रहण करना चाहिए ।

जब कि नयी कविता में हो यह रहा है कि पाश्चात्य ढंग से हम अपने देश के मनुष्य को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं । पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को नयी कविता में आजमा रहे हैं । नकल में भी अकल की आवश्यकता होती है । जिन वस्तुओं की चर्चा ऊपर हुई है,उन्हें अपने देश को समझाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए ।इस तरह एक ओर मौलिकता तो समाप्त होती ही है, दूसरी ओर जिन समस्याओं को हल करने का प्रयत्न किया जाता है, वह भी ज्यों-की-त्यों बनी ही रहती है ।

पराजय की स्वीकृति : निराशा का चरम बिन्दु

मानव-प्रतिष्ठा का प्रश्न आज के युग का सबसे बड़ा प्रश्न है । नये कवियों को विशेष दृष्टि विकसित करनी होगी, अपने अन्दर सन्तुलन एवं साहस की सृष्टि करनी होगी । तभी शायद वे मानव-समस्या को हल कर सकेंगे । इधर के नये कवियों ने एक और ढंग अपनाया है, जब मानव समस्याओं में घिरता ही जाता है, उसे अपने युग की हर वस्तु परेशान कर देती है, समाज-व्यवस्था उसे चैन से बैठने नहीं देती तो वह सोच कर 'तुम जाओ अपने बहिश्त में हम जाते हैं जहन्नुम में' कहकर छुटकारा पा लेना चाहता है । नये कवियों को इतना आत्मबल तो पैदा करना ही होगा कि सब विषम परिस्थितियों को झेलता हुआ वह कुछ उपलब्धि भी कर सके । केवल ऐसी उक्तियों से वह आज के युग की विषम परिस्थितियों का आकलन कर सकता है । अपने मन की खीझ को व्यक्त कर सकता है, लेकिन विश्व-मानव की समस्या तो क्या वह अपने देश के मानव की समस्या को भी नहीं हल कर सकता । अपने ही देश की स्थिति को देखें तो आज तरह-तरह की समस्यायें उठ खड़ी हुई हैं । स्वाधीनता के पश्चात् जिस तरह की शासन-व्यवस्था सम्पन्नता एवं रामराज्य की कल्पना की गयी थी, वह सब कल्पना ही सिद्ध हुआ । सब तरफ भ्रष्टाचार एवं अनीति को उभार मिला, उसने अवसरवादियों को बढ़ने का मौका दिया । इतने बड़े देश की बागडोर सम्भालना कोई सहज कार्य नहीं था और फिर जहाँ सारी व्यवस्था की नींव ही डगमगी हो वहाँ तो और भी विनाशोन्मुखता की स्थिति रही होगी । लोकतंत्रीय शासन-व्यवस्था ने जिस तरह के लोकतंत्र की रचना की, वह केवल में कहने मात्र ही सिद्ध हुआ । गणमान्य व्यक्तियों को ऊँचे-ऊँचे पद मिले, नयी आशायें, नयी सम्भावनायें जगीं, लेकिन शासन नीतियों ने सारी आशाओं और सारी सम्भावनाओं को जल्दबाजी में धराशायी कर दिया । रोज ही देखा करते रहते हैं, रोज ही

सिद्धान्त बनते और रद्द होते रहते हैं । ऐसे परिवेश में आज का समाज पिस रहा है । नौकरशाहों का इतना बोलबाला है कि जो जरा ऊँचे पद से चिपक गया तो फिर उससे नीचे सब जीहजूरी के लिए हो हैं । आर्थिक व्यवस्था ने भी समाज को व्यथित किया है । आर्थिक स्थिति गिरी अवस्था में होने के कारण व्यक्ति चोरी,घूसखोरी और अकर्मण्यता की ओर बढ़ रहा है ।अवसर का लाभ उठाने के लिए संकटकालीन स्थिति उत्पन्न होने से पूर्व ही रोजमर्रा की प्राथमिक आवश्यकता की वस्तुओं को गोदामों में भर कर जिस अमानवीयता एवं कृतघ्नता का परिचय आज देश में मिल रहा है, वह सब नये कवियों से छिपा नहीं है । अधिकतर नये कवि समाज की पीड़ा को समझने का प्रयास कर रहे हैं । समाज में फैले भ्रष्टाचार एवं अव्यवस्था के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण अभिव्यक्तियां ,विसंगतियां एवं विघटन को दूर करने के लिए कर रहे हैं । यही नहीं, समाज-मानस में परिव्याप्त कुंठा-पीड़ा,निराशा,अविश्वास और अनास्था के स्थान पर भविष्य के प्रति आस्था, आशा तथा विश्वास का भाव भी नये कवियों ने जगाने का प्रयास किया है और आज मनुष्य अपनी समस्याओं से टूटता-बिखरता ही नहीं है,बल्कि उनसे मुक्ति पाने का प्रयत्न करता है । नियतिवाद,ईश्वरवाद का साथ छोड़ कर्मण्यता में विश्वास करता है अर्थात् आज कलाकार और जन आमने-सामने खड़े हैं । कलाकार मानवीय सन्दर्भ का गहरी संवेदना से संस्पर्श करता है,उसकी समस्याओं को अपनी समस्या समझता है । उसके सुख के लिए वो चार दुःख को समर्पित होने में भी गौरव समझता है । नयी कविता आज के मनुष्य के अन्तर्मन के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म स्तर तक पैठकर उसकी भावनाओं, उसकी पीड़ा को उद्घाटित करता है । उसको किसी निश्चित दिशा तक ले जाने का प्रयत्न करता है । लेकिन आज नयी कविता को मानवीय सत्य की कविता स्वीकार करने के बाद भी कवि अवसरवादी बन बैठे हैं, या तो समाज की पीड़ा को समझते हुए भी किसी मतलब उनका

उद्घाटन तो क्या संकेत तक करने में झिझकते हैं, ऐसे नयी कविता के मानवीय लक्ष्य तक पहुंचने के उद्देश्य में बाधक सिद्ध हो रहे हैं । कवि के ऊपर जो जिम्मेदारी आ पड़ी है उसे स्वयं समझना है और उसे विशिष्ट मानव बनना है । कलाकार कोई साधारण प्रतिभा वाला , सामान्य व्यक्ति नहीं होता, वह तो विलक्षण प्रतिभा वाला,भावुक (संवेदनशील) तर्क-वितर्क की क्षमता से युक्त, अच्छे-बुरे का निर्णय कर लेने वाला, कुछ विशिष्ट व्यक्तित्व वाला होता है । इसलिए आज जो समस्यायें एवं संक्रमणशील परिस्थितियां उत्पन्न हो गई हैं, उन्हें समाधान देने के लिए दिशा[1] दिखाने की आवश्यकता है न कि स्वयं दिशाहीनता की स्थिति पैदा करने की ?

आधुनिकता कितनी ?

नयी कविता का यथार्थ आधुनिकता एवं वैज्ञानिकता को समाहित करके चलता है । इसलिए जहां वैज्ञानिकता एक निष्कर्ष तक पहुंचने में सहायता करती है, वहीं आधुनिकता आज के व्यापक परिप्रेक्ष्य को सही और सम-सामयिकता की दृष्टि देती है । आधुनिकताबोध का अर्थ आज की समस्याओं के,उनके समाधान के विषय में नये ढंग से सोचने से है । पुराने शाश्वत् लगने वाले सिद्धान्त एवं परम्परायें आज के आधुनिक युग के समाधान नहीं प्रस्तुत कर सकती हैं,इसलिए आधुनिक दृष्टि की अनिवार्यता

---

१ .... कहा जा सकता है कि कलाकार आज मानवीय यथार्थ का सबसे अधिक संस्पर्श करता है और उसके ऊपर एक खास तरह की जिम्मेदारी डालती है । यह जिम्मेदारी खुद उसकी जिम्मेदारी है, उसका हिसाब लेने वाला पहले की तरह कोई दूसरा नहीं है.... कवि के जीवन में सामान्य से अधिक योग देना और भाग लेना है.... ।

—'नयी कविता' अंक—सं० डा० जगदीश गुप्त, विजयदे० ना० साही

नये कवियों ने स्वीकारोहै। लेकिन नयी कविता में आज आधुनिकता का अर्थ पश्चिमी फैशनपरस्ती से लिया जाने लगा है । आधुनिकता के नाम पर कैक्टस, काफी, काफीहाउस, क्लब, शराब, सेक्स और न जाने भिन्न-भिन्न विषयों को समेटा जा रहा है, जब कि आधुनिकता का अर्थ एक नयी दृष्टि से है, वह दृष्टि जो आज के परिवर्तित, व्यापक परिप्रेक्ष्य में आज के मानव के साक्षात्कार की ओर एक पद्धति है -- जीने की ।[1] इस प्रकार नये कवियों को यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि आधुनिकता कोई ओढ़ा हुआ लबादा नहीं है, जो कि जब चाहे ओढ़ लिया जाये और जब चाहे उतार दिया जाय। आधुनिकता तो आज के मानव-स्थिति की सही अभिव्यक्ति एवं समाधान की अनिवार्यता है ।

नयी कविता का भविष्य

नयी कविता की इतनी विशद् चर्चा हो जाने के बाद नयी कविता के भविष्य के प्रति निराश नहीं होना पड़ता । कोई भी विधा सर्वथा दोषमुक्त नहीं होती, परन्तु यदि दोष व हों भी तो वह इतने अधिक एवं दूर न होने चाहिए जो उस विधा के गुण एवं विशिष्टता इन दोषों को अपने अंक में छिपा लेने की शक्ति रखती है । नयी कविता में भी ऐसे बहुत दोष हैं, जो खटकते हैं, लेकिन नयी कविता का अत्यधिक उदार एवं व्यापक मानवीय दृष्टिकोण इन दोषों को अपनी विशिष्टता से नगण्य बना देता है ।

कहीं-कहीं नयी कविता की नवानुरागिता एवं अनुकरण प्रियता बासीपन एवं अनाकर्षण को बढ़ाती है, जिससे मौलिकता तथा मनोन्मेष का अभाव भी साफ-साफ दृष्टिगोचर होता है । यह बात स्वीकार की जा सकती है कि आज हमारा सम्पर्क और सम्बन्ध देश-जाति की सीमा में

---

१ 'नयी कविता का परिप्रेक्ष्य' — डा० परमानन्द श्रीवास्तव, पृ०१२४ ।

नहीं बंधा है । हमारे पास इतने वैज्ञानिक साधन हैं कि हम विश्व के किसी भी भाग में होने वाले परिवर्तनों से बहुत शीघ्र प्रभावित होते हैं, लेकिन वे परिवर्तन यदि मानवता के विकास के लिए है, तो उनसे प्रभाव ग्रहण किया जा सकता है, लेकिन शर्त यह है कि इन परिवर्तनों एवं समस्याओं की संगति अपने देश की प्रकृति से मेल खाती हुई हो । मात्र अनुकरणप्रियतावश विदेशों की ह्रासशील संस्कृति को अपनाने से ही कविता में नयेपन का दावा नहीं किया जा सकता ।

इसके अतिरिक्त नयी कविता में निरर्थक अभिव्यक्तियां हो रही हैं । एकदम से चौंका देने वाली भी कवितायें सामने आ रही हैं । शायद ये कवि रीतिकालीन कवियों की तरह विशिष्ट प्रतिभा का सिक्का जमाने का मोह संवरण नहीं कर पाते हैं, जबकि आज कोई भी पाठक अथवा आलोचक इतनी निम्नस्तरीय बुद्धि का नहीं है जो ऐसी इनकी रचनाओं से चकित हो । नयी कविता में यदि ऐसी ही रचनायें होती रहीं तो मानवीय व्यापक सन्दर्भ पीछे ही छूट जायेंगे और नयी कविता का स्थानान्तरण भी अब शायद कोई और काव्य-धारा कर ले ।

नयी कविता ने आज के युग के इस व्यापकत्व की अनिवार्यता में छंद-बंध तोड़े, रस-अलंकार की परम्परा का त्याग किया, नये उपमानों, नये प्रतीकों, नये बिम्बों की सर्जना की, नयी भाषा गढ़ डाली । किसलिए ? सिर्फ आज युग की अधिक-से-अधिक सशक्त एवं सीधी व्याख्या के लिए । और अब तो बिम्बों की आवश्यकता को भी महत्वपूर्ण नहीं समझा जा रहा है । कथन की तीव्रता के लिए भाषा को अलंकृत करने की आवश्यकता नहीं, भाषा का सम्पन्न रूप आज के युग की विषमता को अभिव्यक्त कर सकता है । लेकिन भाषा के सम्पन्न रूप का अर्थ, परिष्कार को

छुआ देना नहीं है या केवल सम्बन्धी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए भाषा का सम्बन्ध नहीं स्वीकार करना चाहिए । नयी कविता के नाम से कितनी ही कविताएँ यत्र-तत्र प्रकाशित होती रहती हैं, जिनमें अभिव्यक्त नये कवियों की यथार्थ दृष्टि देखते ही मानव-परिवेश बोझिल हो जाता है, और पशु-जगत का रूप उजागर होता है । श्लील-अश्लील, रूप-कुरूप का भेद जीवन की समग्रता से स्वीकार करने के लिए मिटाया गया है न कि अमित-यौन-भावना के प्रदर्शन के लिए ।नये कवियों को स्वस्थ दृष्टि देनी चाहिए, काम-पिपासा उनका व्यक्तिगत मसला है, उसे नयी कविता में नहीं लाना चाहिए । कथ्य-भिन्नता-जनक मर्यादा और अनुशासन की अनिवार्यता किसी भी साहित्यिक-विधा में अस्वीकारी नहीं जा सकती ।

क्षणजीविता,अतिबौद्धिकता जैसे और भी कई तत्व हैं,जिनसे नयी कविता कुछ हद तक आक्रान्त है, लेकिन अब ये विषय महत्वहीन लगने लगे हैं,क्योंकि पद्य को कविता समझने वाले पाठक अब गद्य के रूप में लिखी जाती नयी कविता की प्रकृति को समझने लगे हैं । लय की अनिवार्यता भी शक्ति की साधना में समाहित हो जाती है । साधारणीकरण भी नयी कविता के लिए कोई समस्या नहीं रह गई है । नयी कविता को समझने वाला काफी बड़ी संख्या में पाठक और आलोचक वर्ग तैयार हो गया, फिर भी अक्सर नयी कविता की चर्चा करने वाले कहते पाये जाते हैं कि "कविता है तो अच्छी पर मर्मस्पर्शी नहीं है" लेकिन शायद वह यह भूल जाते हैं कि मर्मस्पर्शी होना एवं अच्छी होना काफी हद तक सम्बद्ध हैं । इस विषय में यही कहा जा सकता है कि जब कोई नवीन धारा सभी परम्पराओं,सिद्धांतों, रूढ़ियों को अस्वीकार करते आगे आती है तो उसे स्वीकार करने में कुछ समय अवश्य लगता ही है । नयी कविता की अब वह स्थिति नहीं रही, अब तो वह अपनी कमजोरियों के बावजूद भी जो जीवन-दृष्टि एवं जीवन-शक्ति दे रही, वह

उसकी उपलब्धि ही कही जायगी । नयी कविता का काफी भाग निरर्थक अनुभूतियों,वैयक्तिक अनुभूतियों और हास्यास्पद तत्वों से भरा है,लेकिन उसका बाकी भाग आज के मानव-समस्याओं की,ह्रासशील संस्कृति एवं सभ्यता की ज्वलन्त प्रतिक्रिया एवं उसके समाधान के लिए रचा गया है । आज नयी कविता जो सृष्टि दे रही है, उससे नव मानवतावाद की प्रतिष्ठा का मांगलिक कार्य लगता है ,सम्पन्न होकर ही रहेगा । बुद्धि और हृदय के बीच आज जो समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न हो रहा है,उससे नयी कविता मानव-विराटता को अवश्य प्राप्त करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है । भविष्य के प्रति ऐसा विश्वास मेरा ही नहीं, नये कवियों का भी है[१] ।

भविष्य को अपना कहने का दावा करने वाले शायद भविष्य में कोई श्रेष्ठ वृहद् काव्य अथवा प्रबन्ध दें,ऐसी आशा की जा सकती है ।क्योंकि लेकिन इस विषय में कोई पूर्ण बोध जा कर सकना सम्भव नहीं लगता है,क्योंकि नयी कविता छंद के बन्धनों से मुक्त हो चुकी है, अब नये गठन एवं काव्य-व्यवस्था के आधार पर ही किसी वृहद् काव्य अथवा प्रबन्ध की रचना की आशा की जा सकती है । लेकिन नयी कविता के लिए तो यह भी बहुत महत्वपूर्ण एवं चकित करने वाली बात है कि उसने कोई महत्वपूर्ण श्रेष्ठ कृति न देने पर भी आज के युग की प्रतिनिधि कविता कहलाने का हक ले लिया है, देखना यही है कि भविष्य में नयी कविता की क्या उपलब्धि होती है ?

--0--

१... ये हैं रत्न मुकुट के, गर्वित हैं अतीत पर
वर्तमान भी उनका ही, मन क्यों ललचाऊं ?
मैं तो मिट्टी के कणों में बना बीज हूं
मेरा ही भविष्य है, फिर मैं क्यों घबराऊं ?

—'नयी कविता' अंक-२,सं०डा० जगदीश गुप्त ,डा रामस्वरूप चतुर्वेदी

श्री हरि: की कविता — मैं और मैं, पृ०४७ ।

परिशिष्ट

-०-

नयी कविता की रचना-प्रक्रिया : भाषिक संरचना

परिशिष्ट

-o-

नयी कविता की रचना-प्रक्रिया : भाषिक संरचना

'विचार' शब्द का परिधान पहन कर ही दृश्य-जगत् में आते हैं । परिधान के चुनाव में ही उस विचार की विधा का निर्णय किया जाता है । ढीली-ढाली पोशाक वाले विचार उपन्यास, कहानी और नाटक आदि विधाओं की पंगत में बैठते हैं तो चुस्त परिधान वाले विचार काव्य की । चुस्त परिधान का अर्थ शब्दों में केवल तुक या लय का होना ही नहीं है, अभिव्यक्ति की मार्मिकता मुख्य है ।[1] इस विचार से भाषा का जो रूप सामने आता है, वह बहुत ही महत्वपूर्ण माना जा सकता है । भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है, यद्यपि भाषा का जो रूप सामने आता है, उसमें अभिव्यंजना की अपनी विशेष प्रणाली होती है । यह निश्चयतः नहीं कहा जा सकता कि प्रतीक बिम्ब, तुक, लय, ताल से युक्त भाषा कथन की सार्थकता एवं प्रेषणीयता को पूरा ही करेगी और इन सब तत्वों से हीन भाषा का ढांचा, सपाट रूप संवेदना की गहराई को ठीक-ठीक अभिव्यक्ति नहीं दे पायेगा । भाषा की नवीनता एवं सरसता के लिए साहित्य में अनेक आवाजें उठाई गई हैं ।

---

१ 'अंधा चांद' -- [illegible], एक दृष्टि

द्विवेदी युग से लेकर नयी कविता तक भाषा ने कितने ही रूप, कितनी ही प्रणालियां अपनायीं हैं । जब अज्ञेय ने 'बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है'[1] कहा था तो भी शायद उनके सामने अभिव्यक्ति की ही कठिनाई उपस्थित हुई होगी । सन्दर्भ ग्राह्यता एवं संवेदनात्मक सम्प्रेषणीयता के लिए भाषा की अधिक-से-अधिक जीवन्तता परमावश्यक है ।

नयी कविता आज जिन परिस्थितियों एवं परिवेश में लिखी जा रही है, वह परिवेश दिशाहीनता, विसंगति, अर्थहीनता एवं असम्बद्धता का परिवेश है । ऐसे परिवेश में लिखी गई कविता में आक्रोश, तीव्र पीड़ा, व्यंग्य-विद्रूप ही उभर कर सामने आ सकते हैं । इसके लिए नये कवियों का झुकाव बिम्ब-विधान की ओर से हटता हुआ, भाषा के नंगे रूप की ओर खिंचता जा रहा है । क्योंकि आज बिम्बों, प्रतीकों, नयी उपमाओं से लदी भाषा कथ्य की सच्ची अभिव्यक्ति नहीं हो पाती है, परिणामस्वरूप भाषा अधिक ऐश्वर्यमयी बन जाती है भाव अपनी गहराई को अपने अन्तर्मन में छुपाये अलग पड़े रह जाते हैं[2] । इसीलिए यहां नयी

---

१ हरी घास पर क्षण भर -- अज्ञेय, पृ०७०

२ ..... भाषा के माध्यम से अत्यन्त व्यक्तिगत अनुभूति की अभिव्यक्ति में कोई समीकरण नहीं बैठ पाता । भाषा अलग अपनी गरिमा वाणिज्य वाणी लिए बैठी रहती है और अनुभूति की वास्तविकता अलग पड़ी रहती है तेल पानी के मिलाप का परिणाम यह होता है कि बिना अनुभूतियों की गहराई को स्पर्श किये भाषा और बिम्ब ऊपर-ऊपर तैरते हैं... ।
— नये प्रतिमान पुराने निकष — लक्ष्मीकान्त वर्मा
लम्बी कविता : कुछ मोड़ कुछ बातें, पृ० १०० ।

कविता प्रयोगवादी कवियों की तरह नये बिम्ब,नये प्रतिमान, नये उपमानों की प्रारम्भ में आग्रही थी, वही परिवेश की संगति एवं अर्थवत्ता के लिए भाषा के नग्नतम रूप की ओर बढ़ी जा रही है । आज केदारनाथ सिंह की बिम्बों की अनिवार्यता के विषय में कही गई बातें झूठी पड़ने लगी हैं । मानव-अभिव्यक्तियों के लिए बिम्बों की अनिवार्यता स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा कि -- 'बिम्ब विषय को मूर्त और ग्राह्य बनाता है और रूप को संक्षिप्त और दीप्त करता है, इसके अतिरिक्त फिर कहा है-- 'बिना चित्रों,प्रतीकों, रूपकों और बिम्बों की सहायता के मानव अभिव्यक्ति का अस्तित्व प्राय: असम्भव है । यहां तक कि जब हम शुद्ध विचार के क्षेत्र में पहुंचकर गम्भीर तत्व दर्शन की चर्चा करते हैं, तब भी हमारे उपचेतन में कहीं-न कहीं उन विचारों के वर्ण-चित्र उभरते मिटते रहते हैं । बिम्ब निर्माण की यह प्रक्रिया पूरे मानव जीवन में फैली हुई है ।'[1] प्रारम्भ में नये कवि भाषा की सघन एवं अनुभूति की सही अभिव्यक्ति के लिए स्वयं बिम्बों, प्रतीकों,उपमानों के आग्रही थे, लेकिन आज परिवेश की जटिलता और मानव नियति की विडम्बना के लिए भाषा को अधिक-से-अधिक सहज बनाने के पक्षपाती हो गये हैं । सहज का अर्थ विषय एवं सन्दर्भ के अनुसार भाषा का सरल,स्पष्ट,कोमल रूप भी हो सकता है और कहीं के स्थान पर कठिन, अस्पष्ट एवं परुष भी यहां तक कि लक्ष्मीकान्त वर्मा के अनुसार --'भाषा और बिम्बों की यह निरर्थकता ही हमें अब 'नंगे शब्दों' की ओर ले जा रही है । आज की कविता जिस भाषा की खोज में है, वह 'नंगी भाषा' है--

---

१ 'तीसरा सप्तक' -- सं० अज्ञेय

वक्तव्य : केदारनाथ सिंह, पृ० [illegible] ।

आवरणहीन,लज्जाहीन, संस्कारहीन और इन सबसे अधिक ऐसा नंगापन जिसमें अनिवार्य नंगेपन के ऊपर एक समय-बोध की छाप लगा सके[1]। इसी नंगेपन के पीछे कविता को सजाने-संवारने का मोह भी बहुत पीछे छूट गया है,क्योंकि डा० जगदीश गुप्त के अनुसार (आज की कविता का सजना) `सजाने-संवारने, खराद पर चढ़ाने और मांजने से उसकी सजगता नष्ट होती है[2]।` पूरे परिदृश्य को उघाड़ कर रख देने के लिए भाषा का जो रूप सामने आता है, उसे देखकर यही कहा जा सकता है कि नयी कविता की रचना-प्रक्रिया में अभिव्यक्त चेतना धर्मों,सम्प्रदायों, राजनैतिक मतवादों, ईश्वर एवं देवताओं की परिधि में न कहीं बंधी है वह बंधी है तो आज के परिवेश से । आज का परिवेश, मनुष्य की मन:स्थिति, जीवन के प्रति दृष्टिकोण इतना बदल चुका है कि मनुष्य न तो इन सब परिस्थितियों की बोझिलता को अभिव्यक्त करके चुप बैठ सकता है और न ही इन सबसे कट-कर ही रह सकता है । `आज का कवि पहले से चले आते कविता के ढांचे को तोड़कर अभिव्यक्ति के खतरे उठाने का संकल्प करता है...[3]।`

अभिव्यक्ति के खतरे वह यथार्थ के सीधे बोध के कारण ही उठाना चाहता है । जब रघुवीर सहाय `एक अधेड़ भारतीय आत्मा` की रचना करते हैं, तो उन्हें आज देश की शासन-व्यवस्था की कमजोरियाँ दीखती हैं और फिर उनकी चेतना जिस स्पष्टवादिता का सहारा

----

1 `नये प्रतिमान पुराने निकष`— लक्ष्मीकान्त वर्मा , पृ० ३०० ।

2 `नयी कविता स्वरूप और समस्यायें`— डा० जगदीश गुप्त
`नयी कविता में रस और बौद्धिकता`, पृ० १०५ ।

3 `नयी कविता का परिप्रेक्ष्य`— डा० परमानन्द श्रीवास्तव
`सीधे साक्षात्कार के बिना`: दूसरा उपाय नहीं है `— पृ० १२२-१२७ ।

लेती है, यह द्रष्टव्य है[1]। कथन की सरलता आज की नयी कविता की विशेषता है। इस कथन की सरलता में सादगी के साथ-साथ गहरा व्यंग्य और आक्रोश भी उभरा है। सामाजिक-अव्यवस्था, रोजी-रोटी की चिंता से आज का समाज मानव ग्रस्त है, लेकिन दूसरी ओर उसमें इतना साहस भी नहीं है कि वह किसी भी काम को स्वयं निस्संकोच करे, झूठी शान, झूठी मर्यादा के वशीभूत हो दुःख उठाने के लिए कटिबद्ध है, लेकिन सत्य का साक्षात्कार नहीं कर सकता। भवानी प्रसाद की कविता में व्यंग्यात्मक भाषा की सादगी और चोट द्रष्टव्य है — "जी हां हुजूर मैं गीत बेचता हूं, ये गीत बेचना बिल्कुल पाप, क्या करूं मगर लाचार हार कर गीत बेचता हूं ...[2]।" अगर देखा जाय तो भाषा की सादगी जिस उद्देश्य के लिए अपनाई गई है, वह उस उद्देश्य की सफलता से पूर्ति करती है। यहां भाषा में ओज, प्रसाद, माधुर्य में से किन्हीं गुणों की सृष्टि हुई हो या न हुई हो, लेकिन कविता अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेती है।

१—बांध में दरार

पाखण्ड वक्तव्य में.....
अहंकार भाषण में.....
हर संकट भारत में एक गांव होता है....
ठीक समय ठीक जगह पर नहीं उगती है
राजनीति.......... ।
—'आत्महत्या के विरुद्ध'— रघुवीर सहाय
'एक अधेड़ भारतीय आत्मा', पृ०४५-४६ ।

२ 'दूसरा सप्तक'— भवानीप्रसाद मिश्र
—गीतफरोश, पृ०३० ।

जहाँ नयी कविता के कथन की सत्यता के लिए भाषा का उखड़ा से उखड़ा रूप स्वीकार किया गया है¹ वहीं सन्दर्भ की ग्राह्यता और कथन की तीव्रता के लिए बातचीत जैसी शैली भी अपनाई गई है । आज का परिवेश जिस तरह की झूठी मान्यताओं,भेद-विभेद से भरा हुआ है, उसमें रहता हुआ व्यक्ति अब उससे उकता उठा है । हर काम 'यह मत करो, वह मत करो' के अनुशासन में वह कठपुतली के सदृश व्यवहार करने लगता है । धार्मिक स्थल हों या सार्वजनिक, सर्वत्र भेद-भाव का आचरण होता है । विपिनकुमार अग्रवाल की एक कविता ऐसे ही स्थल की बातचीत की शैली में सच्चा चित्र प्रस्तुत करती है²।

राजनीतिक मतवादों के पारस्परिक संघर्ष की छाया से भी आज का कवि बचा नहीं है । नये-नये विधान, नये-नये आश्वासन, रोज ही दल-बदल की नीति, चक्रव्यूह बन जन का शिकार होता

---

१ .... मेरा अपराध यह है—
मैंने बिना सिर उठाये
और किसी चौखट से टकराये
अपना सिर नवा लिया
ताकि अमन बरकरार
कायम रहे....
—अक्रान्त — लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ०११

२ देखो यह पूजा का स्थान है...
जूता भी बाहर उतार पांव धरो
तुम कौन हो, जी राजदीप, अन्दर पढ़ो
और तुम, हां तुम भी, से कब रहा हूं। तुम्हें नहीं
क्या तुम नहीं भगवान हो ।
'मैं मेरा— विपिनकुमार अग्रवाल,'धान्यदि',पृ०११

है देश और उसका एक-एक व्यक्ति । इस तरह की स्थिति में कवि का तीखा आक्षेप और सपाट-बयानी प्रशंसनीय है[1] ।

इस तरह नयी कविता की भाषा पर विचार करते समय आज के परिवेश पर विचार करना अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि आज कविता, आनंद, मनोरंजन या वैयक्तिक मनोभावों-- हर्ष-विषाद की ही पूर्ति के लिए नहीं लिखी जा रही है, बल्कि कविता आज के युग के उत्तरदायित्व को पूरा करती है । इस उत्तरदायित्व के लिए भाषा का जो रूप सामने है, उसे देखकर यही कहा जा सकता है कि नयी कविता ने काव्य-भाषा के प्रयोग में किसी प्रकार की रूढ़ि को स्वीकार नहीं किया है । कवि सीधे अक्खड़ता एवं गाली गलौज तक उतर आया है[2] । एक बात और जो बहुत महत्वपूर्ण है वह यह कि भाषा का अंग्रेजीकरण भी किया गया है । एक-दो शब्दों की कविता में पूरा-का-पूरा परिदृश्य उभर कर

----

१ ... आत्माएं
राजनीतिज्ञों की
चिट्ठियों की तरह
भरी पड़ी हैं
सारी पृथ्वी पे
उड़ती हैं
चहुंओर
कोई भी जगह नहीं रहने लायक
न मैं आत्महत्या
कर सकता हूं
न औरों का खून
खून बहाती अपने आविष्कार में
मैं जाता हूं अपने कुरुक्षेत्र में ।
--मायादर्पण-श्रीकान्त वर्मा, दीक्षित प्रकाशन, पृ०१२६

२ अभी जगह भीड़ है
(ठंडी-असंख्य-आमोद)
'हिप्पियों' और इलाइटस्कार्फ की-बोतलों में बन्द
निर्वीर्य होकर
जाते हैं फिल्मी मरघिया... ।
--संक्रांत कैलाश वाजपेयी
राजधानी, पृ०११

रूल किया गया है । अशोक वाजपेयी की कविता `सांझ` में कवि ने केवल[1] तीन पंक्तियों में सन्ध्याकालीन परिवेश का चित्र प्रस्तुत कर दिया है ।

`माया दर्पण` की एक कविता `बिजुली`[2] तो केवल तीन शब्दों में ही बिजुली की व्याख्या उपस्थित कर देती है ।

इस प्रकार नयी कविता की भाषा पिछली काव्य-धाराओं में लगाये गये दुरूहता, अस्पष्टता के आरोप को बहुत पीछे छोड़ आयी है, सरलता, स्वाभाविकता उसका गुण है, इसके लिए चाहे उसे सन्दर्भानुसार कैसी भी शैली अपनानी पड़े ।

-०-

---

१ ... सांझ

सां ऽ झ ऽ

हर वेरा दिया है --

--इधर अब भी सम्भावना है-- अशोक वाजपेयी

`सांझ`, पृ० २४ ।

२ आकाश में द - रा ऽ - र

`माया दर्पण`-- श्रीकान्त वर्मा

`बिजुली`, पृ०४१ ।

ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ सूची

काव्य संग्रह

काव्य रचनायें	लेखक	संस्करण एवं प्रकाशन
अंधा चांद	मुनिरूपचन्द्र	प्र०सं० १९६५ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
अर्ध विराम	,,	,, १९६९ आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन चरू।
अनुक्षण	प्रभाकर माचवे	,, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
अन्धा युग	धर्मवीर भारती	,,सन् १९५५ किताब महल, इलाहाबाद
अरी ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय	,, १९५९ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
अभी बिल्कुल अभी	केदारनाथ सिंह	,, १९६० नया साहित्य प्रकाशन, प्रयाग
अनागता की आंखें	वीरेन्द्रकुमार जैन	,, १९६९ सुप्रभात प्रकाशन, कलकत्ता
अर्द्धशती	बालकृष्ण राव	,, १९६४ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
अकेले कण्ठ की पुकार	अजितकुमार	,, १९५८ राजकमल प्रकाशन दिल्ली
अनुपस्थित लोग	भारतभूषण अग्रवाल	,, १९६५ लोकभारती प्रकाशन, प्रयाग
अतुकान्त	लक्ष्मीकान्त वर्मा	,, १९६८ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
अंधेरी कविताएं	भवानीप्रसाद मिश्र	,, १९६८ ,,
आत्मजयी	कुंवरनारायण	,, १९६५ भारती भण्डार, इलाहाबाद
आत्महत्या के विरुद्ध	रघुवीर सहाय	,, १९६७ राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
आंगन के पार द्वार	अज्ञेय	,, १९६१ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये	,,	,, १९५७ सरस्वती प्रकाशन, बनारस
उजली हंसी के छोर पर	परमानन्द श्रीवास्तव	,, १९६६ नया साहित्य प्रकाशन
एक सूनी नाव	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	,, १९६६ अक्षर प्रकाशन, दिल्ली
ओ अप्रस्तुत मन	भारतभूषण अग्रवाल	,, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

काव्य-रचनायें	लेखक	संस्करण एवं प्रकाशन
कनु प्रिया	धर्मवीर भारती	प्र०सं० १९५९ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
कवितायें	कीर्ति चौधरी	,, १९५८ राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
,, १९६३	सं० अजितकुमार, विश्वनाथ त्रिपाठी	,, १९६४ नेशनल पब्लिशिंग हाउस ,,
,, १९६४	,, ,,	,, १९६५ ,, ,,
काठ की घंटियां	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	,, १९५९ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
कागज के फूल	भारतभूषण अग्रवाल	,, १९६३ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
कितनी नाव में कितनी बार	अज्ञेय	,, १९६७ ,,
कुछ कवितायें	शमशेर बहादुर सिंह	,, १९५९ जगतशंखधर प्रकाशन, बनारस
कुछ और कवितायें	,,	,, १९६१ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
खण्डित सेतु	शम्भुनाथ सिंह	,, १९६६ समकालीन प्रकाशन, बनारस
खुले हुए आसमान के नीचे	कीर्ति चौधरी	,, १९६८ लोकभारती प्रकाशन, प्रयाग
गीत फरोश	भवानीप्रसाद मिश्र	,, १९५६ नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद
चक्रव्यूह	कुंवरनारायण	,, १९५६ राजकमल पब्लिकेशन लि० बंबई
चकित है दुख	भवानीप्रसाद मिश्र	,, १९६८ अभिव्यक्ति प्रकाशन, प्रयाग
चांद का मुंह टेढ़ा है	ग०ज० मुक्तिबोध	,, १९६४ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
चिन्ता	अज्ञेय	,, १९४६ सरस्वती प्रकाशन, बनारस
जो बंध नहीं सका	गिरिजाकुमार माथुर	,, १९६८ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
ठंडा लोहा	धर्मवीर भारती	,, १९५२ साहित्य भवन प्र० प्रयाग
तार सप्तक	सं० अज्ञेय	द्वितीय १९६६ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
दूसरा सप्तक	,,	प्रथम १९५१ प्रगति प्रकाशन, दिल्ली
धरती और स्वर्ग	डा० देवराज	,, राजकमल पब्लिकेशन, बम्बई
धुएं की लकीरें (संयुक्तांक)	लक्ष्मीकांत वर्मा, विपिनकुमार अग्रवाल	,, १९५६ रामप्रसाद एंड संस, प्रयाग
धूप के धान	गिरिजाकुमार माथुर	तृतीय १९६६ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
नयी कविता अंक १-८	सं० डा० जगदीश गुप्त, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी	१९५४-१९६७ (त्रैमासिकी) लो०भा० प्र० प्रयाग

हि॰दे॰भा॰ साक्षी

काव्य-रचनायें	लेखक	संस्करण एवं प्रकाशन
नाव के पांव	डा० जगदीश गुप्त	प्र०सं० १९५५ वि०वि०प्रका०गोरखपुर
परिवेश : हम तुम	कुंवरनारायण	,, २०१८वि०भारतीय भंडार,प्रयाग
फूल नहीं रंग बोलते हैं	केदारनाथ अग्रवाल	,, १९६५ शब्दपीठ प्रकाशन
बांस का पुल	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	,, १९६३ समवाय प्रकाशन,लखनऊ
बावरा अहेरी	अज्ञेय	,, १९५४ सरस्वती प्रकाशन,बनारस
बोलने दो चीड़ को	नरेश मेहता	,, १९६१हिन्दी ग्रं०रत्नाकर,बम्बई
मछलीघर	विजय देव नारायण साही	,, १९६६भारतीय भण्डार,प्रयाग
मन के वातायन	बृजमोहन गुप्त	,, १९६३राजीव प्रकाशन, प्रयाग
माया दर्पण	श्रीकान्त वर्मा	,, १९६७भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
मुक्ति प्रसंग	राजकमल चौधरी	,, १९६६नीलपत्र प्रकाशन,पटना
मेपल	प्रभाकर माचवे	,, १९६७भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
मेरा समर्पित एकान्त	श्री नरेश मेहता	,, १९६नेशनल पब्लि०हाउस दिल्ली
यातना का सूर्यपुरुष	वीरेन्द्रकुमार जैन	,, १९६६हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर,बम्बई
वन पाखी सुनो	श्रीनरेश मेहता	,, १९५७राजकमल प्र०दिल्ली
वंशी और मादल	ठाकुरप्रसाद सिंह	,, १९५९ नया साहित्य प्र०प्रयाग
शहर अब भी संभावना है	अशोक वाजपेयी	,, १९६६ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
शब्ददंश	डा०जगदीश गुप्त	,, २०१९वि०,भारतीय भंडार,प्रयाग
शिलापंख चमकीले	गिरिजाकुमार माथुर	,, १९६१ साहित्य भवन प्रका०प्रयाग
सतरंगे पंखों वाली	नागार्जुन	,, १९५९ यात्री प्रकाशन,कलकत्ता
स्वप्न भंग	प्रभाकर माचवे	,, १९५७ साहित्य भवन लि० प्रयाग
सातगीत वर्ष	धर्मवीर भारती	,, १९५९ भारतीय ब ज्ञानपीठ प्रकाशन
सीढ़ियों पर धूप में	रघुवीर सहाय	,, १९६० ,,
सूनी घाटी का गीत	प्रभातरंजन	,, १९५९ साहित्य भवन लि०प्रयाग
संक्रान्त	कैलाश वाजपेयी	,, १९६४ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
संशय की एक रात	श्रीनरेश मेहता	,, १९६२ हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर बम्बई
हरी घास पर क्षण भर	अज्ञेय	,, १९५२ सरस्वती प्रकाशन,प्रयाग
हिमविद्ध	डा० जगदीश गुप्त	,, १९६४ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

सहायक समीक्षा-ग्रन्थ

ग्रन्थ	लेखक	संस्करण एवं प्रकाशन
आधुनिक कविता में ध्वनि	डा०कृष्णलाल शर्मा	प्र०सं० १९६४ ग्रन्थम् प्रकाशन, कानपुर
आधुनिक परिवेश और नवलेखन	शिवप्रसाद सिंह	,, १९७० लोकभारती प्रका०, प्रयाग
आधुनिक कवितायें तथा विवेचन	सं० रणधीर सिन्हा पद्मनारायण	,, १९५९ पारिजात प्रकाशन, पटना
कविता के नये प्रतिमान	नामवर सिंह	,, १९६८ राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
काव्यात्मक बिम्ब	आचार्य बृजनन्दनप्रसाद	,, १९६५ ज्ञानलोक बुकडिपो हाउस पटना
छायावादी काव्य स्वरूप और व्याख्या	ब्र०प०और०व्याख्याता श्री राजेश्वर दयाल सक्सेना ।	अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर
छायावाद पुनर्मूल्यांकन	श्री सुमित्रानन्दन पंत	,, १९६५ लोकभारतीय प्रका० प्रयाग
नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबन्ध	ग०मा०मुक्तिबोध	,, १९६४ विश्वभारतीय प्र०बनारस
नयी कविता का परिप्रेक्ष्य	डा०परमानन्द श्रीवास्तव	,, १९६८ नीलाभ प्रकाशन, प्रयाग
नये प्रतिमान पुराने निकष	लक्ष्मीकान्त वर्मा	,, १९६६ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
नयी कविता का स्वरूप विकास	प्रो०श्यामसुन्दर घोष	,, १९६५ प्रज्ञा प्रका० बिहार
नयी कविता नयी आलोचना और कला	कुमार विमल	,, १९६३ भारतीय भवन, पटना
नया हिन्दी काव्य	डा०शिवकुमार मिश्र	,, १९६२ अनुसंधान प्रका०कानपुर
नयी कविता: स्वरूप और समस्यायें	डा० जगदीश गुप्त	,, १९६९ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
नयी कविता सीमायें और सम्भावनायें	गिरिजाकुमार माथुर	,, १९६६ नया प्रकाशन, दिल्ली
नयी कविता और उसका मूल्यांकन	सुरेशचन्द्र सहल	,, आत्माराम एंड संस दिल्ली
नयी कविता के कवि	विश्वम्भर मानव	,, १९६८ लोकभारतीय प्रका०प्रयाग १

ग्रन्थ	लेखक	संस्करण एवं प्रकाशन
प्रयोगवाद और नई कविता	शम्भुनाथ सिंह	प्र०सं० १९५६, समकालीन प्रका०, बनारस
प्रयोगवादी काव्य	उमेशचन्द्र मिश्र	,, १९६६ ग्रंथम् मण्डार कानपुर
प्रगतिवाद	डा० धर्मवीर भारती	,, साहित्य भवन प्रकाशन, प्रयाग
फ्रायडवाद	मोहनचन्द्र जोशी, भारत जोशी	,, १९६३ रूपा २०६ कौ०, इलाहाबाद
स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेषांक, भाग १, पूर्णांक ३३	सं० शिवदान सिंह चौहान	,, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य	डा० रघुवंश द्वि०सं०	द्वितीय १९६८ भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
हिन्दी की नयी कविता	वि०नारायणन् कुट्टि	प्रथम अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर
हिन्दी की प्रयोगशील कविता और उसके प्रेरणा स्रोत	डा० श्रीराम नागर	,, १९६६ वल्लभ भाई विद्यापीठ विद्यानगर, गुजरात
हिन्दी की अधुनातन प्रवृत्तियां	डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी	,, १९६९ केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा

पत्र-पत्रिकायें

आधार	बम्बई
आलोचना	दिल्ली
उत्कर्ष	लखनऊ
कल्पना	हैदराबाद
कृति	दिल्ली
कादम्बिनी	,,
धर्मयुग	बम्बई
निकष	इलाहाबाद
युगचेतना	लखनऊ
राष्ट्रवाणी	पूना
[illegible]	सागर
संगम	इलाहाबाद
संघ	,,
ज्ञानोदय	कलकत्ता